ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क ४२

शरत्‌के नारी पात्र

शरत्‌के नारी पात्रोंका उनकी रचनाओंकी समयानुक्रमणिकाके आधारपर आलोचनात्मक अध्ययन

श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी

भारतीय ज्ञानपीठ काशी
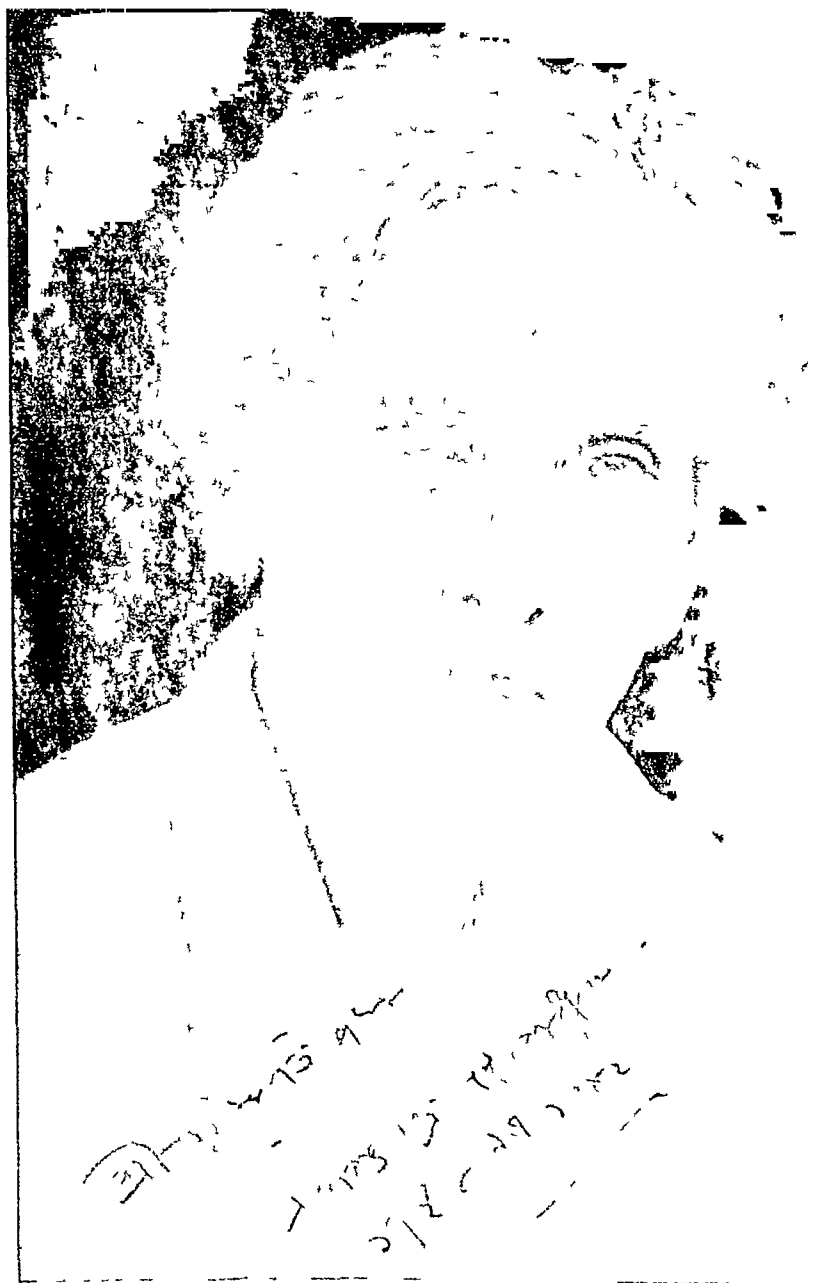
श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

'सुसभ्य मनुष्यकी स्वस्थ, संयत तथा शुभ बुद्धि नारी जातिको जो अधिकार अर्पित करनेके लिए कहती है, वही मनुष्यकी सामाजिक नीति है और उसीसे समाजका कल्याण होता है। समाजका कल्याण इस बातसे नही होता कि किसी जातिकी धर्म-पुस्तकमे क्या लिखा है और क्या नही लिखा है। नारीके मूल्यका विवेचन करते हुए हम अब तक इसी नीति और इसी अधिकारकी बात कहते आये है। हमने supply और demand अर्थात् उपज और माँगकी कीमत भी नही कही और यह आशा भी नही की कि कोई ऐसा समय आवेगा, जब कि पुरुषोकी संख्या बहुत बढ़ जायगी और स्त्रियाँ बिलकुल विरल हो जायेगी। नारीका मूल्य निर्भर करता है पुरुषके स्नेह, सहानुभूति और न्याय-धर्म पर। भगवान्‌ने उसे दुर्बल ही बनाया है और पुरुष उसके बलके इस अभावकी पूर्ति ऊपर बतलाई हुई वृत्तियोंकी ओर देखकर ही कर सकता है, धर्म-पुस्तकोंकी वातोंकी बालकी खाल निकालकर और उनके अबोध्य अर्थोकी सहायतासे उसकी पूर्ति नही कर सकता।'

'नारी का मूल्य' —शरच्चद्र चट्टोपाध्याय

कृतज्ञता-ज्ञापन

लेखक उन अनुवादकोके प्रति आभार प्रदर्शित करता है, जिनके शरत्-साहित्यके रूपांतरोका प्रस्तुत ग्रंथमे उपयोग किया गया है।

लेखक श्रद्धेय वाचस्पतिजी पाठक तथा कलाभवन, काशीके अध्यक्ष श्री रायकृष्णदासका भी आभारी है जिनके सौजन्यसे शरत्‌का चित्र इस पुस्तकमे दिया जा सका है।

जिससे बँगला-साहित्यके अध्ययनकी प्रेरणा मिली

तथा

शरच्चद्रके उन सभी वास्तविक-अवास्तविक चरित्रोको

जिन्होने जीवनके मर्मको

अधिकाधिक समझ सकनेके प्रयत्नमे

सहयोग दिया है ।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक मेरे शरत्के नारी पात्रोपर तीन वर्षके लवे व्यवधानमे समय-समयपर लिखे हुए क्रमागत निवधोका सकलन है, जिनमे-से अधिकाश धारावाहिक रूपसे मासिक 'सुमित्रा'मे प्रकाशित हुए थे। स्वतत्र रूपसे लिखे जानेपर भी ये निबध एक निश्चित योजनाके अतर्गत है, और पुस्तकाकारमे प्रकाशित होते समय इनमे कुछ सामग्री वढाई गई है। पूरे ग्रथकी योजना जुलाई १९५१ ई० मे वनी थी, और इसकी समाप्ति दिसवर १९५४ ई० मे हुई। समयानुक्रमणिकाके आधारपर शरच्चद्रके नारी पात्रोका यह प्रथम विस्तृत तथा वैज्ञानिक अध्ययन है। सच तो यह है कि इस प्रकारके अध्ययन अभी हिंदीमे थीसिसके रूपोके अतिरिक्त साधारणत देखनेमे नही आते। हिंदी-आलोचनाके क्षेत्रमे इस दृष्टिकोणसे इसे अपने ढगका प्रथम प्रयास कहा जा सकता है।

विश्व-कथा-साहित्यमे शरच्चद्रके नारी-चरित्रोका अपना विशिष्ट स्थान है। नारी-जीवनके विभिन्न तथा विरोधी पहलुओने उनके उपन्यासो तथा कहानियोमे अत्यत मार्मिक अभिव्यक्ति पाई है। वगालके नारीसमाजकी मुक्तिमे शरच्चद्रका कितना अधिक हाथ रहा है, इसे वहाँके सामाजिक इतिहासकार आनेवाले वर्षोमे भली भाँति पहिचान सकेगे। भारतीय नारीकी दुरवस्था शरत्की कलाकी मूल प्रेरक शक्ति रही होगी, ऐसा मानना वहुत असगत नही कहा जा सकता। उपन्यासकारका प्रसिद्ध निवध 'नारीर मूल्य' मानो उनकी कलाका 'मेनीफेस्टो' है। तत्कालीन नारी-जीवनकी दुर्दशाका विवेचन तथा समाधान उन्होने अपने इस विस्तृत निवधमे प्रस्तुत किया था, और इसीका कलात्मक निरूपण उन्होने अपने कथा-साहित्यमे किया है। वगालकी नारीकी अपरिसीम वेदना उनकी रचनाओमे उमड पडी है। शरच्चद्रकी आत्मा मूलत एक कलाकारकी आत्मा है, परतु मानव-जीवनकी

गहरी सहानुभूतियो तथा समस्याओने उनकी कलाको एकागी नही बनने दिया है। कला और उद्देश्य उनकी कृतियोमे इतने घुले-मिले दिखाई देते है कि उन्हे अलग-अलग करके नही पहिचाना जा सकता।

अपनी इस पुस्तकके द्वारा मैने शरच्चद्रके नारी-समाजकी एक विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत करनेका यत्न किया है। शरत्‌के सभी उपन्यासो तथा कहानियोके नारी-चरित्रोका इसमे विश्लेपण किया गया है, केवल उनकी अपूर्ण कृतियोको इस समीक्षामे सम्मिलित नही किया गया है। पुस्तकमे न केवल उपन्यासकारके नारी पात्रोका स्वतन्त्र विश्लेपण किया गया है, वरन् उसकी नारी सबधी साधारण विचार-भूमिका भी विवेचन हुआ है। साथ ही समीक्षाका क्रम शरत्‌की रचनाओकी समयानुक्रमणिकापर आधारित होनेके कारण, इससे उनकी नारी-सबधी विचार-धाराके स्वाभाविक विकासको भी समझा जा सकता है। पुस्तकके अतमें तीन परिशिष्ट जोडकर विवेचनको यथासाध्य अपनेमे पूर्ण बनानेका प्रयत्न किया गया है।

एक बात इस पुस्तकमे अपनाई गई समीक्षा-शैलीके सबधमे भी कहना चाहूँगा। इस अध्ययनमे शरत्‌के नारी पात्रोका यथातथ्य एव वैज्ञानिक विश्लेपण किया गया है। उन पात्रोके मूल्याकनकी विशेप चेष्टा नही की गई है। इसीलिए इस विवेचनमे पाठकको विवादग्रस्त विपय अधिक नही मिल सकेगे। इससे सभव है कि शरत्‌के नारी पात्रोका यह विश्लेपण कुछ रूखा तथा इतिवृत्तात्मक अधिक हो गया हो, परतु वैज्ञानिक आलोचना-प्रणालीमे यह एक दोप नही, वरन् गुणके ही रूपमे माना जाता है। हाँ, शरत्‌के इतने रसमय चरित्र-चित्रणका इतने इतिवृत्तात्मक ढगसे विश्लेषण करनेमे कभी-कभी मैने स्वय असतोपका अनुभव किया है। पाठक तथा आलोचकका यह सघर्प मेरे मनमे एकसे अधिक बार हुआ है।

अत्यत परिश्रमपूर्वक लिखी जानेपर भी पुस्तकके दोपोंके प्रति लेखकसे अधिक जागरूक और कोई व्यक्ति नही होगा। लेखकके अबगाली होनेके कारण यदि विपय-विवेचनमे एक ओर सतुलन आ सकता है तो उसके साथ ही साथ दूसरी ओर उसमे कुछ भूलोका हो जाना भी बहुत असभव नही है।

र्सिटी प्रेससे 'श्रीकान्त' (प्रथम पर्व) का अग्रेजी रूपातर प्रकाशित हुआ। इसके बादसे शरत्‌के यशमे उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। अनेक सभाओ तथा सस्थाओंके वे अध्यक्ष तथा मान्य सदस्य बनाये जाने लगे। १९३६ ई० मे ढाका विश्वविद्यालयने उन्हे आनरेरी डी० लिट्०की उपाधि प्रदान की। अपने जीवनके उत्तर कालमे शरत् रवीन्द्रनाथके भी स्नेह तथा प्रशसाके भागी रहे। १६ जनवरी १९३८ ई० को कलकत्ता पार्क नर्सिग होममे ६२ वर्षकी अवस्थामे शरच्चन्द्रकी मृत्यु हुई।

•

इस संक्षिप्त जीवन-वृत्तके लिए सामग्री श्री व्रजेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय-की पुस्तक 'शरत्-परिचय'से ली गई है।

विषय-सूची

परिशिष्ट

शरत्‌के नारी पात्र

बड़ी बहिन

[बड़ दिदि]

●

शरत्‌की 'बडी बहिन' का प्रकाशन बँगला-साहित्यमे एक घटना है। जिस कथावस्तुको लेकर यह उपन्यास चलता है, उसका तत्कालीन बग-समाजने तीव्र विरोध किया, और उसके अज्ञात लेखकको बडे ही आडे हाथो लिया गया। इस तीखे विरोधका एकमात्र कारण यह था कि 'बडी बहिन'मे एक विधवा नारीके हृदयमे फिरसे रागात्मिका वृत्तिका प्रादुर्भाव दिखाया गया है। परतु महान् कलाकार तो सदैव ही अपने समयके सबसे बडे विद्रोही हुआ करते है। शरत्‌ने अपनी ऑखो देखा था कि केवल मात्र एक श्वेत साडीके पहिना देनेसे ही एक विधवा नारीकी वासना एव उसके हृदयकी रगीनियाँ शात नही हो जाती। वे सूक्ष्म मानव-जीवनके अतर्द्रष्टा थे। उन्होने नारीके अत करणमे पैठकर देख लिया था कि वहाॅ सदैव ही असीम स्नेहका सतत स्रोत वर्त्तमान है, जो सरस्वतीकी भाँति गुप्त रहनेपर भी यथावसर प्रकट हुए बिना नही रहता।

और फिर 'बडी बहिन'का कथानक ऐसा विशेप आघात पहुँचानेवाला भी नही है। एक धनी पिताका एकमात्र पुत्र सुरेन्द्र अपने घरसे रूठकर कलकत्ते चला जाता है। वह शिशुके समान सरल एव निरीह तथा परले सिरेका लापरवाह है। वहाॅ वह एक जमीदारकी छोटी पुत्रीके शिक्षकके रूपमे रहने लगता है। जमीदारकी बडी लडकी माधवी (बडी बहिन), जो बाल-विधवा है, घरका सारा प्रबध करती है। उसकी ममताका एक भाग सुरेन्द्रको भी मिलता है। एक दिन जब वह अचानक ही जमीदार-का घर छोडकर चल देता है तो उसे तथा माधवी दोनोको ही ज्ञात होता

है कि वे परस्पर एक दूसरेके स्नेहमे कितने बँधे हुए थे। माधवी अपना पितृ-गृह छोडकर अपनी निर्धन ससुरालमे चली जाती है, जहाँ सुरेन्द्रका मैनेजर उसकी सारी जायदाद कुर्क करा लेता है। अपनी मृत्यु-शय्यापर सुरेन्द्र एक वार फिर माधवीसे मिलता है और मरनेके पहले उससे कह जाता है, 'वडी बहन, उस दिनकी वात याद है, जिस दिन तुमने मुझे निकाल दिया था? मैंने इसीलिए अव तुमसे वदला लिया है। तुम्हे भी निकाल दिया। क्यो, वदला चुक गया न?"

माधवीका हृदय प्रारभसे लेकर अत तक, हमे अगाध स्नेहसे भरा हुआ दिखाई देता है। शरत्के अनुसार नारी और स्नेह एक दूसरेके पर्यायसे जान पडते हैं। माधवीके वैधव्यने उसे और भी कोमल तथा सजल वना दिया है। उसकी ममताका आधार ही सुरेन्द्रको उसके आगामी वर्षोमे प्रेरणा देता है। वह उसके नाम तकका सम्मान करने लग जाता है, परतु माधवीका यह स्नेह असहाय है और इसीलिए 'वडी वहिन'का अत हम दुखद पाते हैं। कुछ भी हो, स्नेह और ममतासे नारीका निर्माण हुआ है, शरत्का यह अटूट विश्वास हमे उनकी प्रथम कृतिमे ही देखनेको मिल जाता है।

माधवी विधवा नही, बाल-विधवा है, किंतु उसके पितृ-गृहके पारिवारिक स्नेहने उसके यौवनके उद्दाम वेगको दबा-सा रखा है। वस्तुत स्नेह और ममता ये ही वे दो तत्त्व हैं, जिनके सहारे मासका प्रवल विद्रोह शात किया जा सकता है। जवतक माधवीके पति जीवित थे, तवतक उसका सर्वस्व उन्हीपर केन्द्रीभूत था, किंतु मरते समय वे स्वय ही कह गये थे, "माधवी, जो जीवन तुम मेरे सुखके लिए समर्पित करती, वही जीवन अव सबके सुखके लिए समर्पण करना। जिसका मुख कष्टपूर्ण और उदास देखना, उसीका मुख प्रफुल्लित करनेकी चेष्टा करना" और इसीलिए अव माधवीका स्नेह सबके लिए समान है। अपने रूपके प्रति वह जागरूक नही; अपने यौवनके प्रति वह उदासीन है। लेकिन फिर भी "अव स्वामी नही है, इसलिए उसने फूलोके सब पेड कटवा नही डाले हैं। अब भी उसमे उसीप्रकार फूल

खिलते हैं, लेकिन वे जमीनपर गिरकर मुरझा जाते हैं। अब वह उन फूलोकी माला पिरोने नही बैठती, लेकिन फिर भी उन सबको एकत्र करके और उन्हे अँजुलीमे भर-भर दीन-दुखियोमे बाँट देती है। जिनके पास नही है, उन्हीको देती है।" वस्तुत माधवीका यह रूप जितना करुणापूर्ण है, उतना ही श्रद्धा-स्पद भी। उसकी दशा उस मलय-चदनके समान हो गई है जो किसी देवताके मस्तकपर न चढकर पवनकी प्रेरणासे समस्त वनको सुगधिसे आप्लावित करता फिरता है, अब उसकी सत्ता एकातिक न होकर सार्वजनीन है।

परतु इतना सब होनेपर भी नारीकी अवचेतनामे छिपी हुई किसी व्यक्तिविशेषको अपनानेकी प्रवृत्ति जाग ही उठती है। "इस जीवनमे कितनी साध और कितनी आकाक्षाएँ होती है! विधवा होने पर वे सब कही चली नही जाती!" इसी तथ्यको अत्यत मनोवैज्ञानिक ढगसे शरत्‌ने 'वडी वहिन'मे प्रतिपादित किया है। अनजाने ही मे माधवी सुरेन्द्रकी ओर आकर्पित होती चली जाती है, परतु सुरेन्द्रका स्नेह तो एकदम वालको जैसा है—निर्मल तथा विकारहीन, उसका 'वृद्धोका-सा वैराग्य, वालकोकी-सी सरलता और पागलोकी-सी उपेक्षा माधवीके समर्पणको पहिचाननेमे असमर्थ है।' यह एक अनोखा व्यग है कि माधवी भी अपने समर्पणको तभी जान पाती है, जब कि सुरेन्द्र वापिस अपने घर चला जाता है।

यहाँ पर एक वात ध्यान देने योग्य है और वह यह कि माधवी मन-ही-मन सुरेन्द्रसे प्रेम करती हुई भी लोक-मर्यादाका पूरा ध्यान रखती है, और इसीलिए वह अस्पतालमे रोगी सुरेन्द्रको देखनेके लिए नही जाती। वस्तुत सयमके साँचेमे ही उसका प्रेम और सौंदर्य निखरा है। उसके जीवनमे उच्छृखलताका कोई स्थान नही।

सुरेन्द्रको खो देनेपर माधवी अपने पितृ-गृहको छोडकर अपनी ससुराल चली जाती है, परंतु उसे वहाँ भी चैन नही मिलता। विधवा नारीके जीवनका सबसे बड़ा अभिशाप रूप और यौवन जो उसके साथ है। 'स्वामीके मरनेके उपरात जब वह अपने पिताके घर लौट आई, तब सभीने कहा 'वडी वहिन', सभीने पुकारा 'माँ'। इन सम्मानपूर्ण सबोधनोने उनके

मनको और भी अधिक वृद्ध कर डाला था । कहाँका रूप और कहाँका यौवन !" परतु समयने बता दिया कि उसके रूप और यौवनका उसके लिए कोई महत्त्व भले ही न हो, पर औरोके लिए वह निश्चय ही विशेप महत्त्वपूर्ण है, और तभी उसे अपना गाँव छोडकर बाहर जाना पडा ।

'बडी वहिन'मे माधवीकी कहानी किसी एक नारी-विशेपकी नही है; वह तो शतश विधवाओकी करुण कथा है । मनोरमाके शब्दोमे शरत् स्पष्ट बोलते हुए जान पडते है—"तुम ठीक कहते हो, स्त्रियोका कोई विश्वास नही । मै भी अब यही कहती हूँ, क्योकि माधवीने आज मुझे यह सिखला दिया है । मै उसे बाल्यावस्थासे ही जानती हूँ, इसलिए उसे दोप देनेको जी नही चाहता, साहस नही होता, समस्त स्त्री-जातिको दोप देती हूँ, विधाताको दोप देती हूँ कि उन्होने क्यो इतने कोमल और जलके समान तरल पदार्थसे नारीका हृदय गढा था । उनके चरणोमे प्रार्थना है कि वे हृदयको कुछ और कठोर बनाया करे," परतु हम निश्चित रूपसे जानते है कि शरत्की यह प्रार्थना सुनी नही जायेगी । तब फिर इस समस्याका हल क्या है ? इस सबधमे शरत्का कलाकार मौन है । विश्वामित्रने तो एक अधूरी सृष्टिकी रचना की थी, परतु शरत्ने एक सपूर्ण सृष्टिका सृजन किया है, और जिस प्रकार कि विधाता अपनी निर्मित वस्तुओके सबधमे मौन है, उसी प्रकार शरत् भी । यही हमे उनकी कला अपने चरम रूपमे दिखाई पडती है ।

'बडी बहिन'की नारीका हृदय निश्छल एव सरल है । उसमे कोई गहनता नही है । माधवीका जीवन उतना जटिल नही है, जितना कि 'गृहदाह'की अचला और 'शेप प्रश्न'की कमलका । सभवत शरत्की प्रार्थना विधाताने 'शेप प्रश्न'मे सुनी है, जहाँ उनकी नारीका हृदय 'कुछ और कठोर' बनाया गया है, परतु फिर शीघ्र ही लेखक 'विप्रदास'मे अपनी पुरानी मान्यताओपर पहुँच गया है । अस्तु, 'बडी बहिन'की नारी अपनी प्राथमिक अवस्थामे है, इसमे कोई सदेह नही । स्नेह और ममतासे निर्मित नारीकी यह जीवित प्रतिमा कलाकारने बडी कुशलतासे निर्मित की है और यद्यपि

उसमे जीवनके विभिन्न रगो एव रगीनियोका अभाव है, फिर भी उसकी शुभ्रता श्रद्धास्पद है।

'बडी बहिन'के अन्य नारी-पात्रोमे सुरेन्द्रकी विमाता भी कम उल्लेखनीय नही है। 'यह विमाता स्वय अपनी सतानके प्रति बहुत कुछ उदासीन रहनेपर भी सुरेन्द्रकी इतनी हिफाजत करती है, जिसकी कोई हद नही।' ऐसा जान पडता है कि 'बडी बहिन'की राय-गृहिणी ही आगे 'रामेर सुमति'की नारायणी हो गई है, जिसके स्मरण मात्रसे ही वात्सल्यका एक अत्यत कोमल तथा सजल रूप हमारी आँखोके सामने आ जाता है। यहाँ भी हमे शरत्की नारीकी ममता और स्नेहका वह दृश्य देखनेको मिलता है, जो सहज ही भुलाया नही जा सकता।

सुरेन्द्रकी पत्नी शाति और शिवचद्रकी स्त्रीके चरित्र विशेप (individual) न होकर सामान्य (tvpe) है, यद्यपि शिवचद्रकी स्त्रीकी अपेक्षा शातिका चरित्र अधिक उभारा गया है। उसके जीवनमे उन्ही विशेपताओका उन्मेष दृष्टिगत होता है, जिनसे शरत्के सभी नारी-पात्र ओत-प्रोत है, परतु यह एकदम निश्चित है कि 'बडी बहिन'मे शरत् भले ही एक विद्रोही कलाकारके रूपमे दिखाई पडे, किंतु उनके इस उपन्यासमे किसी विद्रोहिनी नारी-पात्रकी अवतारणा नही की गई है। सच तो यह है कि बडी वहिन (माधवी) अपने आँसुओमे भी मौन है। विधवा नारीके मूक रुदनके ही कारण शरत्का यह उपन्यास आदिसे अत तक सिसकता हुआ जान पडता है।
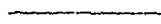
सुमति

[रामेर सुमति]

●

'रामेर सुमति' शरत्‌की उत्कृष्टतम कहानियोमे-से एक है। स्नेह, ममता और वात्सल्यका जितना सुदर परिपाक लेखककी इस रचनामे हुआ है, वह किसी भी साहित्यकी कृतिमे मिलना मुश्किल है। नारीका नारीत्व वात्सल्य-मे है, इस तथ्यका प्रतिपादन हमे शरत्‌की इस कहानीमे मिलता है। 'वडी वहिन'मे जिस राय-गृहिणीके दर्शन हमे सुरेन्द्रकी विमाताके रूपमे होते है, उसीका परिवर्द्धित सस्करण 'रामेर सुमति'मे रामकी मातातुल्य भाभी नारायणी है।

नारीका एक रूप विमाताका है। साहित्यमे विमाता सदैव ही दुष्ट, क्रोधी एव ईर्ष्यालु प्रकृतिकी चित्रित की जाती है, परतु शरत् परपराओको लेकर चलनेवाले न थे। उनके मनोविज्ञानने उन्हे नारीका सम्मान करना सिखाया और इसीलिए उन्होने नारीत्वके इस महान् अभिशापको, इस गहरे कलकको 'रामेर सुमति'मे मिटानेकी चेष्टा की है, और इस सवधमे कोई दो राय नही हो सकती कि अपने इस कार्यमे वे पूर्ण सफल हुए है। साथ ही नारी-समाजकी इस वकालतमे उन्होने साधारण मानव-जीवनके तथ्योकी कही अवहेलना नही की है। उन्होने वही कहा है जो मनोविज्ञानसम्मत है।

जैसा कि उनके निवध 'नारीका मूल्य' (नारीर मूल्य) से स्पष्ट है, शरत् प्रारभसे ही नारीसमाजको सामाजिक मुक्ति न सही तो साहित्यिक मुक्ति दिलानेका दृढ सकल्प करके चले ही थे। उनका यह दावा नितात सत्य है। अपने मतव्यकी पुष्टिमे उन्होने बडी सीधी, सरल, परतु मर्मस्पर्शी युक्तियाँ उपस्थित की है, और जिरह करनेका कलात्मक ढग तो उनका

अपना ही है। इसीलिए उनकी कृतियोका सामाजिक मूल्य होनेके साथ ही साथ, साहित्यिक मूल्य भी कम नही है।

ऐसा जान पडता है कि 'रामेर सुमति'की नारायणी और दिगबरीमे शरत्‌ने सपूर्ण नारीत्वको चित्रित कर दिया है। नारायणी अपने चरित्रकी उज्ज्वलतामे हिमालयसे भी ऊँची है, और उसी प्रकार दिगबरी अपने चरित्र की नीचतामे समुद्रसे भी गहरी है। इन दोनोके चरित्रके विरोधाभासके कारण नारायणीका व्यक्तित्व और भी उज्ज्वल तथा कोमल हो गया है। एक ओर नारी हमें अपने उत्कृष्टतम रूपमे दिखाई देती है तो दूसरी ओर अपने निकृष्टतम रूपमें भी, परतु स्वाभाविकता दोनो ही मे है, इसमे कोई सदेह नही। एकमे उदात्त भावनाओकी स्वीकृति है तो दूसरीमे ईर्ष्या एव अकारण क्रोधकी प्रवृत्तिने स्थान पाया है।

'रामेर सुमति'का कथानक सीधा, सरल एव छल-प्रपचोसे मुक्त है। इसीलिए वह हमारे हृदयको छूता ही नही, वरन् वह उसे हिला डालता है। राम अपनी बडी भाभी नारायणीके स्नेहकी छायामे पलकर बडा होता है, क्योकि उसकी विधवा जननीकी मृत्यु हो चुकी है। इसी बीचमे नारायणीकी निराश्रया माँ दिगबरी अपनी लडकीके घर रहनेको आ जाती है। न जाने क्यो उसे राम अच्छा नही लगता। ऐसा जान पडता है कि राम उसके जीवनमे सबसे बडा शत्रु है। नारायणीकी दैनिक-चर्यामे बाधा पडती है और कुछ दिनोके लिए उसकी गृहस्थीमे कलहका राज्य हो जाता है। इसी बीचमे शरत्‌ने बालक रामको आलबन बनाकर जिन करुण दृश्योकी सर्जना की है, वे अपने क्षेत्रमे अपूर्व है। अतमे नारायणीके प्रबल स्नेहके आगे दिगबरीकी दुष्ट प्रवृत्तियोको दबना पडता है, और वही रामके पीछे घर छोडकर चल देती है। फिर नारायणीकी गृहस्थीमे स्नेह और ममताका साम्राज्य पूर्ववत् स्थापित हो जाता है।

राम यदि नारायणीके हृदयकी सबसे बडी कमजोरी है तो दिगबरीके हृदयकी भी। दोनोके दृष्टिकोणमे भेद है। एक यदि उसे अपने जीवनमे ममताका केन्द्र बनाती है तो दूसरी अकारण ही सदैव उसके प्रति

अपना क्रोध प्रदर्शित करती रहती है। दिगवरीकी ईर्ष्या निर्बल एव साधनहीन है,अन्यथा वह रामके जीवनपर भी अवश्य आघात करती (अपने मुखसे तो वह रामकी मृत्युकामना प्राय ही किया करती है) । इन दोनो नारियोके मनोभावोके घात-प्रतिघातमे नारायणीके स्नेहकी अपूर्व झाँकीके दर्शन होते हैं और उसके वात्सल्यकी अमिट प्रतिमूर्त्ति हमारे हृदयपर अकित हो जाती है।

नारायणीका अपने पुत्रतुल्य देवर रामके प्रति अगाध स्नेह, यही इस कहानी की मूल सवेदना है, परतु शरत्‌ने भाभीके इस स्नेहको एकदम आदर्शात्मक एव अतिमानवीय नही बनाया है । रामसे नाराज होनेपर नारायणी उसका तिरस्कार करती है, उसे मारती भी है, परतु इससे उसके हृदयकी ममतामे कोई कमी नही होती । यही शरत्‌का मनोविज्ञान जो दूरसे आदर्शवादी जान पडता हुआ भी नितात तथ्यात्मक है, अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है । नारायणीका चरित्र अपने आपमे एक पूर्ण कलाकृति है । तेरह वर्षकी अवस्थासे ही उसने बालक रामको पाला पोसा है । इसीलिए उसकी ममताका केन्द्र प्रारभसे लेकर अततक राम ही दिखाई देता है । रामके प्रति उसका प्रत्येक सबोधन उसके अपार स्नेहका प्रतीक है । देवरके प्रति उसका क्रोध भी अधिकारपूर्ण एव ममत्वसे भरा हुआ है ।

जिस व्यक्तिसे हम किसी भी प्रकार सबधित होते है, उसका कोई दुष्कृत्य सुनकर हमे लज्जा आती है । नारायणी भी रामके सब कार्योंके लिए अपनेको ही उत्तरदायी समझती है । जब वह डाक्टरसे सुनती है कि रामने उसके घरमे आग लगानेकी धमकी दी है तो मारे शरमके नारायणीका तो मरना हो जाता है । वस्तुत. ऐसे पारस्परिक दृढ सबध ही प्रबल स्नेह एव ममताके परिचायक है । रामको कोई बुरा-भला कहे, यह नारायणीके लिए असह्य है । ऐसे स्थलोपर उसका स्वर रुँध जाता है और आँखे डबडबा आती है । जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, राम उसके हृदयकी सबसे बडी कमजोरी है । घरकी दासी कहती है, "भगवान् जाने क्या बात है ! हर बातमे जिसकी इतनी बुद्धि, इतना धीरज है, वह इतनी-सी बात क्यो नही समझती ?" और अतमे हम देखते है कि नारायणी अपनी माँको छोड देती है, परतु

उसके लिए रामका त्याग असभव है । स्नेहकी इस प्रबल धारामे बडी-से-बडी शपथे भी बह जाती हैं । रामको घरसे अलग कर देनेके प्रस्तावपर वह दृढतासे कहती है, "अब अगर तुम मेरी घर-गृहस्थीमे दखल दोगे तो, सच कहती हूँ, मै नदीमे डूब मरूँगी । तब दूसरा ब्याह करना और रामको न्यारा करके जो जीमे आये सो करना । न मैं देखने आऊँगी, न कुछ कहूँगी-सुनूँगी, मगर मेरे सामने नही ।"

यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नही कि रामके बालहृदयमे अपनी भाभीके प्रेमके प्रति क्या प्रतिक्रिया है। जब उसके फेके हुए कच्चे अमरूद-द्वारा भाभीके माथेमे चोट लग जाती है तो वह अत्यत व्याकुल हो उठता है और स्वय अपने मस्तकपर अमरूद मारकर यह समझनेका प्रयत्न करता है कि उस चोटने भाभीको कितनी पीडा दी होगी । वह अपने मनको बहुत प्रकारसे समझाता है और बाहरसे अपनी शान बनाये रखनेके लिए निष्फल चेष्टा करता है, परतु जब भाभी उसे खाने तकके लिए नही बुलाती, तब वह सहम जाता है, और उसकी सारी उच्छृखलता चूर-चूर हो जाती है । राम और नारायणीके इस पारस्परिक सबधमे वात्सल्यके जो अपूर्व दर्शन हमे होते हैं, उसीकी चरम परिणति शायद शरत्की प्रख्यात कहानी 'बिदुर छेले'मे हुई है । उसमे तो बिदु अपनी जिठानीके लडके अमूल्यसे अलग हो जानेपर मरणासन्न हो जाती है । नारायणी तथा बिदु एव राम तथा अमूल्यमे पर्याप्त अतर होते हुए भी वे वात्सल्यके आश्रय एव आलबन एक ही प्रकार-से है । वस्तुत इन दोनो ही कहानियोमे नारीके हृदयकी महानताका हमे चरम रूप देखनेको मिलता है, क्योकि नारीका मातृत्व ही उसका सर्वस्व है । शरत्की कृतियोमे पूर्वापर सबधका ध्यान रखते हुए हम कह सकते है कि 'रामेर सुमति'की नारायणी यदि एक ओर 'बड दिदि'की राय-गृहिणीका उत्तररूप है तो दूसरी ओर 'बिदुर छेले'की बिदुका पूर्वरूप भी ।

'सुमति'मे नारायणीके अतिरिक्त अन्य प्रमुख नारी-पात्र दिगबरी है । दिगबरीका चरित्र दुष्ट प्रकृतिका होते हुए भी अत्यत स्वाभाविक है, यह हमे न भूल जाना चाहिए । हमे उसके ऊपर क्रोध भी आता है, हँसी भी आती

है और इसके साथ-ही-साथ उसके दुष्कृत्योके प्रति घृणा रखते हुए भी हम उसकी वृद्धावस्थाके कारण उसके प्रति अज्ञात रूपसे सहानुभूति भी रखते है, हमे उसके ऊपर दया आती है। इस प्रकार वह एक साथ ही हमारी भाव-शवलताका आलवन होती है। रामके प्रति दुर्भावना एव अपनी लडकीके प्रति जड एव कृत्रिम मोह, यही उसके चरित्रके दो सर्वप्रमुख तत्त्व है। उसके प्रत्येक कार्यमे हमे एक वृद्धा नारीके मस्तिष्ककी विकृति दिखाई देती है।

अपनी प्रसिद्ध कृति 'दुइ वौन' (दो वहिने) का प्रारभ करते हुए कविगुरु रवीन्द्र कहते है—"स्त्रियाँ दो जातिकी होती है—एक तो माता और दूसरी प्रिया।" शरत्ने इसी विभाजनको ध्यानमे रखते हुए अपने प्रसिद्ध नारीपात्रोको निर्मित किया है। पहले प्रकारके चरित्र हमे उनकी कहानियोमे अधिक मिलते है। 'रामेर सुमति' एव 'विंदुर छेले' इसके सर्व-श्रेष्ठ उदाहरण है, परतु नारीका दूसरा रूप चित्रित करनेके लिए लेखकको जीवनके अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत क्षेत्रकी आवश्यकता जान पडी है। इसीलिए स्त्रीका प्रिया स्वरूप उन्होने अधिकतर अपने प्रसिद्ध उपन्यासोमे ही अकित किया है। इस दृष्टिसे उनके 'गृहदाह' एव 'शेप प्रश्न'की विशेष ख्याति है। परतु कुछ भी हो, शरत्की प्रारभिक कृतियोमे हमे नारीके जननी रूपकी ही अधिक सुदर व्यजना मिलती है, जो अपनी प्रकृतिमे अत्यत पवित्र एव सरल है, और यह नितात स्वाभाविक है, क्योकि नारीका अध्ययन हम उसके मातृस्वरूपसे ही प्रारभ करते है। समाजके क्षेत्रमे भी और साहित्यके क्षेत्रमे भी।

———

चंद्रनाथ

पात्रोके दृष्टिकोणसे शरत्की रचनाओके मोटे तौरपर दो विभाग किये जा सकते हैं। उनके कुछ उपन्यासो और कहानियोमे पुरुष-चरित्रोकी प्रधानता है और कुछमे स्त्री-चरित्रोकी। किंतु पहले प्रकारकी रचनाएँ दूसरे प्रकारकी रचनाओंसे सख्यामे अपेक्षाकृत कम है। जिन उपन्यासो अथवा कहानियोमे पुरुष-पात्रोकी प्रधानता है उनमे शरत् अधिक मार्मिक नही हो सके हैं; उनकी कलाका निखार तो उनके नारी-पात्रोमे ही द्रष्टव्य है। 'चद्रनाथ'की गणना उपर्युक्त दो प्रकारोमे से पहले प्रकारके ही अतर्गत की जायगी। परतु फिर भी उपन्यासकी नायिका सरयूका चित्र शरत्के सामान्य नारी-पात्रोके व्यक्तित्वका भलीभाँति प्रतिनिधित्व करता है। शरत्के जीवन-दर्शनमे दुर्बलताका नाम नारी नही है, वरन् उनके अनुसार तो जो विपत्तियोके सागरकी ऊँची-से-ऊँची लहरोसे होड ले सके, वही सच्चे अर्थोमे सहिष्णुताकी प्रतीक नारी कही जा सकती है।

'चद्रनाथ'मे सरयूका चरित्र ऐसा ही है। वह एक कुल-परित्यक्ता विधवा ब्राह्मणीकी पुत्री है। उपन्यासका नायक चद्रनाथ इस बातको जाने बिना ही, उसके प्रेममे आबद्ध होकर उससे विवाह कर लेता है, बादमे जब इस रहस्यका उद्घाटन होता है तो समाजके ठेकेदारोके भयके कारण चद्रनाथको गर्भवती सरयूका परित्याग करना पडता है, परतु अतमे अनेक विघ्न-बाधाओके उपरात, चद्रनाथ और सरयूके बीच जो झूठी कुल-मर्यादाकी दीवार खडी हो गई थी, गिरपडती है, और दोनोका परस्पर सुखद सम्मिलन होता है। इसप्रकार 'चद्रनाथ'के माध्यमसे शरत्ने जो जोरदार सामाजिक क्रातिका सदेश दिया है, उसका एक-एक अक्षर सरयूकी आँखके

एक-एक आँसूकी ही भाँति मर्मस्पर्शी है। वृद्ध मणिशकर कहते है, "समाज हम है, समाज तुम हो। यहाँ और कोई नही है। जिसके पास धन है, वही समाज-पति है। यदि मै चाहूँ तो तुम्हारी जाति विगाड सकता हूँ, और यदि तुम चाहो तो मेरी जाति विगाड सकते हो। समाजके लिए चिता मत करो।"

इसप्रकार हम देखते है कि सरयूका चरित्र उन शतश नारियोका प्रतिनिधित्व करता है, जिनका कुल, अपने दोपके कारण नही, वरन् परिवारके अन्य किसी भी व्यक्तिके दोषके कारण, क्षण मात्रमे कलकित हो जाता है। तब प्रश्न है कि क्या ऐसी नारियोको समाजसे वहिष्कृत कर दिया जाय? इस सबधमे लेखकका अपना मत ऊपर उद्धृत किया ही जा चुका है। यही नही, शरत्ने तो सदैव ही गिरी हुई नारियोके चरित्रोको ऊँचा उठाया है। पापीके प्रति सहानुभूति एव पापके प्रति घृणा उनके जीवनकी चरम साधना रही है। और साथ-ही-साथ पापकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमिका उदघाटन उनकी कलाकी चरम साधना रही है। पतितको उठाना ही सच्ची वैष्णवी-भावना है। समाजके कुत्सित कार्य-कलापोकी व्याख्या एक शैवकी भाँति करते हुए शरत् अपने दृष्टिकोणमे परम वैष्णव थे, इसमे कोई सदेह नही।

सरयूके चरित्रमे हमे प्रारभसे लेकर अततक एक हीनता-ग्रथि (Inferiority complex) का आभास मिलता रहता है, क्योकि अपनी माँके दुराचरणसे वह अपरिचित नही। इस हीनता-ग्रथिको उसकी नम्रता एव शीलने ऐसा ढँक लिया है कि हमे एकाएक उसका पता नही चलता। वह सदैव ही अपने आपको चद्रनाथकी दासी समझती है। जब हरिवाला उससे पूछती है कि चद्रनाथ उसे कितना प्यार करते है तो वह कुछ लज्जित होकर कहती है, "वे मुझपर बहुत दया रखते है।" और यही उसकी सखी सोचती है, "स्त्री यह नही जानती कि पति उसे कितना अधिक प्यार करता है! वस, यही मुझे बहुत भय होता है।" यह कहना व्यर्थ ही है कि हरिवालाका भय कितना वास्तविक है!

यहाँपर पति और पत्नीके पारस्परिक सबधका विवेचन शरत्ने बड़े मनोयोगसे किया है। वे कहते है, "पर केवल दासी प्राप्त करनेके लिए ही

कोई विवाह नही करता, स्त्रीसे और भी किसी बातकी आशा रखी जाती है। जान पडता है कि दासीके आचरणके साथ स्त्रीका आचरण सर्वतो-भावसे मिल न जाना ही अच्छा है।" परतु भाग्यसे चद्रनाथको तो एक पुण्यवती, पवित्र, साध्वी और स्नेहमयी दासी मिली है। इसीलिए उसके और सरयूके बीचकी खाई बढती ही चली गई। और अतमे उसने इन दोनो निरीह प्राणियोको अलग कर दिया।

सरयूके चरित्रमे ऐसा जान पडता है कि सरलता अपने सारे अवयवोके साथ उसके रक्तके अदर घुल-मिल गई है। केवल एक ही स्थान पर उसकी सचाईमे सदेह किया जा सकता है और वह उस जगह जहाँ कि वह अपने पतिको अपने माँका दुराचरण नही बताती, परतु यहाँ भी शायद उसकी अत्यधिक भीरुता ही उसे ऐसा करनेमे रोकती है। परतु इस कठोर सत्यने जैसे उसकी सारी प्रसन्नताको छीन लिया है। वह अपने पतिको खुलकर प्यार भी नही कर पाती, वह उससे डरती-सी रहती है। उपन्यासकारके शब्दोमे "सरयूका समस्त हृदय कृतज्ञतासे परिपूर्ण था, इसीलिए उसका प्रेम सिर नही उठा सकता था। वह अत सलिला फल्गुके समान चुपचाप धीरे-धीरे हृदयके सबसे भीतरी भागमे बहता रहता था, उच्छृङ्खल नही हो सकता था।" यह नियतिका व्यग्य है कि स्नेहका इतना प्रबल स्रोत अपनी अभिव्यक्तिमे नितान्त असहाय ही रहा।

सरयूके चरित्रका उज्ज्वलतम रूप हमे तब दिखाई पडता है जब हम उसकी तुलना चद्रनाथकी मामी हरकालीसे करते है। 'सरयू यदि झगडालू या जबाँ-दराज होती, स्वार्थी अथवा निर्दय होती, ईर्ष्यालु अथवा अभिमानिनी होती, तो बहुत सभव है कि हरकाली अपने लिए कोई मार्ग ढूँढ निकालती। परतु सरयूने उसे अपने लिए करुणाकी भिक्षा माँगनेका अवसर ही नही दिया।' यही सरयूकी चारित्रिक विजय है। हरकाली शरत्के नारी-पात्रोके उस प्रकारके अतर्गत आती है, जिसका शीर्षक हम 'रामेर सुमति'की दिगबरीसे प्रारभ करते है। नारीके इस रूपकी सज्जा खडी करनेमे हमे शरत्की अतर्दृष्टि अपने चरम बिंदुपर दिखाई देती है।

यदि दिगवरी अवसरपर रोनेमे अपने आपको असमर्थ पाकर अपना कठ करुण एव आर्द्र वना सकती है तो हरकाली भी समयानुकूल अपने आँचलसे झठ-मूठ ही आँसुओको पोछने लगती है। किसी भी प्रकार सरयूका अहित हो यही उसकी सवसे वडी कामना है।

चद्रनाथ सरयूको वहुत चाहते है। उसे वह अपने जन्म-जन्मान्तरकी पतिव्रता स्त्री समझते है। "परतु इतना होनेपर भी किसी दुखीपर अनुग्रह और दया करनेसे जो अभिमान, जो तृप्ति होती है, वालिका सरयूके साथ विवाह करते समय उसी अभिमान, उसी तृप्तिने एक दिन आत्म-प्रसादका छद्म वेष धारण करके चद्रनाथके हृदयमे जो चुपचाप प्रवेश किया था, सो अव सैकडो चेष्टाएँ करनेपर भी वे उसका पूर्णरूपसे उच्छेद नही कर सके।" पुरुष-चरित्रकी यही कमजोरी नारीके सुखके विनाशका कारण वनती है। सरयूको निर्दोप जानते हुए भी चद्रनाथ उसे अपने पास नही रख पाते। 'कुलकी झगडा' या 'वशका वखेडा' विवाह होनेके पूर्व नही, वरन् विवाह होनेके वाद इन दो प्रेमियोंके वीच एक मजबूत दीवार वन जाता है। सरयू-को चद्रनाथका घर छोडना पडता है,और तव बूढे गुमाश्ताजीके साथ पाठको-को भी सीताजीकी कथा याद आ जाती है। केवल इसलिए नही कि लव-कुश-जननीकी भाँति वह गर्भवती है, अपितु इसलिए कि राम-प्रियाकी भाँति वह भी निर्दोप है।

और यहाँ शरत्‌की लेखनी आँसुओसे भीगती हुई चलती है, "इस सोलह वर्षकी अवस्थामे ही उसके सारे शौक, सारी कामनाएँ पूरी हो गई थी। माता नही, पिता नही, पतिने परित्याग कर दिया। खडे रहनेके लिए कही कोई स्थान नही है, केवल कलक, लज्जा और विपुल रूप यौवन है.. उसने मन ही मन कहा, 'चाहे और कुछ न हो, पर काशीकी गगा तो अभी तक नही सूखी है? गगा न तो समाजसे डरती है और न उसकी जाति ही जा सकती है। वह एक दुखिया अवलाको इन दु खके दिनोमे मजेसे अपनी गोदमे ले लेगी। मुझे और कही आश्रय न मिले न सही, वहाँ अवश्य मिलेगा।' और सरयूने निश्चय ही पवित्र भागीरथीकी क्रोड़मे आश्रय ले लिया होता

यदि अवसर पर, विपुल स्नेहसे परिपूर्ण उसे कैलास चाचाका सहारा न मिलता। 'आँचलमे दूध और आँखोमे पानी' लिये हुए अवला-जीवनकी यह करुण कथा सहृदयोको आठ-आठ आँसू रुलाती है, और एक सामाजिक दुर्व्यवस्थाके प्रति स्पष्ट सकेत भी करती है। कलाकी सामाजिकताके कारण ही शरत्‌की कृतियाँ इतनी मूल्यवान् है।

'चद्रनाथ'मे हरिबालाका चरित्र सरयूकी सखीके रूपमे चित्रित किया गया है। यद्यपि शरत्‌ने स्वय कहा है, "अवस्थाके सम्मानका ज्ञान जैसा पुरुषोमे है, वैसा स्त्रियोमे नही है ,जब तक स्त्रियोका विवाह नही होता, तबतक वे अपनी बडी बहन, भाभी, माँ, बुआ अथवा दादीके पास छोटोकी भाँति रहकर थोड़ी बहुत उम्मेदवारी करती है, नारी-जीवनमे जो कुछ थोडी बहुत बाते सीखनेकी होती है, वे सब सीख लेती है, और फिर इसके उपरात वे एकदमसे सबसे ऊँची श्रेणीमे जा बैठती है। उस समय सोलह वर्षसे लेकर छप्पन वर्षतककी सभी स्त्रियाँ मानो समान अवस्था-वाली हो जाती है।" परतु फिर भी हरिबाला और सरयूका यह निविड सख्यभाव बहुत अधिक स्वाभाविक नही कहा जा सकता। अवस्थाके सम्मानका ध्यान स्त्रियोमे अधिक भले ही न हो,परतु वर्षोके व्यवधानका ज्ञान तो उन्हे रहता ही है। अस्तु, हरिबालाका चरित्र है बहुत ही मासल और सजीव, इसमे कोई सदेह नही। इस वृद्धा नारीके केशोकी श्वेतता उसके मनमे भी छा गई है। वस्तुत चाहे नवविवाहिता हो, चाहे अस्सी वर्षकी विधवा, चाहे ज़मीदारके घरकी मालकिन हो अथवा गरीब गृहस्थकी कुलवधू—किसीके भी मनोभाव पहिचाननेमे शरत्‌ने गलती नही की। नारी-मनोविज्ञानके वे पडित थे।

'चद्रनाथ'के अन्य स्त्री-पात्रोमे मणिशकरकी पत्नी है, परतु कथा-प्रवाहमे उसका कोई विशेष स्थान नही। सुलोचना (सरयूकी माँ) अवश्य कुछ देरके लिए पाठकोका ध्यान आकर्षित किये रहती है। परतु उसका चरित्र प्रारभसे लेकर अततक रहस्यमय रहता है। उसके बारेमे कुछ विशेष पता नही चलता। ऐसा जान पडता है कि लेखक उपन्यासके

उत्तरार्द्धमे उसे भूल-सा गया है। उसके संबंधमे पाठककी कोई प्रतिक्रिया नही होती। परतु इतना निश्चित है कि प्रथम वार उसके सात्त्विक रहन-सहनको देखकर बादमे जब उसके कुल-कलकका भेद खुलता है तो अनायास ही हमारे मुँहसे निकल जाता है, "स्त्रियोके लिए सब कुछ संभव है।" उपन्यासकार यदि इस चरित्रको कुछ और उभारता तो अधिक अच्छा होता।

परतु इसका एक कारण है। जैसा कि हम पहले ही कह चुके है, 'चद्र-नाथ'मे नारी-पात्रोकी अपेक्षा पुरुष-पात्रोकी प्रधानता है। सरयूको छोड़-कर किसी अन्य स्त्री-पात्रकी पूर्ण व्यजना हमे इस उपन्यासमे नही मिलती। चद्रनाथ, कैलास, हरिदयाल, मणिशकर आदिके चरित्र ही इसमे प्रमुख है। कैलासका चरित्र तो अपने आपमे एक पूर्ण कलाकृति है। वह इतना अधिक पूर्ण तथा सुन्दर है कि स्वय उपन्यासके नायक एव नायिकाके व्यक्तित्व उसके सामने नही ठहर पाते। और इतने पर भी विशेपता यह है कि उसके चरित्रको अधिक विस्तार नही दिया गया है।

बिंदोका लल्ला

[बिंदुर छेले]

●

शरत्की इस कहानीकी मूल सवेदना वही है जो हमे उनकी प्रसिद्ध कृति 'रामेर सुमति'मे मिलती है। वस्तुत ये दोनो कहानियाँ मिलकर एक युग्म हैं। दोनो रचनाएँ अलग-अलग, एव अपने आपमे पूर्ण होनेपर भी, वस्तुके दृष्टिकोणसे एक-दूसरेसे अत्यत घनिष्ठ रूपमे सम्बद्ध हैं। इन दोनो का ढाँचा प्राय समानान्तर है। यह तो नही कहा जा सकता कि शरत्की कलाका जो निखार 'रामेर सुमति'मे द्रष्टव्य है, वह 'बिंदुर छेले'मे मिलता है, अथवा नही, परतु फिर भी निश्चित रूपसे इतना अवश्य माना जा सकता है कि 'रामेर सुमति'मे जो मूल सवेदना या मनोवेगोकी अनुभूति है, वह 'बिंदुर छेले'मे और भी घनीभूत हो गई है—इतनी घनीभूत कि कहानीके वातावरणमे कही-कही तो पाठकको साँस लेना भी मुश्किल जान पडता है।

'बिंदुर छेले'की आधारभूत कथा इस प्रकार है—सतानहीन बिंदु अपनी जिठानीके एकमात्र पुत्र अमूल्यको अपने सर्वस्वके साथ प्यार करती है। उसके सारे जीवनकी वृत्तियाँ उसीपर केन्द्रीभूत हैं। यहाँतक कि 'अन्नपूर्णाका लडका बिंदुवासिनीकी गोदमे जिस तरह खाने-पीने और बडा होने लगा, उसका फल यह हुआ कि अमूल्य चाचीको 'माँ' और 'माँ'को जीजी कहना सीख गया।' बिंदुका कर्कश स्वभाव, वस्तुत उसके अमूल्यके प्रति प्रेमके कारण ढँक जाता है। इस कहानीमे शरत्ने नारीके खारे आँसुओसे स्नेहका इतना शीतल एव अगाध सागर प्रस्तुत किया है, जिसकी थाह लेनेमे बुद्धिकी वृत्तियाँ असमर्थ हो जाती हैं, परतु फिर जीवनकी सरल एव अबाध गतिमे व्यवधान उपस्थित होता है। घरमे यादव एव

माधवकी फुफेरी वहिन एलोकेशी, जिनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नही है, अपने पति एव पुत्रके साथ आ जाती हैं। और यहीसे इस सुखी एव सपन्न गृहस्थीमे कलह अपनी जड जमा लेती है। एलोकेशीकी कूटनीतिके फल-स्वरूप विदु एव उसकी जिठानीमे मन-मुटाव हो जाता है और दोनो अलग-अलग रहने लगती हैं। पर अगाध स्नेहकी अभ्यस्त बिंदुको अपनी कठोर, परतु ममतामयी जिठानी, सरल व्यवहारवाले जेठ एव अपने जीवन-सर्वस्व लल्ला (अमूल्य)के अभावका अनुभव होने लगता है। वह अपने पितृ-गृह चली जाती है, और तव उसकी पुरानी वीमारियाँ उसे फिर घेर लेती हैं, वह मरणासन्न हो जाती है। परतु ऐसे सरल एव निरीह स्नेहका अत इस प्रकार नही हो सकता। माधव अपने वडे भाई यादव, भाभी अन्नपूर्णा, एव लल्लाको लेकर उसके पास पहुँचते हैं। तव बिंदो कहती है—"लाओ जीजी क्या खानेको देती हो। और लल्लाको मेरे पास लिटाकर तुम सब वाहर जाओ और आराम करो। अब डर नही है, मैं मरूँगी नही।"

इस कहानीमे आदिसे लेकर अततक बिंदोका चरित्र ही प्रमुख दिखाई देता है। वह एक क्षणके लिए भी हमारी आँखोसे ओझल नही होती। उसके स्नेह एव ममतासे भरे हुए जीवनकी यह गौरव-गाथा है। जब एक नववधूके रूपमे बिदु यादव मुखर्जीके घरमे प्रवेश करती है तो उसके व्यवहारके सबधमे वडी बहूकी पहली प्रतिक्रिया होती है, "क्यो जी, रूप और रुपयोकी गठरी देखकर वहू घर ले आये, पर यह तो काली नागिन है!" परतु यादवने इस बातपर विश्वास नही किया और पाठककी सहानु-भूतिको भी यादवके इसी विश्वासपर अततक टिकना पडता है।

बिदुको प्राय मूर्च्छा आ जाया करती है। और एक दिन जब वह प्रायः अचेत होनेको ही थी, उसकी जिठानी अन्नपूर्णाने अपने सोते हुए बच्चे अमूल्य को लाकर उसकी गोदमे डाल दिया। अमूल्य कच्ची नीदमे जग जानेसे जोर-जोरसे रोने लगा। बिदो जी-जानसे अपनेको सम्हालकर और वेहोशीके पजेसे अपनी रक्षा करके बच्चेको छातीसे लगाकर कमरेमे चली गई। और सचमुच ही स्नेहकी इस अजस्र धाराने बिदोकी जैसे सारी बीमारी दूर कर

दी। अब यदि उसे कोई रोग है तो अमूल्य अथवा लल्लाके प्रति प्रेमका। यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नही कि यही उसकी औषधि भी है।

बिदो लल्लाकी रक्षामे एक सिंहिनीकी भाँति तत्पर रहती है। वह उसे पाठशाला इसलिए नही भेजती कि कही उसकी आँखमे कोई कलम ही न खोस दे। अपने स्नेहमय आँचलसे वह उसे अधिक दूर नही होने देना चाहती। जहाँतक हो सकता है वह उसे अपनी आँखके सामने ही रखती है। सचमुच इस बातका कारण कोई नही जानता कि क्यो बिदो अमूल्यके बारेमे ऐसी यक्षकी तरह सजग रहती है—ऐसी प्रेतकी तरह सतर्क। अपने पुत्रकी इस सर्वमगलाकाक्षिणीके चेहरेकी तरफ़ देखकर अन्नपूर्णाका मातृ-हृदय गद्‌गद हो उठता है।

परतु लल्लाके प्रति असीम स्नेह रखते हुए भी बिदो उसे किसी प्रकार बिगड़ने नही दे सकती। उसके जीवनमे एक ही कामना है, और वह है अमूल्यका चरित्र-निर्माण। बडे अधिकारपूर्ण स्वरमे वह अन्नपूर्णासे कहती है, "मगर देखो जीजी, लडकेको अगर दस-बीसमे एक-बडा बनाना हो तो माँको दुनियासे न्यारी होनेकी जरूरत है। अगर तबतक जिदा रही जीजी, तो देख लेना तुम, देशके लोग हाथ उठाकर कहेगे कि यह अमूल्यकी माँ है।" वस्तुत इसी महत्त्वाकाक्षापर उसका सारा जीवन अवलबित है। इसके विपरीत वह किसी भी प्रकार सोच ही नही सकती। वह स्वय कहती है, "पर इसी एक आशाको लेकर तो मै जी रही हूँ जीजी इस आशापर अगर किसी दिन चोट पडी, तो मै पागल हो जाऊँगी।" और जब वह देखती है कि एलोकेशी एव उसके पुत्र नरेन्द्रके रूपमे एक ऐसी बाधा आ खडी होती है, जिससे कि उसके अमूल्यकी उन्नतिमे व्यवधान पडनेका डर है, तो वह मान्य होते हुए भी उनका स्पष्टरूपसे तिरस्कार कर देती है। लल्लाके स्वाभाविक विकासमे कही कोई कमी रह जाय, यह बात उसके लिए असह्य है। ऐसी सभावनाओका निराकरण करनेके लिए ही वह उसे हृदयपर पत्थर रखकर दडित भी करती है। इन्ही सब बातोको देखकर ही तो अन्न-पूर्णा कहती है, "मै नही, तू ही उसकी माँ है, मैने तुझे ही तो दे दिया है।"

पर फिर भी ऐसे अवसर आ ही जाते है जब झुँझलाकर बिदो अपनी जिठानीसे कह देती है, "मेरा लडका नही है, इस बातको मै भी जानती हूँ और तुम भी जानती हो। फिर झूठमूठ बात बढानेकी जरूरत क्या है, जीजी ?" पर इन शब्दोमे बिदोका लल्लाके प्रति अधिकार एव ममतापूर्ण स्वर ही बोल रहा है, यह बतानेकी आवश्यकता नही।

बिदोकी सारी रागात्मिका वृत्ति लल्लापर केन्द्रित हो गई है। यहाँ तक कि उसने अपने लिए—अपने पतिके लिए भी कुछ नही छोडा। "इतने बाल है, बाँधेगी नही, इतने कपडे-गहने है पहनेगी नही; इतना रूप है, सो एक बार अच्छी तरह देखेगी भी नही।" एक जिठानीके पुत्रके लिए राग, एव अन्य सबके लिए—यहाँतक कि अपने लिए भी विराग, अद्भुत भले ही जान पडे, परतु अस्वाभाविक नही है। नारीका यह रूप अपने आपमे करुणासे ओत-प्रोत रहते हुए भी, कितना श्रद्धास्पद, कितना आदरणीय है, इसका अनुमान करना कठिन नही।

किंतु मानव-जीवनकी गति एव कथा ऐसे अबाधरूपसे तो चलती नही ! बिदो एव उसके लल्लाके पारस्परिक स्नेह-सबधमे व्याघात उत्पन्न होता है, एव इसका सम्पूर्ण श्रेय यादव-माधवकी फुफेरी बहिन एलोकेशी तथा उसके सुपुत्र नरेन्द्रको बडी आसानीसे दिया जा सकता है। एक मामूली-सी बातपर कलह हो जानेपर अन्नपूर्णा एव बिंदु अलग-अलग हो जाती है। इस प्रकार बिदो एव उसके लल्लाके बीच एक दीवार खडी हो जाती है। अवश्य ही यह बालूकी भीतकी भाँति अधिक दिनोतक स्थायी नही रह पाती और निर्मल स्नेहकी मदाकिनी फिरसे बहने लगती है।

बिदोने नया मकान बनवाया है, जिसमे कि वह सारे परिवारके साथ रहेगी, परतु अब क्या हो ? 'अब तो सूने मकानका एक-एक क्षण उसे लील जानेके लिए मुँह फाडने लगा। नीचेके एक मकानमे एलोकेशी रहती है, और ऊपरका एक कमरा उसका अपना है, बाकी सारे कमरे खाँव-खाँव करने लगे। वह सूने मनसे घूमती-फिरती तिमजिलेके एक कमरेमे जाकर खडी हो गई। किसी सुदूर भविष्यकी पुत्र-वधूके लिए उसने यह कमरा

बनवाया था । इसमे आते ही वह किसी भी तरह अपने उमँडते हुए आँसुओ-को न रोक सकी ।' उसकी आशाएँ—आकाक्षाएँ ताशके महलकी भाँति पलमे इस प्रकार ढह जाएँगी, इसका पता किसे था ?

अब वह हर समय लल्लाका रास्ता देखती है, परतु टूटे हुए स्वप्नकी भाँति वह फिर नही आता । व्यथासे भरे इन्ही क्षणोमे उसे अपने पिताजीकी बीमारीका समाचार मिलता है और भरे हुए हृदयसे वह चल देती है उन्हे देखने । जाते समय वह मिसरानीके पैर छूती हुई कहती है, "तुम ब्राह्मणकी लडकी हो, उमरमे बडी हो, असीस दो कि मै अव न लौट सकूँ, यही जाना मेरा आखिरी जाना हो ।" परतु ऐसा होता नही । घर पहुँचकर बिंदो स्वय मरण-शय्यासे लग जाती है । पर स्नेहमे कुछ ऐसा विश्वास होता है, ऐसी शक्ति होती है कि अत इतनी शीघ्र नही आता । पत्नीकी मरणासन्न अवस्था देखकर माधव घर जाकर अपने बडे भाई, भाभी एव लल्लाको ले आते है । और फिर स्नेहकी इस प्रबल धारामे अन्नपूर्णाकी शपथे बह जाती है और बिंदोकी सारी बीमारी । उसका रोग ही उसकी औषधि बनकर उसके पास आ जाता है ।

यद्यपि इसमे कोई सदेह नही कि बिंदोके प्यारका एक बडा भाग केवल लल्लाके लिए सुरक्षित है, परतु फिर भी इसका अर्थ यह नही कि परिवारके अन्य व्यक्तियोके प्रति वह नितात उदासीन है । अपने पतिका वह सम्मान करती है, जेठकी बातपर प्राण देनेको तैयार है और अन्नपूर्णाका भी वह अपने निजी ढगसे आदर करती है । जिठानीके प्रति एक अज्ञात रोष, एक अपरिचित अवमानना रखते हुए भी वह उनका हृदयसे सम्मान करती है । यादवतकसे भी वह कह देती है, "जीजी से कहूँ, वे जो कहेगी सो होगा ।" वस्तुत लल्लाके प्रति प्रेम ही उसके चरित्रका, 'रिडीमिग फीचर' अर्थात् सर्वप्रमुख तत्त्व है जिससे उसकी सामान्य कर्कशता ढँक जाती है ।

जिन्होने शरत्की प्राय सभी प्रसिद्ध कहानियोको पढा है, वे 'बिंदुर छेले'का अध्ययन करते समय 'रामेर सुमति'को कदापि नही भुला सकते । वस्तुत नारीके जिस जननी-स्वरूपकी उद्भावना 'बडी बहिन' की राय

गृहिणीमे की गई, वही नारायणीके चरित्रमे स्वाभाविक विकास प्राप्त करके, बिंदोमे अपनी चरम-सीमापर पहुँच गई है। यह शरत्‌की नारियोकी महत्ता है कि उन्होने अपने पुत्रोका कुछ भी ध्यान न रखकर अपने सौतेले पुत्र, देवर एव भतीजेपर ही सारा प्यार उँडेल दिया है। भारतीय नारी-जीवनकी इस चरम परिणतिमे शरत्‌की अटूट श्रद्धा है।

जब हम 'बिंदुर छेले'की बिंदु एव 'रामेर सुमति'की नारायणीकी परस्पर तुलना करते है तो हमे यह नि सकोच रूपसे कहना पडता है कि नारीका जो कलात्मक चित्रण हमे नारायणीमे मिलता है वह बिंदुमे नही। हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि वात्सल्यके मनोभावका जो विकास हमे 'रामेर सुमति'मे दृष्टिगत होता है, उसकी चरम सीमा 'बिंदुर छेले'मे है। जैसा घनीभूत वातावरण 'बिंदुर छेले'का है वैसा 'रामेर सुमति'का नही। एक ही मूल सवेदनाको लेकर दो भिन्न-भिन्न नारी-चरित्रोका निर्माण जिस कुशलतासे शरत्‌ने किया है, वह बडे-बडे कलाकारोके लिए अध्ययनकी सामग्री है।

शरत्‌की नारियोका एक ऐसा वर्ग भी है, जिसमे मानव-जीवनकी सारी दुर्वृत्तियोने अपना स्थायी घर बना रखा है। ऐसे नारी पात्र किसी-न-किसी रूपमे लेखककी प्राय सभी कृतियोमे देखनेको मिल जाते है। 'बिंदुर छेले'मे इस वर्गकी प्रतिनिधि एलोकेशी है। उसे किसीकी उन्नति अथवा प्रगतिमे रुचि नही है। वह तो सबको नीचे गिरता देखना चाहती है। एलोकेशीके चरित्रपर लेखकने जो टिप्पणी दी है, वह कुछ हल्की है। "बीबीजी देखनेमे भोली-सी भले ही मालूम पडती हो, पर असलमे वह भोली नही थी।" इस एक वाक्यसे एलोकेशीके हृदयकी कालिमापर विशेष प्रकाश नही पडता। वस्तुत 'रामेर सुमति'की बुढिया दिगबरीकी सारी विनाशात्मक प्रवृत्तियोंको 'बिंदुर छेले'की एलोकेशीमे प्रश्रय मिला है। यहाँपर हमे इस सबधमे एक बातका ध्यान और भी रखना पडेगा। शरत्‌की नारियोका यह वर्ग प्राय उनकी रचनाओमे हास्य-सामग्री प्रदान करता है। जब एलोकेशी कहती है— "तुम्हे लडका चाहिए छोटी बहू, मेरे नरेन्द्रनाथको ले लो, उसे तुम्हे दिये

देती हूँ। मार डालो, किसी दिन एक बात भी कहे ऐसा लडका नही वह, वैसी औलाद मैंने कोखमे नही रक्खी" तो पाठकके चितागस्त मुखपर एक हल्की मुसकानकी रेखा आ ही जाती है। करुणा एव निराशाके घनीभूत वातावरणमे इस छोटी-सी मुसकानका कितना महत्त्व है, इसे शरत्के पाठक भलीभाँति जानते है।

'बिंदुर छेलेमे' केवल एक ही नारी-पात्र और शेष रह जाता है, जिसकी व्याख्या यहाँ अपेक्षित है। और वह है घरकी 'बडी मालकिन' अन्नपूर्णा। अन्नपूर्णाका चरित्र कहानीमे कम अकित होनेपर भी कम हृदयस्पर्शी नही है। उसकी तेजस्विता एव सरलताके सम्मुख सहृदय पाठकको नतमस्तक होना ही पडता है। आत्म-गौरव एव पति-भक्तिकी भावना उसमे विशेप-रूपसे प्रबल है। बिंदोसे तिरस्कृत होनेपर वह कह उठती है, "अच्छा ही हुआ जो जता दिया। सतीने आत्महत्या की थी, मैं कसम खाती हूँ कि किसीके घर रसोई बनाके पेट पालूँगी, पर तेरा अन्न अब न खाऊँगी। तूने किया क्या, उनका अपमान किया!"

अन्नपूर्णाका चरित्र साहित्यिक दृष्टिसे अपने आपमे एक पूर्ण कलाकृति है, एव सामाजिक दृष्टिसे सबके लिए एक महान् आदर्श। पारिवारिक जीवनकी सफलताका श्रेय उसे बडी आसानीके साथ दिया जा सकता है।

विराज बहू

[विराज बौउ]

●

'विराज बहू' शरत्की उन विरल कृतियोमे-से एक है, जिनमे जीवनके अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्रका अकन हुआ है। उपन्यासकारकी अन्य रच-नाओकी भाँति यह भी अपने प्रमुख चरित्रपर ही केन्द्रित है, परतु फिर भी इसमे बाह्य जीवनका चित्रण हुआ हे। शरत्के अधिकाश उपन्यासोकी भौगोलिक पट-भूमि प्राय· एक ही रहा करती है, परतु 'विराज बहू'मे ऐसी बात नही है। इसका घटनास्थल पूर्वार्द्धमे स्थिर रहनेके बाद उत्तरार्द्धमे कुछ-कुछ बदलने लगता है, परतु फिर भी उसकी अधिकाश घटनाएँ सप्तग्राममे ही होती है। वस्तुत शरत्की कला भावनाओकी गहराईमे इतना उलझ जाती है कि स्वभावत ही उसे घटनास्थलके बाह्य रूप एव उनके भौगोलिक परिवर्त्तनका विशेष ध्यान नही रहता। इसीलिए समयका पर्याप्त व्यवधान रखते हुए भी शरत्के उपन्यास अपनी रगभूमि नही बदलते। उनमे पात्रो एव घटनाओका रगमच प्राय एक ही रहता है।

इस उपन्यासकी नायिका स्वय विराज बहू है। उसके उज्ज्वल एव अटल चरित्रका यह महाकाव्य है, उसके व्यक्तित्वकी दृढता शरत्की इस कृतिकी मूल सवेदना है। उसके चरित्रका कुछ अधिक विश्लेपण करनेके पहले यहाँ एक बातपर विचार-विमर्श कर लेना आवश्यक है। कुछ विद्वानो-का यह आक्षेप है कि 'शरत्ने अपनी कृतियोमे उन्ही पुरुष पात्रोको चित्रित किया है जो नारी-हृदयकी महत्ताका शिकार हो चुके है, और यह अनु-चित है', परतु यह धारणा बहुत उचित नही कही जा सकती, क्योकि भले ही आजके सामाजिक जीवनमे पुरुषकी महत्ता नारीसे कही

अधिक बढी-चढी हो, फिर भी स्वय पुरुषके निर्माणमे नारीका बहुत बडा हाथ है, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता। जीवनके प्रारभिक वर्षोमे व्यक्ति अपनी जननीकी क्रोडमे बनता-बिगडता है, तथा फिर तरुणाईमे कदम रखते ही नारीके प्रिया-स्वरूपसे उसे प्रेरणा मिलने लगती है। इस प्रकार सामाजिक वातावरणसे प्रभावित होते हुए भी पुरुपके व्यक्तित्वकी गठनमे नारीका बहुत बडा उत्तरदायित्व है। बस इसी अनुपातसे शरत्‌ने अपनी रचनाओमे नारी-पात्रोको प्रधानता दी है। यहाँ यह बात भी स्पष्ट रूपसे कह देनी होगी कि उपन्यासकारकी कलामे तत्कालीन बगाली नारी-समाजकी दुरवस्थाके प्रति ज्ञात अथवा अज्ञात रूपसे एक प्रतिवर्त्तनकी भावना भी अवश्य छिपी हुई है। इस तथ्यकी ओरसे हम अपनी आँख नही मूँद सकते।

एक बात और भी है। यद्यपि अपने निबध 'नारीर मूल्य' मे शरत्‌ने बडे ही विदग्धतापूर्ण ढगसे नारीके महान् मूल्यका निर्धारण किया है, परतु फिर भी नारीकी महत्ता वे उसके पुरुपसे सबधमे ही आँकते है। उसके स्वतत्र मूल्यका उन्होने कही अधिक विवेचन नही किया है, और शायद इसी लिए उनके अधिकाश उपन्यासोका नामकरण उनके नायकोंके नामोंके आधार पर ही हुआ है। 'चद्रनाथ', 'काशीनाथ', 'देवदास', 'श्रीकात' एव 'विप्रदास' जैसे उनके प्रमुख उपन्यास इस तथ्यका समर्थन करते है, और जिन रचनाओका नामकरण नायिकाओंके ऊपर हुआ है, उनमे भी नायकको भुला दिया गया हो, ऐसी बात नही है। 'विराज बहू' मे ही, उपन्यासका शीर्षक तो है 'विराज बहू' किंतु फिर भी विराजके माध्यमसे उसमे नीलाबरके चरित्रका ही अधिक अकन हुआ है। इस प्रकार यह कहना कि शरत्‌ने अपनी कृतियोमे नारीको आवश्यकतासे अधिक महत्ता प्रदान की है, बहुत सगत प्रतीत नही होता।

अब हम बहुत सक्षेपमे 'विराज बहू' की मूल कथा देखेगे। नीलाबर एव पीताबर दो भाई है। नीलाबर स्वभावका सरल एव परोपकारी है, परतु छोटा भाई पीताबर घोर स्वार्थी है। अपनी एकमात्र बहिन पुटीके

विवाहके समय पीतांबर नीलांबरसे अलग हो जाता है। इसप्रकार बडे भाई नीलांबरको ही अपनी दुलारी बहिनके विवाहका प्रबंध सँभालना पडता है। एक बडे घरमे विवाह करनेके फलस्वरूप दहेज आदिके रूपमे उसका सारा वैभव लुट जाता है और उसके परिवारपर गरीबी मँडराने लगती है। इस स्थानपर उसकी पुत्रहीना पत्नी विराज बहूके चरित्रकी दृढता देखते ही बनती है। पति और पत्नीके व्यक्तित्वका निखार अपनी चरम सीमाकी ओर बढता है, परंतु इसी बीचमे निर्धनतासे ऊबकर एवं स्वामीसे तिर-स्कृत होकर विराज बहू गाँवके नवयुवक जमीदार राजेन्द्रनाथके बजरेपर सवार होकर कलकत्तेकी ओर चल देती है। नीलांबरको जब अपनी पत्नीके इस कलंकका ज्ञान होता है तो उसका हृदय टूट जाता है। इधर विराज बहू क्षणिक आवेशमे राजेन्द्रके साथ चल देनेपर भी, अपने चरित्रकी पूर्ण रूपसे रक्षा करती हुई नदीमे गिर पडती है। इसके बाद किस प्रकार अनेक विघ्न-बाधाओका सामना करके विराज और नीलांबरका मिलन होता है, और फिर किस प्रकार अनेक उपचारोके होते हुए भी रुग्ण विराजकी मृत्यु हो जाती है, यह एक लंबी कथा है, जिसे इस इतिवृत्तात्मक ढंगसे कहना शरत्‌की कलाके प्रति अन्याय करना है।

इस प्रकार हम देखते है कि इस उपन्यासमे विराजका चरित्र ही मूल केन्द्र है जिसके चारो ओर विभिन्न घटनाएँ एवं पात्र चक्कर लगाते हैं यद्यपि यह तो नही कहा जा सकता कि 'विराज बहू'की विराज शरत्‌की चरित्र-निर्माण-कलाके उत्कृष्ट नमूनोमे-से है, परंतु फिर भी उसका व्यक्तित्व कम मर्मस्पर्शी हो, ऐसी बात नही है। प्रारंभसे लेकर अंततक पाठकका ध्यान उसीकी ओर आकर्षित रहता है और वह सोचता है कि यदि उसके भाग्यपर शासन करनेवाला नक्षत्र कुछ और अधिक दयामय होता तो अच्छा था।

'विराज बहू' के चरित्रकी मुख्य संवेदना है उसकी पति-भक्ति। सती सावित्रीके सम्मुख अपने व्यक्तित्वको रखती हुई वह कहती है, "सतीत्वमे मैं ही उनकी अपेक्षा कहाँ कम हूँ ? मेरे ही समान सतीत्वकी मर्यादाका

पालन करनवाली और स्त्रियाँ भी ससारमे हो सकती है, किंतु सतीत्वकी महिमाको मुझसे भी अधिक समझनेवाली कोई स्त्री है, यह वात माननेके लिए मै तैयार नही हूँ ।" विराजकी यह गर्वोक्ति उसके दृढ चरित्रपर ही आधारित है । वस्तुत उसके चरित्रमे पति-भक्ति इतनी अधिक है कि वाह्य ससारमे उसकी सत्ता नितात एकातिक हो गई है, उसका सारा प्रेम एकागी हो गया है । यहाँ तक कि अपने पतिके दु खसे विपन्न, वह छोटी बहू एव ननद पुटीसे भी कुछ अप्रसन्न रहती है ।

यहाँ पर विराजके चरित्रके सवधमे बडे स्वाभाविक रूपसे एक आपत्ति खडी की जा सकती है । यदि वह वस्तुत सतीत्वकी मर्यादाका पालन करनेवाली थी और विधवाके लिए सहमरण ही श्रेष्ठ समझती थी, तो फिर क्यो वह अपनी सारी कुल-लज्जाको त्यागकर राजेन्द्रके साथ सप्तग्रामके वाहर चली गई ? जो नारी समझती है कि स्वामीके चले जाने पर तो सर्वस्व ही जाता रहता है, और जो अपने पतिसे कहती है, "यदि तुमने स्त्री होकर जन्म ग्रहण किया होता तो तुम्हे मालूम होता कि स्वामी कैसी वस्तु है," उसके चरित्रमे यह कलक कैसा ?

यदि विषमोक्तिपर ध्यान न दिया जाय तो यहाँ यही कहना पडेगा कि विराजकी अत्यधिक पति-भक्ति ही मूल रूपमे उसकी चारित्रिक दुर्बलताके लिए उत्तरदायी है । यह सरल मनोविज्ञानकी वात है कि निविड प्रेमभावमे जरा-सी भी शका महान् अनर्थका कारण हो जाती है । विराजके सतीत्वपर उसके स्वामीने ही सदेह किया, वस इसी चोटसे वह पागल हो जाती है और क्षणिक आवेशके वशीभूत होकर वह राजेन्द्रके साथ चल देती है, परतु जव उसे होश आता है तो वह अपनी भयकर भूलको पहिचानती है, और अपने चरित्रकी पूर्ण रक्षा करती हुई वह नदीमे कूद पडती है । यह उसके सतीत्वका ही तेज था कि राजेन्द्र-जैसा दुराचारी व्यक्ति उसकी ओर आँख उठाकर न देख सका, शरीर-स्पर्शकी तो वात ही अलग है । वस्तुत विराजके चरित्रकी यह क्षणिक दुर्वलता नितात स्वाभाविक है और उसके व्यक्तित्वको अतिमानवीय एव कोरा आदर्शात्मक होनेसे रोकती है । उसकी

पति-भक्तिकी इससे वडी कसौटी और क्या हो सकती है कि अनेक दिनो तक एक अनाथ युवती होकर इधर-उधर घूमते हुए भी वह सतीत्वकी मर्यादाका पालन कर सकी, और जव कि उसकी अतुलनीय यौवनश्री देवताओको कामनाके योग्य थी।

विराजके चरित्रमे रूपवती एव सतीका विरल सयोग मिलता है। उसका रूप असाधारण हे जो राजा-रईसके घरोकी स्त्रियोमे भी देखनेमे नही आता। मनुष्यमे इतना भी अधिक सौदर्य हो सकता है, इस वातका लोगोको सहसा विश्वास नही हो पाता, परतु इसके साथ ही साथ वह सासारिक पापोसे इतनी अपरिचित है कि एक कुलटा स्त्री कैसी होती है, यह उसने देखातक नही। उसके प्रेमकी इस अनन्यतापर स्नेहमय नीलावरका दृढ विश्वास अवलबित है। उसकी गार्हस्थिक कुशलताके अतिरिक्त उसके चारित्रिक तेजके ही कारण वह उससे मन-ही-मन बहुत डरता हे। वस्तुत विराज 'वाहरसे चाहे कितनी ही मधुर और कोमल क्यो न जान पडे, किन्तु भीतरसे उसकी प्रकृति वहुत उग्र है', डरना तो वह किसीसे जानती ही नही। स्पष्टवादिता उसकी प्रमुख विशेपताओमे-से हे। नीलावरसे वह कह देती है "क्या मैं रूपका व्यापार करती हूँ या इस रूपके द्वारा ही तुम्हे भुला रखना चाहती हूँ?" अपनी मूल प्रकृतिमे वह आत्माभिमानिनी है, इसमे कोई सदेह नही।

अपने इन्ही चारित्रिक गुणोके कारण विराज अपने पतिके विश्वासकी अमानतदार है। राजेन्द्र जव प्रथम वार विराजसे वातचीत करता है तो उसकी चर्चा सुनकर भी नीलावर उसपर किसी भी प्रकारका सदेह नही करता। पति-पत्नीका यह प्रगाढ प्रेम उनकी वाल्यावस्थासे ही सचित होता आया है। छोटी बहू मोहिनी विराजसे ठीक ही कहती है, "ससारमे कितनी ऐसी सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ है, जिनके भाग्यमे तुम्हारे ऐसा स्वामी बदा हो।" नीलावर किसी भी प्रकार अपनी पत्नीपर अविश्वास करनेके लिए तैयार नही। वह स्पष्ट कहता है, "उसके हृदयमे ज्ञान और वुद्धिका भली भाँति उन्मेष होनेसे पहले ही वह अपने प्राण मुझे सौप चुकी थी। आज भी

उसके प्राण मेरे पास हे ।" छोटी वहू भी इसी वातका समर्थन करती है "दीदीने आपसे यह वर माँग लिया था कि स्वामीके चरणोके समीप मस्तक रखकर मै प्राणत्याग कर सकूँ । वह किसी भी प्रकार निष्फल नही हो सकता ।" शील और विश्वासका यह अपूर्व सयोग सचमुच ही सराहनीय है । विराजने तो नीलावरको अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, इसीलिए वह अपने अपराधका निर्णय स्वय नही कर पाती । उसका सपूर्ण अस्तित्व पतिके अस्तित्वके साथ एकाकार हो गया है ।

विराजका चरित्र समग्र रूपसे शरत्‌की नारी सबधी धारणाओपर विशेप प्रकाश डालता है । 'विराज वहू'का अध्ययन इस बातका स्पष्ट रूपसे परिचायक है कि शरत्‌की नारियोके प्रेममे सेक्सकी प्रधानता नही है । उनके पुरुष-पात्रो एव नारी-पात्रोके पारस्परिक सवध सामान्य ऐद्रिकतासे रहित है । विराज एव नीलावरमे इतना प्रगाढ प्रेम होनेपर भी उनके चरित्र-मे पाशविक वासनाओको कही उभारा नही गया है। इसीलिए शरत्‌की कृतियोमे स्नेहकी निर्मल मदाकिनी वहती है, वासनाकी कलुपित वैतरणी नही। प्रसिद्ध उपन्याम 'वदरिग हाइटस' मे प्रदर्शित प्रेमको व्याख्या करते हुए एक समालोचकने कहा है--"अपनी सारी गहराईमे कैथरीन (उपन्यासकी नायिका) का प्रेम सेक्स-रहित है, उसमे ऐद्रिकताका ऐसा ही अभाव है, जैसा कि उस आकर्पणमे जो कि लहरोको चद्रमाकी ओर खीचता है और लोहेको चुबककी ओर ।" विराजके चरित्रकी गवाहीपर हम कह सकते हे कि शरत्‌की नारियोका प्रेम प्राय ऐसा ही है ।

विराजके व्यक्तित्वकी दूसरी प्रमुख विशेषता है उसकी अटल पति-भक्ति । वस्तुत उपन्यासकारके सभी प्रतिनिधि नारी-पात्रोके सस्कार नितात भारतीय हे । यहाँ हमे 'शेप प्रश्न'की कमल एव 'चरित्रहीन'की किरणमयीको अपवाद-स्वरूप स्वीकार करना होगा । इस तथ्यके समर्थनमे स्वय शरत् बाबूकी स्वीकारोक्ति नीचे उद्धृत की जाती है-"तुम्हारी यह बात मै मानता हूँ । अन्नदा दीदी ('श्रीकात'की एक सती नारी) के प्रति वास्तवमे मेरी भी आतरिक श्रद्धा है । मेरे जन्मगत सस्कार आख़िर

भारतीय ही है।"—(इलाचद्र जोशी . 'साहित्य-सर्जना' पृष्ठ १४३)।
शरत्‌के नारी-पात्रोकी सामान्य पट-भूमिकी विवेचना करते समय हमे यहाँ इस बातका भी स्पष्ट उल्लेख कर देना होगा कि उपन्यासकारके पुरुष-पात्रोमे जो चरित्रकी विविधता द्रष्टव्य है, वह उसके नारी-पात्रोमे नही, क्योकि उनमेसे सबके व्यक्तित्व प्राय एक ही भावधारासे अनुप्राणित है।

अब इस स्थलपर इस बातकी भी सक्षिप्त चर्चा अप्रासगिक न होगी कि शरत्‌के नारी पात्रोके नामकरणमे मनोविज्ञान बडे सुदर ढगसे निभाया गया है। एक प्रकारसे हम उनके पात्रो के नामसे ही उनके रूप और गुणोकी कल्पना कर लेते है। अन्नपूर्णामे यदि हमे किसी दयालु रमणीके स्वरूपकी व्यजना मिलती है, तो एलोकेशीके नामसे कुछ छल-प्रपचकी ध्वनि निकलती है। विराज बहूमे जो धैर्य समाविष्ट है, वह पुटीमे कहाँ ? इसीप्रकार कमलमे यदि हमे एक शात प्रभविष्णुताका आभास मिलता है तो मनोरमामे एक चचल आकर्पणकी छाया दिखाई देती है। 'विप्रदास'मे दयामयी एव वदना नाम भी ऐसे ही ध्वनिपूर्ण है। नामका मनोविज्ञान शरत्‌की कलामे बडे सुगठित रूपमे दिखाई देता है।

प्रकारातरसे यह बता देना अनुचित न होगा कि विराजके चरित्रके माध्यमसे शरत्‌के सामान्य नारी पात्रोके कुछ गुणोकी व्याख्या यहाँ केवल इसलिए की गई है कि 'विराज बहू'मे शरत् पहली बार विराजके रूपमे नारीका एक तीव्र व्यक्तित्व हमारे सामने लाये है, जिसके चरित्रमे सुख-दु खका ताना-बाना जीवनके धूप-छाँही रगोसे बुना गया है। अवश्य ही इस धूप-छाँही पटके अधिकाश भागपर छायाका ही अधिकार द्रष्टव्य है। 'चद्र-नाथ'मे सरयूके चरित्रमे जो विविधता लानेका प्रयत्न किया गया था, वह 'विराज बहू'मे कुछ और आगे बढता दिखाई देता है।

ऊपर विराजके चरित्रकी विवेचनासे स्पष्ट ही है कि उपन्यासमे उसके व्यक्तित्वके तेजके सम्मुख अन्य नारी-पात्र ठहर नही पाते, परतु इससे दूसरे चरित्रोका हीनरजन हुआ हो, ऐसी बात नही है। छोटी बहू मोहिनीका अकन अत्यत सूक्ष्म होनेपर भी उतना ही प्राणवान् है, जितना कि स्वय विराज

का । वस्तुत. उसका चरित्र ऐसा ही है जो इस तथ्यका प्रतिपादन करता है, "स्त्रीको प्यार न करना अन्याय है ।" उसके हृदयकी विशालताको देखकर विराजको कहना पडता है, "छोटी बहू, मैंने सभीको पहिचान लिया है, केवल तुम्हे अभी तक नही पहचान पाई थी ।" किंतु इससे मोहिनीकी नम्रतामे कोई अतर नही पडता । वह तो अपने सारे चरित्र-निर्माणका श्रेय अपनी योग्य जिठानीको ही देती है, "मुझे जो कुछ भी जानकारी है, वह सब तुम्हारे चरणोसे !" वह विराजपर अपने सर्वस्वके साथ विश्वास करती है। जब तक चद्र-सूर्य उदय होते रहेंगे, वह उसपर सदेह नही कर सकती । दोनो परिवारोके फिरसे मिलनेका मूल कारण वही है । पति-भक्तिमे वह भी किसी प्रकारसे कम नही है । अपने पतिकी सारी प्रताडना वह मौन होकर सहती है । 'किसीसे-शिकायत-नहीं' कोटिका चरित्र उसका है ।

नीलाबर, पीताबरकी छोटी बहिन पुटीके बारेमे हम केवल इतना ही जानते हैं 'कि उसे अपने सबसे बडे भाईका सबसे अधिक स्नेह प्राप्त है । एक ही माता-पिताकी गोदमे दोनोने जन्म लिया था। पुटी जबतक छोटी थी, तबतक नीलाबर उसे कभी गोदमे लेकर और कभी कधेपर लादकर घुमाया करता था । जहाँ वह जाता था, वहाँ साथमे पुटीको भी लिये जाता था ।' विवाहके बाद पुटीके बारेमे हमे प्राय. कुछ नही मालूम रहता । अपने पितृ-गृहके अनेक आपत्तियोमें ग्रस्त हो जानेपर वह फिर एक बार सप्तग्राममे आती है और उस समय हमे उसके चरित्रमे अधैर्यका आधिक्य दिखाई देता है ।

विराजके परिवारकी दासी सुदरीका चरित्र अत्यत साधारण कोटिका होते हुए भी एक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है । उसके व्यक्तित्वमे प्राय उन सारी बुराइयोका समावेश है, जिन्हे पाकर एक स्त्री कुलटा हो सकती है, परतु 'राक्षसत्व मे देवत्व'वाले सिद्धातका प्रतिपादन करते हुए उपन्यासकारने उसके मानसिक सस्थानमे भी भलाईके कुछ परमाणु अवशिष्ट दिखाये है । नीलाबरके अपार कष्टसे दु खित होकर वह उनकी आर्थिक सहायता तो करती ही है, साथ ही उनकी चरित्रकी दृढतासे प्रेरित होकर वह अपने प्रिय-तम निताई गागुलीका भी तिरस्कार कर देती है ।

अपनी इस चर्चाको समाप्त करते हुए हम शरत्के ऊपर किये जानेवाले एक आक्षेपका समाधान और करते चलेंगे। हिन्दीके कुछ विद्वान् प्राय कहा करते हैं कि शरत्ने अपने नारी-पात्रोको सदैव ही विपत्तिके अथाह सागरमे निमज्जित होते दिखाया है जो कुछ अस्वाभाविक है। विराज वहू भी इसका अपवाद नही है। उनके अनुसार विपदा पर विपदा पाठकको सहानुभूति-निरपेक्ष वना देती है। इस सवधमे हमे केवल इतना ही कहना है कि जिस प्रकार जीवनके वाह्य क्षेत्रके पीडनका चित्राधार होनेके कारण प्रेमचद्रजीका 'गोदान' हिन्दीकी सिरमौर कृति वन गई है, उसी प्रकार मानसिक व्यथाओका यथार्थ अकन करनेके कारण शरत् सहृदय पाठकोके इतने निकटवर्त्ती हो गये हे कि वे उनकी रचनाओमे अपने आपको ही वोलता हुआ पाते हैं। जीवनका विप सभीको पीना पडता है और उसका परिणाम भी अवश्यभावी है, शिवशकेर तो विरले ही होते हैं जो उस विपको गलेके नीचे नही उतरने देते। शरत्के अधिकाश नारी-पात्र प्राय ऐसे ही हैं।

परिणीता

•

'परिणीता' शरत्के प्रारभिक साहित्यिक जीवनकी एक गल्प है और उत्तरार्द्धकी गठनको छोडकर वह अपनेमे कोई विशेषता नही रखती। नारी-चरित्रके दृष्टिकोणसे भी इसका अध्ययन कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण नही है, किंतु जब हम शरत्की नारीके विकासकी विस्तृत विवेचना करना चाहते है, तब इसकी कुछ व्याख्या अपेक्षित हो जाती है। एक प्रकारसे 'परिणीता' शरत्की प्रख्यात कृति 'गृहदाह'का पूर्वरूप है। यही गल्प अपने विकसित एव सुगठित स्वरूपमे उस उपन्यासका आकार धारण कर लेती है जिसमे शरत्का नारी-चरित्रका अध्ययन एक दिशामे अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गया है। 'परिणीता' एव 'गृहदाह' दोनोमे ही तीन कथात्मक सघर्ष समान रूपसे विद्यमान है—एक प्रेमिकाको प्राप्त करनेके लिए दो मित्रोमे सघर्ष, इसीसे सबधित वैष्णव एव ब्राह्म सघर्ष तथा धनी एव निर्धनमे सघर्ष। प्रेम सबधी यह प्रतिद्वन्द्विता दोनोकी मूल कथा है। वस्तुत 'परिणीता'की ललिता ही समाजके प्रबल झँकोरोमे दृढ, गभीर और साथ ही साथ अस्थिर बनकर 'गृहदाह' की अचलाका रूप धारण कर लेती है। 'परिणीता' शरत्की अपरिणीत वयकी रचना है, इसीलिए उसकी नारी सरल एव पारदर्शक है, किंतु ज्यो-ज्यो उपन्यासकारका अध्ययन बढता गया, उसकी धारणा उत्तरोत्तर बदलती गई और 'गृहदाह'मे उसकी नारीका चरित्र अत्यत दुरूह एव गहन हो गया। विकासका यह अत्यत स्वाभाविक क्रम है।

'परिणीता'की मूल-कथा इस प्रकार है—गुरुचरण एक निर्धन गृहस्थ है। किरानीगीरीकरके वह किसी प्रकार अपना निर्वाह करता है। उसकी

अनाथ भाजी ललिता भी उसीके साथ रहती है। पडोसके बाबू नवीनचन्द्र रायके पुत्र शेखरके स्नेहका अधिकाश ललिताके लिए सुरक्षित हे। बचपनका यह प्रेम प्रणयमे परिणत होता है और ललिता शेखरकी परिणीता हो जाती है, परन्तु यह बात केवल उन्ही तक रहती है। इधर गुरुचरण अपनी भांजीके विवाहके लिए वर ढूंढते हैं। पडोसके एक घरमे गिरीन्द्र नामका नवयुवक आ जाता है, जिसके व्यक्तित्वसे गुरुचरण बहुत प्रभावित होते हैं। ललिताकी ओर वह भी अत्यधिक आकर्षित होता है। अपने पाससे रुपये देकर वह गुरुचरणका सारा ऋण चुका देता है। उसीके प्रभावके कारण गुरुचरण ब्राह्म धर्म स्वीकार कर लेते हैं। शेखरके हृदयको इससे बहुत चोट पहुँचती है। वह समझता है कि ललिताका विवाह गिरीन्द्रके साथ हो जायेगा। वह अपनी माँके साथ देश-भ्रमणके लिए चला जाता है। वहाँसे लौटकर आनेपर जब वह गुरुचरणकी विधवा पत्नीसे गिरीन्द्रको 'जमाई' कहकर सबोधित होते देखता है तो वह इस सबधमे एकदम निश्चित हो जाता है। इससे ललिताके प्रति उसके मनमे कुछ विरक्ति, कुछ घृणाका भाव उत्पन्न होता है। उसका विवाह दूसरी जगह तय हो जाता है, किंतु इसी बीचमे भेद खुलनेपर यह ज्ञात होता है कि गिरीन्द्रका विवाह ललिताके साथ न होकर उसकी छोटी बहिन अन्नाकालीके साथ हुआ है। तब शेखरके मनमे गिरीन्द्रके प्रति द्वेषका स्थान श्रद्धा ले लेती है; और उसकी माँ भुवनेश्वरी अपनी स्नेहपात्री ललिताको अपनी पुत्र-वधूके रूपमे पाकर फूली नही समाती। वह दौडी-दौडी अपने बडे लडके अविनाशको बताने जाती है, 'व्याहकी दुलहिन बदल गई है।'

'परिणीता'मे ललिताके चरित्रका विश्लेषण बहुत दुरूह नही है। उसके मानसिक-सस्थानमे वे गहराइयाँ नही हैं, जिनके लिए शरत्‌का नारी-समाज प्रसिद्ध है। वैसे तो ललिताके प्यारका क्षेत्र बहुत विस्तृत है—वह शेखरको, शेखरकी माँको, अपने मामाको, गिरीन्द्रको एव परिवारके अन्य सब व्यक्तियोको स्नेहका दान देती है, परतु उसके हृदयकी विशेष रागात्मक वृत्तियां तो जैसे शेखरपर ही केन्द्रित हैं। उसका प्रेम सरल एव सार्व-

जनिक होते हुए भी एक विशिष्ट व्यक्तिके लिए विशेष प्रकारका है। बस चरित्रकी यह सवेदना ही 'परिणीता'की आधार-शिला है।

उपन्यासकी पट-भूमिका निर्माण नगरकी सामूहिक हलचल एव थकित गुरुचरणकी अनेक चिताओसे हुआ है। इस बाह्य एव आन्तरिक कोलाहलके बीच जब घटना-स्थलसे प्रथम बार परदा उठता है तो अपने क्लात एव जर्जरित मामाको धीरज बँधाती हुई तेरह वर्षकी किशोरी ललिताको हम देखते है। निर्धनताके फलस्वरूप समयसे पहले ही उसमे विचार-शक्तिका विकास हो चला है। 'इस जीर्ण-शीर्ण गुरुभार-ग्रस्त अकाल-वृद्ध मामाके हृदयकी छिपी हुई व्यथाको इस घरमे उससे ज्यादा और कोई नही समझता।' उसके व्यवहारमे सरलता है एव हृदयमे सहानुभूति।

किंतु इसके पहले कि पाठक ललिताके बारेमे कुछ अधिक सोच सके, उपन्यासकार स्वय ही उसके सामने उस समस्याका आभास दे देता है जो एक निर्धन बगाली गृहस्थको उन्निद्र रोगतकका उपहार प्रदान कर सकती है। गुरुचरण कहते है, "अपनी इस बिटियाकी अगर राजाके घर दे सकता तो समझता कि हाँ, एक अच्छा काम किया।" परतु प्रश्न तो यह है कि यह अच्छा काम कैसे हो ? अभी इस वार्त्तालापके कुछ ही क्षण पहले दयामय भगवान्ने उन्हे पाँचवी कन्या प्रदान की है। इस रत्नका उन्हे कितना अनादर करना पडेगा, इसे वे भलीभाँति जानते है। पर इस समय तो उन्हे ललिताका विशेष ध्यान है, "राजाके मुकुटपर जो कोहिनूर चमकता है, वैसे ढेरो कोहिनूरोके साथ तोलनेपर भी मेरी इस बिटियाकी कीमत नही हो सकती। पर इस बातको समझेगा कौन ? पैसेकी कमीके कारण मुझे ऐसे रत्नको भी गँवा देना पडेगा।" इन पक्तियोमे वस्तुत समाजके अनेक गुरुचरण बोल रहे है, जिनके सिरपर कन्या-दायका भार उन्हे चैन नही लेने देता।

'ललिता देखनेमे जरा श्यामवर्ण जरूर है, पर ऐसी आँखे, ऐसा चेहरा, ऐसी हँसी, इतनी दया-ममता दुनियामे ढूँढनेपर भी नही मिलेगी'—मामाकी इस उक्तिमे-से यदि अतिशयोक्तिका अश निकाल दिया जाय, तब भी

भाजीकी आतरिक शुभ्रतामे कोई विशेप कमी नही पडती। ललिताका चरित्र उस अबोध कुसुम-कलीकी भाँति है, जिसमे अधिक प्रभविष्णुता एवं आकर्षण भले ही न हो, किंतु उसकी अपनी जो निश्छलता एव स्निग्धता है, वह भी कम मूल्यवान् नही।

शेखर एव ललिताका पारस्परिक रागात्मक सबध नितात सहज एव प्राकृतिक है। 'वह जानती है कि शेखरकी बिना आज्ञाके वह कही भी नही जा सकती—किसीने उसको यह बात बताई नही थी और न इस बातका उसके मनमे कोई तर्क ही उठा कि क्यो और किसलिए, किंतु जीव-मात्रमे जो स्वाभाविक सहज बुद्धि है उसी बुद्धिने उसे सिखा दिया था।' इसकी तहमे आदिम मनुष्यकी आत्मसमर्पणकी मनोवृत्ति छिपी हुई है। अपने जीवनमे व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसके सपर्कमे आनेवाले अनेक व्यक्तियोमे से कुछ दो-एक ऐसे है जो बरबस ही उसे अपनी ओर खीच लेते हैं, उसे उनका शासन मानना पड़ता है। शेखरके प्रति ललिताकी यह वृत्ति उसके बाल्यकालसे ही प्रारभ होती है। तबसे वह 'छोटी बहिन'की तरह शेखरके आस-पास घूम-फिरकर उससे पढना-लिखना सीखकर बडी हो रही है। वह शेखरके स्नेहकी पात्री है, इसे सब जानते है। बचपनका यह पवित्र सख्य-भाव तरुणाईमे कदम रखते ही किस प्रकार प्रणयकी मादकतामे परिणत हो जाता है, इसे तो स्वय प्रेमी-प्रेमिका भी शायद नही जानते।

यहाँ 'छोटी बहिन' शब्द शायद विज्ञ समालोचकोके तीरका निशाना बन सकता है, परतु यह स्पष्ट समझ रखना चाहिए कि बाल्यावस्थाके प्रेमका यह विकास उतना ही स्वाभाविक एव पवित्र है, जितना कि स्वय सूरके कृष्ण एव राधाके प्रेमका विकास, जिसके संबधमे आचार्य रामचद्र शुक्लने कहा है, "इस प्रेमकी उत्पत्तिमे रूप-लिप्सा और साहचर्यका योग है।" समाजमे व्यक्तियोकी परस्पर सवेदना जब किसी विशेप स्त्री-पुरुपके बीच कुछ अधिक निकटकी हो जाती है, तब उसीको हम प्रेम कहते है। बचपनमे इसमे सेक्सका अभाव रहता है, परतु ज्यो-ज्यो समय बीतता जाता है त्यो-त्यो व्यक्तिकी अन्य सहज-प्रवृत्तियाँ भी जाग्रत होने लगती है, किंतु ऐसे

प्रेममे वासनाका आधिक्य नही रहता, उसकी आधारशिला तो विशुद्ध स्नेहकी ही भावना है। केवल मात्र वासनापर आधारित प्रेम अस्थायी होता है, स्थायित्व स्नेहकी सरसतामे ही है।

शेखर एव ललिताके इस स्नेहके बीच गिरीन्द्रका आगमन होता है। उसके द्वारा ध्यानपूर्वक देखे जानेपर वह शरमा जाती है और तब उसे प्रथम वार अनुभव होता है कि पुरुषकी प्रीतिकी निगाह इतनी बडी लज्जाकी वात है। इसके उपरात जव वह उसके दुखित मामाके प्रति विशेष सहानुभूति दिखाने लगा तो 'वह गिरीन्द्रपर आतरिक श्रद्धा करने लगती है।' परतु उसके हृदयमे गिरीन्द्रके प्रति श्रद्धा एव शेखरके प्रति प्रेमके बीचमे कभी सघर्ष नही हुआ। उसका राग अततक शेखरपर ही केन्द्रित रहता है।

ललिता 'लक्ष्मी-सरस्वती दोनो होती हुई भी' शेखरके व्यक्तित्वसे अपने को वहुत नीचा समझती है, 'वह शेखरसे भीतर-ही-भीतर डरती है'। वस्तुत 'परिणीता'मे ललिताका चरित्र वहुत सरल अकित किया गया है। 'विराज बहू'की विराजके व्यक्तित्वमे जो तीव्रता थी, वह ललितामे नही। विराजसे नीलावर भय खाता था, किंतु यहाँ ललिता शेखरसे डरती है। चरित्र-विज्ञानके आचार्य शरत्‌ने पुरुष एव नारी दोनोके ही व्यक्तित्वमे कुछ ऐसा आकर्षण भर दिया है, जिससे कि उन्हे एक-दूसरेकी ओर वरवस खिचना पडता है। किसका जादू अधिक प्रवल पडे यह उनकी प्रकृति पर निर्भर है।

ललिता एव शेखरके बीच आँधीकी तरह गिरीन्द्र आ जाता है और उसी भाँति चला भी जाता है। किन्तु इस तूफानमे अपने व्यक्तित्वको दृढ रखनेकी क्षमता ललितामे है जो उसके एकनिष्ठ प्रेमकी परिचायक है और जिसका खडन आगे 'शेष प्रश्न'मे शरत् कमलके द्वारा करवाते है। ललिता शेखरकी परिणीता हो जाती है, परतु समाजके सम्मुख इस रूपमे आनेका साहस उनमे अभी नही है। तभी शेखर गलतफहमीका शिकार होकर ललिताका तिरस्कार करता है। वह स्थिर होकर कहती है—"मुझे वेचनेका अधिकार उन्हे है ही नही और न उन्होने वेचा ही है। यह अधिकार सिर्फ तुम्ही-

को है, तुम चाहो तो रुपया देनेके डरसे मुझे बेच भी सकते हो ।" पर शेखर इसपर कुछ ध्यान नही देता । उसे विश्वास है कि ललिता अपने इस गुप्त परिणयकी बात किसीको बताएगी नही, क्योकि उसने सुन रक्खा था, 'औरतोकी छाती फटे तो फटे पर मुँह नही फटता ।' इस बातसे उसे सतोप मिलता है और आगे वह ललिताको 'कुलटा' कहते हुए भी नही सकुचाता । गिरीन्द्रके प्रति उसका विद्वेप चरम सीमापर पहुँच जाता है, परतु जब वह उसे बादमे बताता है, "स्नेह चाहे कितना ही गहरा क्यो न हो, जान-बूझकर कोई पराई विवाहिता स्त्रीसे व्याह नही कर सकता" तो उसके चले जानेपर शेखर उसे भूमिष्ठ होकर प्रणाम करता है ।

ललिता शेखरसे तो प्रेम करती ही है साथ ही उसकी माँको भी वह अपनी ही माँ समझती है । वह शेखरसे विश्वासके साथ कहती है, "जो तुम हो सो मैं हूँ । माँ अगर तुम्हे नही छोड सकती तो मुझे भी न छोडेगी ।" भुवनेश्वरी स्वय स्वीकार करती है, "मुझे वह सिर्फ माँ कहती ही न थी, बल्कि माँकी तरह मानती और प्यार भी करती थी ।" जननीके स्नेहसे विहीन ललिता, अपनी माँईकी भरपूर गृहस्थीमे उससे भी दो बाते नही कर पाती । इसीलिए शेखरकी माँ भुवनेश्वरीके आँचलकी छाया उसे सर्वाधिक प्रिय है । 'परिणीता'मे भुवनेश्वरीके उज्ज्वल चरित्रका अकन पाठकके मनमे स्थायी घर कर लेता है । उनका वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहता है, "उम्र पचासके लगभग होगी । पर शरीरकी ऐसी सुदर गठन है कि देखने मे पैंतीस-छत्तीससे ज्यादा की नही मालूम होती और उस सुदर आवरणके भीतर जो मातृ-हृदय है, वह और भी नवीन, और भी कोमल है ।" इन शब्दोसे हमारे सम्मुख जिस भव्य मूर्तिका चित्र आता है वह श्रद्धेय है । वस्तुतः शरत्‌की आदर्श माताएँ आधुनिक प्रगतिशील महिलाओसे भी कही अधिक भावनाओमे सुलझी हुई एव किसी भी प्राचीनासे अधिक स्नेहमयी है । वे शेखरकी सम्मतिके बिना उसका विवाह नही करना चाहती । आगे चलकर 'विप्रदास'की दयामयीमे भी ऐसी ही अनुशासन-प्रियता एव ममताका सगम हुआ है ।

भुवनेश्वरीका हृदय वैसे ही बहुत कोमल है, किंतु ललिताकी अनाथा-वस्था विशेष रूपसे उनके अदर सहानुभूति जाग्रत करती है। इसीलिए वे शेखर और ललिताको समान भावसे प्यार करती हैं। शेखरके साथ गुप्त-रूपसे विवाह करनेके पहले ललिता कुछ डरती है। इसपर वह कहता है, "बाबूजी सुनेंगे तो गुस्सा होंगे, यह ठीक है, पर माँ बहुत खुश होगी।" और अतमे जब शेखर और ललिता एक साथ ही उनके चरण स्पर्श करते हैं तो, "भुवनेश्वरीकी आँखोसे आनन्दाश्रु झरने लगते हैं। वे ललिताको सच-मुच ही बहुत ज्यादा प्यार करती थी।"

गल्पके अन्य नारी-पात्रोमे कोई विशेष महत्त्वपूर्ण चरित्र नही है। ललिताकी माँईका केवल उल्लेख भर है। चारुबालाकी माँका अवश्य कुछ अकन हुआ है। उनके लिए ताश खेलनेसे बढकर प्रिय वस्तु ससारमे कोई नही है। मगर खेलनेके लिए जितना नशा है, उतनी दक्षता नही। ऐसे व्यक्तियोके जीवनके बारेमे भी यही उक्ति चरितार्थ होती है। उनमे जीवित रहनेकी लालसा तो बहुत अधिक रहती है, परतु जीवनकी कलासे वे प्राय. अनभिज्ञ होते हैं। जब मनोरमा सुनती है कि गिरीन्द्र ललिताकी माँईको एक साथ ही बहुत-सा रुपया देने जा रहा है तो उसे घोर असतोप होता है। एक गृहिणीकी स्थितिमे उसकी सचयकी मनोवृत्ति ऐसे अवसरपर जागरूक हो उठती है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, 'परिणीता'मे नारी-चरित्रके अध्ययनकी कुछ विशेप सामग्री नही है। ललिताका चरित्र अवश्य ही महत्त्वपूर्ण होता, यदि शरत् उसे कुछ और गहराईके साथ अकित करते! परतु उसकी मानस-भूमि उसकी अपरिणीत वयको देखते हुए कुछ अस्वाभा-विक नही कही जा सकती। इसी कथानकका ढाँचा लेकर शरत्‌ने बादमे अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गृहदाह' का निर्माण किया होगा, ऐसी सम्मति स्थिर करना, असगत नही है। जान तो ऐसा पडता है कि 'परिणीता'मे ललिताकी सरलता ही समयके व्यवधानसे 'गृहदाह'की अचलाके हृदयका सघर्ष बन जाती है।

चरित्रहीन

•

शरत्‌के सपूर्ण साहित्यिक जीवनमे 'चरित्रहीन'का अपना अलग महत्त्व-पूर्ण स्थान है। इस उपन्यासमे वे प्रथम वार एक ऐसी नारीका व्यक्तित्व हमारे सम्मुख लाते है जो उनकी पूर्व-परपरासे सर्वथा भिन्न है। नारी ही नही वरन् पुरुपका भी एक ऐसा ही चित्र हमे इस कृतिमे मिलता है। किरण-मयी एव सतीशके रूपमे शरत्‌ने प्रकृतिकी उन आदिम सतानोका अकन किया है, जो अपनी सारी दुर्वलताओके वावजूद भी किसी निश्चित ध्येयकी ओर अग्रसर होनेकी चेप्टा करते है। ये चरित्रहीन (?) व्यक्ति अस्थि-माससे प्रशासित होते हुए भी हृदयकी उच्च वृत्तियोसे विहीन नही होते। इस प्रकार एक ओर समाज उन्हे अपने अगणित वधनोसे दवाता है और दूसरी ओर प्राकृतिक आवश्यकताएँ। इन दोनोके सघर्पमे उनकी सुदृढ भावनाओका उभार उन्हे कीचडके कमलका रूप दे देता है। किरणमयीमे नारीका रूप अनैतिक नही, वह पूर्व-नैतिक है। उसका विद्रोही व्यक्तित्व शेलीकी 'पश्चिमी हवा' के समान समाजके अनेक स्थान-च्युत, अनावश्यक विधानोको जर्जरित पीत-पत्रोकी भाँति उडा ले जाता है।

'चरित्रहीन'की नारीकी कुछ भी व्याख्या करनेके पूर्व उसकी मूल-कथा समझ लेना नितात आवश्यक है। वात पश्चिमी विहारके एक वडे शहरसे प्रारभ होती है। उपेन्द्रका संपन्न परिवार यहीका प्रवासी है और उनके अभिन्न मित्र सतीशका भी निवास-स्थान यही है। उपेन्द्र अपनी पत्नी सुर-वालाको शायद अपने आपसे भी वढकर चाहते है और सतीश इन दोनोका परम भक्त है। शिक्षा आदिमे असफल होकर सतीश डाक्टरी पढने कलकत्ते पहुँचता है। वहाँ मेसमे रहनेवाली दासी सावित्रीसे उसका प्रेम हो जाता

है। दास्य वृत्ति करते हुए भी सावित्री एक उच्च परिवारकी साध्वी विधवा है, इसीलिए सतीशसे प्रेम करते हुए भी वह उसे अपना नही पाती। इसी बीचमे एक गलतफहमीके फलस्वरूप सावित्री सतीशकी निगाहोमे गिर जाती है, और वह मेस छोडकर पश्चिमके मकानको चल देता है।

उपेन्द्र अपने एक बाल्य-बधुकी बीमारीका समाचार पाकर सतीशको साथ लेकर कलकत्ते पहुँचते है। वहाँ अपने रुग्ण मित्र हारानकी पत्नी किरणमयीसे उनका परिचय होता है। यह दरिद्र गृह-लक्ष्मी अपने रूप-सौदर्यमे अतुलनीय है। पहले तो यह समझकर कि ये दोनो उसके मरणासन्न स्वामीकी वसीयतमे धन लेनेके लिए आये है, वह सतीश एव उपेन्द्रका तिरस्कार कर देती है। कितु फिर बादमे वह उनको हितैपी मानने लगती है। प्रेमकी भूखी यह रमणी सतीशको भाई मानती है एव उपेन्द्रको जीवन-सर्वस्व। कुछ दिन बाद उपेन्द्र घर वापस चले जाते है और इधर हारानकी मृत्यु हो जाती है।

कलकत्तेमे उपेन्द्र सतीशके साथ अपने मित्र ज्योतिपरायके यहाँ ठहरे थे। ज्योतिपकी सरल-हृदया बहिन सरोजिनी सतीशके रूप एव शीलपर सहसा मुग्ध हो जाती है।

धनाभावके कारण सावित्री सतीशसे कुछ रुपये माँगने आती है, और दुर्भाग्यवश उसी समय स्टेशनसे उपेन्द्र और सुरबालाको लेकर सतीश भी घर पहुँचता है। उपेन्द्र सावित्रीको देखते ही सतीशके प्रति घृणाका भाव प्रदर्शित करते हुए पत्नी एव छोटे भाई दिवाकरके साथ ज्योतिषके यहाँ चले जाते है। किरणमयीके यहाँ पहुँचकर उपेन्द्र दिवाकरको उसके सरक्षणमे छोडकर चल देते है। कुछ समयके उपरात उपेन्द्रकी असफल प्रेमिका किरणमयी प्रतिशोधकी भावनासे अभिभूत होकर दिवाकरको साथ लेकर अराकान चली जाती है।

उपन्यासकी कथा और भी आगे बढती है, जब सतीश और सरोजिनी मिलकर बिछुड जाते है। सुरबालाकी मृत्युके उपरात उपेन्द्र यक्ष्माके शिकार हो गये है। अतत उनकी मरणशय्याके पास महेश्वरी, उनकी बहिन

सावित्री, किरणमयी, सरोजिनी, सतीश, दिवाकर आदि सभी व्यक्ति एकत्र होते है। मरते समय उपेन्द्र सरोजिनीका हाथ सतीशको पकडा जाते है और सावित्रीसे प्रार्थना करते है कि वे उनकी दो वहिनो (किरणमयी एव सरोजिनी) तथा दो भाइयो (सतीश एव दिवाकर) की देखभाल स्वयं ही करती रहे।

पूरे उपन्यासमे आठ प्रमुख नारी-पात्र है—किरणमयी, सावित्री, सुरबाला, सरोजिनी, जगततारिणी, अघोरमयी,महेश्वरी एव दासी कामिनी। इनमेंसे किरणमयी एव सावित्रीके चरित्रोपर तो यह उपन्यास ही आधारित है; शेष मे से सुरबाला एव सरोजिनीका अकन पूरा-पूरा हुआ है तथा अन्य नारी-पात्र पार्श्व-चरित्र कहे जा सकते है। यदि एक ओर चरित्रहीन सतीशके नामपर उपन्यासका नामकरण हुआ है, तो दूसरी ओर 'चरित्र-हीना' किरणमयी भी कथा-वस्तुकी मुख्य सवेदनामे किसी प्रकार कम नही है। जटिल एव दुरूह होनेके कारण हम सर्वप्रथम उसका चरित्र-विश्लेषण करेंगे।

किरणके चरित्रको अपेक्षाकृत गहराईके साथ समझनेके लिए पृष्ठ-भूमि-स्वरूप हमे उसके पूर्वके शरत्‌के नारी-पात्रोकी सामान्य भाव-भूमिसे कुछ परिचित होना पडेगा। 'चरित्रहीन'के पहलेके सभी उपन्यासोमे शरत्‌ने नारीका चित्रण वैष्णवी भावनासे प्रेरित होकर, अत्यत सहज तथा सरलरूप-मे किया है। उनकी नारी सावित्रीके समान पति-भक्त एव भागीरथीके समान पवित्र रही है। किंतु ऐसा जान पडता है कि कुछ आगे चलकर शरत् अपनी इस सृष्टिसे पूर्णत सतुष्ट न रह सके। इस असतोषने 'किरणमयी'के उस नारी-स्वरूपको जन्म दिया जो 'श्रीकात' की अभयामे विकसित होकर, 'शेष प्रश्न'की कमलमे अपनी चरम सीमापर पहुँच गया है। नारीके इस रूपमे उन्होने अटल पति-भक्ति नही रखी, एकनिष्ठ प्रेम नही रखा, वरन् मानवीके हृदयकी अस्थिरताका मनोवैज्ञानिक चित्रण किया। शरत्‌के इस नारी-समाजमे भावनाके साथ-साथ बुद्धिका भी पूरा उन्मेष दिखाई देता है। प्रेमकी अस्थिरता उतनी ही सत्य है, जितना स्वय

प्रेम—इस तथ्यका प्रतिपादन किरण तथा कमलके चरित्रमे मिलता है। 'चरित्रहीन'मे माधवी, विराज एव ललिताके हृदयकी सरलता नही मिलती, वरन् किरणमयीके अँधेरे मनकी गहराइयोसे सामना करना पडता है, जिसके विषादपूर्ण प्रभावका निराकरण अपनी सारी पवित्रताके साथ सुरबाला तक नही कर पाती।

किरणमयी नामकी ध्वनिमे एक परीका-सा स्वरूप छिपा जान पडता है। पर यह परी यदि चद्र-किरणके समान शीतल है तो सूर्य-किरणकी भाँति प्रखर भी। इस 'दरिद्र गृहलक्ष्मी'का प्रवेश अधकारमे अपूर्व ज्योति भर देता है। किंतु उसका रूप निष्ठुर तथा मादक है; सतीशकी आँखोमे वह प्रथम भेटके समय 'प्रेत-लोककी पिशाचिनी'सी जान पडती है, परतु बादमे सतीशको ही अपनी भूलका सबसे अधिक भान होता है। अपूर्व सौंदर्यके साथ-साथ किरणमे बुद्धिका अभाव नही है, यह हमे उसके व्यवहारसे स्पष्ट जान पडता है।

किरण-जैसा सौंदर्य सतीशकी 'आँखोके आगे नही गुजरा, न जीवित न चित्रित'। पर यह निश्चित है कि सौंदर्यके अनुपातसे उसके मनमे ममता नही है। कीट्सकी 'ला बेल देम सॉ मर्सी' एव रवीन्द्रकी 'उर्वशी'की भाँति उसका रूप भी मादक है, किंतु उसमे दयाका अधिक प्रवेश नही, अवश्य ही इसकी निष्ठुरताका एक निश्चित कारण है। अपने जीवनमे उसे किसी का भरपूर प्रेम न मिल सका। स्नेहके अभावमे उसका हृदय रूखा हो गया है, उसकी वासना जाग्रत हो उठी है।

किरणमयीका अस्तित्व शारीरिक एव मानसिक वेदनाकी कहानी है। 'सास अघोरमयीने कभी उसे लाड-प्यार नही किया, बल्कि जहाँ तक हो सका उसे सताती रही। पतिने भी कभी उसपर प्रेम प्रकट नही किया।' ऐसी परिस्थितिमे उसके द्वारा सतीत्वकी मर्यादाकी उपेक्षा स्वाभाविक ही है। अपनी साससे तिरस्कृत होनेपर वह स्वय कहती है, "शोक और ताप केवल तुम्हीको तो नही है। मै भी तो मनुष्य हूँ, जब तुम इसे भूल जाती हो, तभी मुझे दुःख होता है, नही तो हजार बाते कहनेसे भी, गुस्सा नही आता।"

इस 'रहस्यमयी सुदरी'के ऊपर विपादका ऐसा आवरण पडा रहता है, जिसमे वह कभी-कभी ही मुक्त हो पाती है। उसके सौंदर्यका सतत ज्ञान उसे रूप-गर्विता बनाये रहता है, और जब उसके रूपका जादू उपेन्द्रपर नही चल पाता तो उसका हृदय घोर दु खसे अभिभूत हो उठता है। वह दिवाकरके सपर्कमे अपनेको सँभाले रहती है, किंतु जब उसके और दिवाकरके पारस्परिक सबधपर उपेन्द्र अकारण शका करते है तो उसकी प्रतिशोधकी भावना अपनी चरम सीमापर पहुँच जाती है।

उपेन्द्रके आनेके पूर्व वह अपने घर आनेवाले एक डाक्टरसे 'प्रेम' करने लगी थी, किंतु ज्योही अपने रुग्ण पतिके बधुको उसने देखा, उसका हृदय उनकी ओर बरबस ही खिंच गया। डाक्टरके उपकारका मूल्य उसने रमणीकी सर्वप्रिय वस्तु आभूपण देकर चुकाया, और उसे फिर अपने यहाँ आनेका निपेध कर दिया। किरणमयीके जीवनकी दृढतासे उपेन्द्रको भी स्त्रियोके सबधमे अपना मत परिवर्तित करना पडा। अबतक वे उन्हे 'अबला' ही समझते थे, किंतु शीघ्र ही वे जान गये, 'ऐसी स्त्रियाँ भी है जिनके आगे पुरुषोका उन्नत मस्तक आप ही झुक जाता है, जोर नही चलता, सिर झुकाना ही पडता है, ऐसी स्त्री किरणमयी है।' वस्तुत किरणका जीवन, धन एव स्नेहके अभावमे तप्त मरुस्थलके समान हो गया है, जिसमे दूर-दूरतक हरियालीका नामो-निशान नही। वह प्रारभसे लेकर अततक विपत्तियोकी कठोरतासे अनवरत युद्ध करती है। जैसा उसका उग्ररूप प्रखर है, वैसा ही उसका शातिपूर्ण विरोध भी।

किरणमयी सामाजिक विधि-विधानोसे बिल्कुल नही डरती। वह अकेले घरमे, दिवाकरको अपने साथ, अपने सरक्षणमे रखनेके लिए तैयार हो जाती है। और तब उपेन्द्र भी समझ पाते है, 'सौदर्यका जो असीम समावेश उसमे है, वह मानो अग्नि-शिखाकी तरह लहराकर ऊपर उठ रहा है, इसे आँखोसे देख तो लेना चाहिए, पर स्पर्श नही करना चाहिए।' किंतु उपेन्द्रको यह क्या मालूम कि यह अग्निशिखा केवल उन्हीके लिए शीतल भी हो सकती है।

किरणका गत जीवन बडे दु खमे बीता है। मायका कहॉ है, यह उसे मालूम नही। मामाके यहॉ पली थी पर अब उनका भी कोई समाचार ज्ञात नही। दस वर्षकी उम्रमे ही विवाहित होकर वह पतिके यहॉ आई है। और यहॉके व्यवहारने तो उसे जीवन्मृत बना रखा है। प्रेमके स्थानपर उसे उसके पतिने विद्या-दान दिया है। और इसीलिए वह पर्याप्त अध्ययन-शील एव मननशील है। उसकी अपूर्व तर्क-शक्तिमें हमे 'शेष प्रश्न'की कमल-का पूर्व-रूप स्पष्ट दिखाई देता है। मिथ्या एव सत्यका अतर उपनिषदोकी कहानीके प्रसगमे स्पष्ट करती हुई वह कहती है, "यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि मिथ्याके भुलावेसे सत्यका प्रचार नही हो सकता ... मिथ्या सदा पाप है, किंतु मिथ्यामे सत्यको मिलाकर बोलनेके समान ससारमे दूसरा पाप क्या हो सकता है?" इसीलिए उसे धार्मिक ग्रथोमे आस्था नही। 'वे सत्यसे बडे नही हैं। सत्यके सामने इनका कोई मूल्य ही नही, वह आत्माको नही मानती पर ईश्वरको 'अस्वीकार भी नही करती।' इन सब बातोसे ज्ञात होता है कि किरणमयी भावनाका प्रतिरूप होते हुए भी बुद्धिवादी है। वह मनुष्यको गुण-दोषोसे लपेटकर छोटा-मोटा देवता मान सकती है, पर ब्रह्मकी सत्तामे उसका विश्वास नही। इसी कारणसे बडे-बडे धर्माचार्योका वह तिरस्कार कर देती है, उन्हे दभी बताती है।

ऐसा जान पडता है कि किरणमयीके चरित्रके माध्यमसे शरत्‌ने पर-पराओ एव रूढियोके गर्त्तमे गिरते हुए समाजको निर्मल दीप-आलोक दिया है, यद्यपि स्वय उस दीपके आस-पाससे अधकार एव कालिमाका पूर्ण लोप नही हो सका है। प्राचीनके प्रति विद्रोहका जो भाव हमे कमलमे मिलता है, और जिसे उसने इन शब्दोमे व्यक्त किया है, "वस्तु प्राचीन होती है कालके धर्मसे, परतु उसे अच्छा होना पडता है अपने गुणोसे", वह किरण-मयीके चरित्रमे अपनी प्रारभिक स्थितिमे मिलता है। उसका व्यक्तित्व आदर्शके आग्रहमे यथार्थकी अवहेलना नही करता।

किरणमयीका तीव्र व्यक्तित्व केवल एक स्थानपर अपनी हार मानता है—उपेन्द्रके सामने। उसके रूपकी मदिरा उपेन्द्रको मत्त नही बना पाती,

इससे वह अत्यत क्षुब्ध है। और जब उसे यह ज्ञात होता है कि उपेन्द्रकी इस चारित्रिक दृढताकी पृष्ठभूमिमे सुरबालाका निविड प्रेम है, तो उसकी ईर्ष्या बरबस उभर पडती है, अन्यथा उसकी सज्जा तप पूत एव असाधारण है। विधवाका तेज शरत्की प्रमुख मान्यताओमेसे है। 'उसके (किरणके) चेहरेकी ओर देखते ही ऑख आप ही उसके पाँवोकी ओर झुक जाती है।' उपेन्द्रके सबधको अपवाद-स्वरूप छोडकर, किरणमयी एक असहाय प्रेमिका नही है।

परतु उसके व्यक्तित्वको एक स्थानपर और झुकना पडता है। सुरबालाके अटल विश्वासके सम्मुख उसका तर्क हार मान लेता है। प्रथम दृष्टिमे ही सुरबालाके चरित्रका शासन वह स्वीकार कर लेती है। इसका मूल कारण शायद यही है कि किरणके चरित्रमे जो कुछ असत् है वह सुरबालाके चरित्रमे निर्मल एव पवित्र हो गया है। इसीलिए अपने सारे प्रखर तर्कोके साथ भी वह सुरबालाके 'सीधे-साधे शब्दो और लडकपनसे' विचलित हो जाती है। ओर तभी वहाँसे वापस घर पहुँचनेपर उसका गृहिणी-स्वरूप निखर पडता है।

किरणमयीके चारित्रिक अवयवोमे उसका प्रेम सर्व-प्रमुख है। वह मुक्त प्रेमका समर्थन करती हुई भी व्यभिचारिणी नही कही जा सकती। प्रतिदानके अभावमे वह स्वामीसे प्रेम न कर सकी, यह वह स्वय स्वीकार करती है। और जब ऐसे समयमे उसकी चित्त-वृत्तियाँ अस्थिर हो रही थी तभी उपेन्द्रका आगमन हुआ। उसका सारा प्रेम उन्हीपर केन्द्रित हो गया। व्यक्तित्वकी दृढतामे उसने उन्हे अपना गुरु माना और कहा, "प्रेमकी लालसा मेरे अदर कितनी प्रबल है, यह तुमको देखकर पहले-पहल जाना है. . मैंने कितनोको ठगा है, लेकिन तुमको न ठग सकूँगी।" पर यह नियतिका व्यग है कि उसने अपना नव्य एकनिष्ठ प्रेम एक ऐसे व्यक्तिको दिया जो उसको स्वीकार करनेमे नितात असहाय था। इसीलिए 'चरित्रहीन'का अत दुखद है, एव किरणमयीका जीवन वेदनाकी मार्मिक गाथा बन गया है। नेत्रहीनके लिए ज्योतिके समान उपेन्द्र उसके पास आये, परतु वह किसी भी प्रकार

उन्हे प्राप्त न कर सकी। सुरबालाने उसका पति-प्रेम विकसित किया, परतु तबतक बहुत देर हो चुकी थी।

किरणमयीका प्रेम सेक्स-रहित नही माना जा सकता, वरन् उसके प्रेममे तो वासनाकी ही प्रधानता है। वह मानती है कि 'सतान धारण करनेके लिए जो सब लक्षण विशेष उपयोगी है, उनकी समष्टिका विकास ही स्त्रीका स्वरूप है। स्त्रीका बाल्य-रूप मनुष्यको मुग्ध कर सकनेपर भी उसे उन्मत्त नही कर सकता और जब वह सतान धारण करनेकी उम्र पार कर जाती है, तब फिर ठीक वही बात रह जाती है। स्त्रीकी ही नही, पुरुषकी भी यही अवस्था है। तभी तक उसमे रूप रहता है, जबतक वह सतान पैदा कर सकता है। यह सतान उत्पन्न करनेकी योग्यता ही उसका रूप है—यौवन है। सतान उत्पन्न करनेकी इच्छा उसका प्रेम है'। किरणमयी-के चरित्रमे पाशविक भावनाओका अत्यधिक उभार उसकी अर्द्ध-दमित वासनाके फलस्वरूप है। इसीलिए निर्मल प्रेमकी बात उसके मनमे नही आ सकती। स्वर्गीय प्रेम एव पाशविक वृत्तियोको वह एक ही वस्तु मानती है। वह प्रेममे अच्छे-बुरेका भी विभाग नही करती, प्रेम-मात्र स्वाभा-विक एव प्राकृतिक है, यही उसकी एक मान्यता है। 'मनुष्य जन्म लेनेके बादसे जबतक अपनी देहमे सृष्टि-शक्तिका सचय नही करता, तबतक प्रेमका सिहद्वार उसके आगे बद ही रहता है। वह सिहद्वार प्रवृत्तिकी ताडनासे ही उन्मुक्त होता है विश्वभरमे सृष्टिका जो यह अविच्छिन्न खेल हो रहा है—वह रूपका ही खेल है—उसे स्वर्गीय स्वीकार नही करनेसे कुठित या लज्जित होनेकी कोई बात नही है।' जैसा हम कह चुके है, किरण-मयीके प्रवृत्ति-प्रधान प्रेममे उच्छृखल एव उद्दाम वासनाका यह उभार उसकी सेक्स सबधी शारीरिक एव मानसिक आवश्यकताओकी पूर्त्ति न होनेसे है। इस क्षेत्रमे समग्ररूपसे उसका चरित्र 'हिस्टीरिक'-सा हो गया है।

प्रेमको शारीरिक वृत्तिका प्रतिरूप मानते हुए वह अपना प्रमुख तर्क देती है—"जो कोई स्वर्गीय प्रेमका उपभोग करना चाहेगा, वह इतना नही

कह सकता, 'मैं प्रवृत्तिकी ताडनासे परे हूँ,' प्रेम इतनी आसान चीज नही है. जीवनका प्रत्येक अणु-परमाणु, प्रत्येक रक्तकण अपनी उत्कृष्ट परिणतिमे विकास पानेका लोभ सवरण नही कर सकता। जिस देहमे उसका जन्म होता है, उस देहमे उसकी परिणतिकी निर्दिष्ट सीमा जव पूरी हो जाती है, तव वही परिणति उसकी जवानी कहलाती है। केवल तभी वह दूसरी देहके सयोगसे सार्थक होनेके लिए, रग-रग और नस-नसमे विप्लवका जो ताण्डव नृत्य मचाती है, इसे ही पडित लोगोके नीति शास्त्रोमे पाशविक और घृण्य वताया गया है। इसका तात्पर्य न समझकर ही पडितोने इसे घृणित कहा है, वीभत्स वताकर सतोप कर लिया है कोई प्रेम कभी घृणाकी वस्तु नही हो सकता।" इन पक्तियोमे एक ओर किरणमयीकी अतृप्त वासना वोल रही है और दूसरी ओर उसकी विखरी हुई विचार-शक्ति। वह तो प्रेमको दुर्दमनीय एव प्राकृतिक मानती है, इसीलिए उसके भले-वुरेका न्याय नही हो सकता। उसके जीवन-दर्शनमे भूलोके लिए पर्याप्त स्थान है। 'जव पाप दूर करनेका सामर्थ्य न हो, तव यदि सहन करनेकी क्षमता नही रहेगी, तो इससे क्या सुविधा होगी?' वस्तुत अन्याय, अधर्म, अक्षमताको क्षमाकर प्रश्रय देना धर्मका ही अनुशासन है।

किरणमयीके चरित्रके उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि उसके व्यक्तित्व-मे 'अपरिमित सयम (व्यावहारिक) और असीम अहकार'का पर्याप्त विकास हो चुका है। इसीलिए वह ईश्वर, लोक-परलोक आदिको नही मानती। उसके अदरके इस अहका अनुभव करके ही उपेन्द्रने कहा था, "आप किसीसे प्रेम नही कर सकेंगी, यह आपकी सामर्थ्यके वाहर है, आप केवल सर्वनाश कर सकेगी।" परतु यह कठोर व्यग्य है कि इतना तिरस्कृत होनेपर भी वह उपेन्द्रके आसनपर कभी किसीको न बैठा सकी। और जब उपेन्द्रने उसको प्रेमका प्रतिदान नही दिया तो प्रतिशोधके आवेशमे वह अपने साथ दिवाकरको लेकर अराकान चल दी, जिससे उपेन्द्र भी सिर उठाकर वात करने योग्य न रह सके। इसके लिए वह दिवाकरको अपने रूप और यौवन-के जादूमे फँसाकर उसे धोखा देती रही, यहाँतक कि उसे अपने साथ सोने-

के लिए वाध्य किया। परतु दिवाकरसे उसने प्रेम कभी नही किया और न कर सकती थी। इस झूठे प्रेम-प्रदर्शनसे उसके हृदयकी कठोरताकी भली-भाँति व्यजना होती है। अपने कलेजेपर पत्थर रखकर ही वह दिवाकरको मनमे छोटा भाई मानते हुए भी, अपने आपको विधवा बताकर—उसे अपनी ओर ललचाती रही। और यह सब उसने उपेन्द्रसे अपने भग्न हृदयके प्रतिशोधके लिए किया। 'समाजके दभको धक्का पहुँचाना' तो उसका आनुषगिक उद्देश्य था। वह स्वय स्वीकार करती है, "एक और मनुष्यका सर्वनाश करनेका निश्चय करके ही मैने तुम्हारा सर्वनाश किया।" इस प्रकार हम देखते है कि अपनी प्रसिद्ध कविता 'उर्वशी' मे कविगुरु रवीन्द्रने नारीके जिस रूपसि-जादूगरनी स्वरूपकी चर्चा की है, उसका अधिकाश हमे किरणमयीके चरित्रमे मिल जाता है, परतु क्योकि किरणकी परि-स्थितियाँ इसके लिए उत्तरदायी है, इसीलिए हम उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते है।

जैसा हम कह चुके है, इतना सब हो जानेपर भी, किरणमयीको व्यभिचारिणी नही कहा जा सकता। अराकानमे सेठके अनेक प्रलोभनोको वह ठुकरा देती है। सतीश कहता है, "तुम कुलटा हो जाओगी, यह मै मर जानेपर भी विश्वास न करूँगा।" उपेन्द्र भी अतमे उसके प्रेमको मानते हुए उसकी प्रशसा करते है। अराकानसे लौटनेपर तो उसका चरित्र अत्यत मार्मिक एव स्फटिक-सदृश निर्मल हो जाता है जैसे अँधेरे स्थानके कीचडमे पडी हुई कोई मणि फिर वाहर निकाल ली जाय। उपेन्द्रको मृत्युसे बचाने-के लिए वह अर्द्ध-विक्षिप्तावस्थामे आस्तिक हो जाती है। उनसे वह कहती है, "मेरे ऑचलमे कालीमाईका प्रसाद बँधा हुआ है, देवर जरा खाओगे ? आह! कितनी रोई, कितनी तुम्हारे लिए प्रार्थनाएँ की, कहा—माँ काली, देवरकी वीमारी दूरकर मुझे दे दो।" प्रेममे पागल एव वेदनामे विक्षुब्ध नारीका यह स्नेह पाठकके हृदयको द्रवीभूत कर देता है, और यह नियति चक्र है कि जब उपेन्द्र अपनी अतिम साँस ले रहे थे उस समय 'किरण-मयी उद्वेगरहित हो, गहरी नीदके खर्राटे भर रही थी।' वस्तुत उपन्यास-

की यह अतिम पक्ति, अपने प्रेममे असफल, अपने प्रतिशोधमे असफल एवं अपने जीवनमे असफल किरणके चरित्रको 'फिनिशिग टच' देती है, जिसके विना उसका चरित्र अधूरा रह जाता ।

किरणमयीके व्यक्तित्वका इतना विश्लेपण करनेके उपरात अव हम वहुत सक्षेपमे उसके चरित्रकी समस्यापर विचार करेगे । वस्तुत नारीका जीवन उसके प्रेमका पर्याय है । किरणमयी तीन व्यक्तियोसे प्रेम करती है—सतीश एव दिवाकरसे भाईके रूपमे तथा उपेन्द्रसे जीवन-सर्वस्वके रूपमे । पति-प्रेमका उसे अधिक अवसर ही नही मिलता । किरणके इस प्रेमकी समग्र रूपसे दो प्रमुख समस्याएँ है—एक है उसके प्रेममे व्यभिचार–वुद्धि, एव दूसरी है उसके प्रेममे वासनाका अत्यधिक उभार । जहाँतक व्यभिचार-वुद्धिका सबध है, किरणको अपने विवाहित जीवन एव विवाहपूर्व-के जीवनमे कोई ऐसा व्यक्ति न मिल सका, जिसके ऊपर वह अपने हृदयकी वृत्तियोको केन्द्रित कर सकती । उसका मन मरु-भूमिके थके-हारे पथिकके समान हो गया है जो किसी भी हरे-भरे 'ओसिस' को देखकर, उसकी ओर वरवस वढने लगता है । परतु किरणके हृदयकी यह अस्थिरता तभी-तक है जवतक वह उपेन्द्रको नही देखती । उपेन्द्रको देखनेपर वह उन्हे आत्म-समर्पण-सा कर देती है, और अततक उन्हीकी स्मृति सँजोये रहती है । इसीलिए किरणको व्यभिचारिणी नही कहा जा सकता, कामिनी-द्वारा वेश्या कहकर सबोधित होनेपर वह मूर्च्छित हो जाती है । यहाँ एक वात ध्यान देनेकी और है; किरण सवको प्रेम नही कर सकती । उसके हृदयमे तरलताकी अपेक्षा निष्ठुरताका आधिक्य है । इसका कारण कदाचित् उसका अनुपम रूप हो सकता है । कहा जाता है कि जिन व्यक्तियोका सौन्दर्य असाधारण होता है, वे अधिक स्नेहशील नही होते, क्योकि सौदर्य और प्रेम पर्यायवाची होते है, अत जिसके पास पर्याप्त सौदर्य होता है उसे वाह्य सोदर्यकी—वाह्य प्रेमकी अपेक्षा नही होती । किरणके प्रेमकी दूसरी मुख्य समस्या है उसमे वासनाका उभार । इसके सबधमे पहले ही कहा जा चुका है कि वासनाका यह उभार उसकी शारीरिक एव मानसिक सेक्स-आवश्य-

कताओकी पूर्ति न होनेके कारण है। कुछ भी हो, यह रहस्यमयी सुदरी प्रधानत रूपकी जादूगरनी है। नियतिसे उसे कोई शिकायत नही, अपनेसे उसे कोई विशेष असतोष नही।

किरणके उपरात उपन्यासमे दूसरा महत्त्वपूर्ण चरित्र सावित्रीका है। प्रधानताकी दृष्टिसे दोनो पात्रोमे कोई अतर नही। सावित्रीका चरित्र अपेक्षाकृत कम अकित होनेपर भी अधिक उभर सका है, उसका व्यक्तित्व उपन्यासमे व्यजनात्मक है। वह एक अच्छे कुलकी बाल-विधवा है, जो एक दुष्ट व्यक्तिके फेरमे पडकर अपना सम्मान तो गँवा चुकी है, पर उसका सतीत्व सुरक्षित है। सतीशके प्रति असहाय प्रेम उसके चरित्रकी मुख्य सवेदना है। प्रथम वार जब हमे कलकत्तेकी मेसमे एक दासीके रूपमे उसके दर्शन होते है, तो उपन्यासकार उसका वर्णन करता है, "एकहरा वदन था, रग गोरा और अग-अग साँचेमे ढले हुए-से थे। उम्र लगभग बाईस-तेईस वर्षकी होगी। लेकिन देखनेसे इससे भी कम उम्रकी मालूम होती थी।" आग चलकर जब वह कहती है, "मेरे कोई बाबू-साबू नही है, मेरे बाबू तो आप—आप लोग ही है" तो हमे उसका सतीशके प्रति अनुराग स्पष्ट लक्षित होता है, परतु इस 'चरित्रहीन'के प्रति एक विशेष आकर्षण रखती हुई भी, वह उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा नही करती। वह सतीशको अपना वश-परिचयतक नही बताती, यद्यपि वह स्वय कहता है, "न तो नीचोका-सा तुम्हारा व्यवहार है, न वैसी बातचीत और न सूरत-शक्ल ही।" आखिर अपने नौकर बिहारीसे उसे यह ज्ञात हो जाता है कि वह 'भले घरकी ही लडकी है।'

प्रेमका आकर्षण दोनो ओरसे होता है। सतीश सावित्रीको अपने अधिक निकट लाना चाहता है, परतु वह पास होती हुई भी दूर ही रहती है। जब अनायास ही वह उसके सम्मुख प्रेमका प्रस्ताव रखता है तो वह कहती है, "यह चौथी बार है। इसके पहले भी तीन महाशयोने मुझे यही चीज देनी चाही थी, ..यह कूडा-करकट बटोरकर रखनेकी जगह मेरे पास नही है।" वास्तविक बात यह है कि इस क्षेत्रमे एकबार धोखा खा जानेपर

वह कुछ सचेत रहती हे और फिर यदि वह सतीशपर विश्वास कर भी ले, तो अपनेको कलकित समझती हुई अपने ससर्गसे वह सतीशको नीचे नही गिराना चाहती। इस प्रेममे भोगसे अधिक त्यागका महत्त्व है।

सतीश सावित्रीकी इस मनोदशाको नही समझ पाता और बार-बार सोचता है, "सावित्री उसे निरतर क्यो खीचती है और निकट आनेपर क्यो ऐसा निष्ठुर आघातकर दूर हटा देती हे।" वह भलीभाँति जानता है कि पतिता होनेका कोई भी चिह्न इस मुखडेमे नही है, और साथ ही वह यह भी समझता है कि सावित्री उसकी परम हितेच्छु है, परंतु उसे यह ज्ञात नही कि सावित्री उससे प्रेम करती हुई भी उसे अपनेसे दूर रखकर उसकी हित-साधनामे सलग्न है। किरणमयी सावित्रीका पूरा परिचय प्राप्त किये बिना ही सतीशसे कहती है, "वह तुमसे अधिक तुम्हारी भलाई चाहनेवाली है, यह बात कभी न भूलना।" वस्तुत इस एक वाक्यमे ही सावित्रीके चरित्रकी मूल सवेदना छिपी हुई है। और तभी सतीशका बुड्ढा नौकर बिहारी कहता है, "बेटी तुमको एक बार देख लेनेपर पशु-पक्षी भी नही भूल सकते।"

सावित्रीकी सहानुभूति अत्यत गहरी एव उसकी सवेदन-शक्ति अत्यत तीव्र है। वह यह नही चाहती कि उसके प्रेमकी दृढताको समझकर सतीश उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करे। वह चाहती है कि गलतफहमीमे पडा हुआ सतीश उससे घृणा ही करता रहे। वह सतीशसे कहती है कि वह एक दासी है, रुपया मात्रसे ही उसका प्रेम है, किंतु दूसरी ओर वह सब कुछ जाननेवाले बिहारीसे आग्रह कर जाती है कि वह बाबूको यह कभी न बतावे कि सावित्री उस समय झूठ बोली थी। प्रेमीके लिए आत्म-त्यागका ऐसा उदाहरण हमे प्राय नही मिलता।

सावित्रीके चले जानेपर कभी-कभी सतीशको उसकी याद आ जाती है। वह सोचता है, "युवती रमणीका मन पाना एक बात है, किंतु उसका व्यवहार कर सकना दूसरी बात है" किंतु सावित्रीके चरित्रका वास्तविक मूल्य तो बिहारी जानता है। सरोजिनीसे वह कहता है, "मैंने उन्हे बराबर

अपनी कन्याकी तरह जाना है और माताकी तरह उनका आदर-मान किया है। नही जानता किस शापसे पृथ्वीमे जन्म लेकर इतना दुख पाती है? अहा वे साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा हैं सबको वे समान भावसे देखती थी।" आगे भी वह बताता है, "बाबू (सतीश) उन्हे इतना प्यार करते थे, तो भी उनसे ऐसे डरते थे, जैसे बाघसे बकरी डरती है वे बडी तेजस्विनी थी।"

जिस दिन सावित्रीको सतीशके घरमे बैठा देखकर उपेन्द्र वापस लौट गये थे, उस दिनसे उनके मनमे इस अज्ञात-कुल-शील रमणीके लिए घृणाका भाव उत्पन्न हो गया था। परतु सयोगवश पुरीमे उनकी भेट घरकी पुरानी दासी मोक्षदासे हो गई। उसने बताया, "उस छोकरी (सावित्री) ने न जाने किन आँखोसे छोटे बाबूको देखा कि उन्होने उसके लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। पर इतना करनेपर भी क्या उसने छोटे बाबूको कभी अपना बदनतक छूने दिया? कभी नही। छोकरीके चेहरेपर एक अपूर्व तेज था।" और तब चारित्रिक महत्ताके प्रतिरूप उपेन्द्रको अपनी भूलका ज्ञान हुआ। वे जान गये, 'उसे सब कोई चाहता था। जैसा रूप था, वैसा ही गुण था और वैसी ही दया-ममता भी उसमे थी।' रूप, गुण और ममताके इस सगमने सावित्रीके चरित्रको त्रिवेणी-सदृश पवित्र बना दिया है।

जब उपेन्द्रको सावित्रीका पूरा परिचय मिल जाता है तो वे उसे अपनी बहिन मानने लगते है। उन्हे उसके व्यक्तित्वकी दृढतापर गर्व होता है। वे उसे पृथ्वीकी किसी भी स्त्रीसे हेय नही मानते। वस्तुत जो कोई उसकी छायामे आता है, उसे अततक दबकर ही रहना पडता है।

सावित्रीके चरित्रका सबसे अधिक निखार उस समय द्रष्टव्य है, जब वह सतीशको सरोजिनीके हाथोमे सौपकर उपेन्द्र भैयाके साथ जाना चाहती है। उस समय वह कहती है, "मैंने बहुत दिनोसे तुमको इतना दुख दिया, किंतु किसी तरह अपनी यह देह तुमको न सौप सकी। पर मन तुम्हारा ही है। उसपर चिरकालसे तुम्हारा ही अधिकार है।" सावित्री अब योगिनीसे वियोगिनी हो जाती है। जिस समय मरणासन्न उपेन्द्रने सरोजिनीका हाथ सतीशको पकडा दिया, उस समय 'उसकी चिताकी, उसकी

वासनाकी, उसके परम सुखकी, चरम दु खकी, उसकी दुस्सह वेदनाकी आँखोके आगे ही समाधि हो गई, किंतु उसने गहरी साँसतक न निकलने दी।' उसका अस्तित्व अव जैसे निष्काम हो गया। उसके ऊपर अपने दो भाइयो, तथा दो वहिनोका भार छोडकर उपेन्द्रके प्राण-पखेरू उड गये। निष्कलक प्रेम एव अपार ममताके साथ सावित्री सवकी देख-रेख करनेके लिए रह गई—जलमे कमल-पत्रकी तरह।

सावित्रीकी ही कोटिका उपन्यासमे एक दूसरा व्यक्तित्व सुरवालाका है। पति-प्रेमको जीवनका सर्वस्व मानती हुई नारीका यह रूप अपनी प्रकृतिमे स्वर्गीय है। उसके ऊपर अनुशासनकी कठोरताका आवरण है, परतु हृदय मदाकिनी सदृश तरल है। प्रीति एव स्नेहसे निर्मित उसका चरित्र एक शात स्निग्धताका आभास देता है। विभिन्न पशु-पक्षीतक उसके आश्रयमे स्थान पाते थे, इसीलिए उसका नामकरण 'पशुराज' अथवा 'पशु'कर दिया गया है।

पति-प्रेम उसके व्यक्तित्वकी मुख्य सवेदना है। उपेन्द्रके साथ अपने सवधको वह शाश्वत मानती है—"मैं जहाँ, जिस घरमे जन्म लेती, वहाँ तुम्हे जरूर जाना पडता।" वस्तुत वह प्रेमका आधार भौतिक न मानकर आत्मिक मानती है। इसलिए वाह्य रूप-रग उसकी दृष्टिमे विशेप महत्त्व-पूर्ण नही। वह दिवाकरसे कहती है, "इस बातको सदा याद रखना कि दुनियामे आदमीके लिए वाहरी सुन्दरता ही सव कुछ नही है। अथवा केवल सौदर्य-चर्चा ही विवाहका उद्देश्य नही है।" एक शब्दमे सुरवाला 'कट्टर हिदू' है। यथारीति जप-तप उसका नित्य-आचार है। उसकी काया तप पूत है, एव विचार-शक्ति उर्वर। उपेन्द्रके शब्दोमे 'अधिक पढनेका तो उसे मौका नही मिला है, पर उसमे तर्क करनेकी बुद्धि वहुत सूक्ष्म है।' विश्वास, निष्ठा एव आस्तिकताकी सुदृढ भूमिपर ही उसका व्यक्तित्व निर्मित है। और इसी विश्वासके सम्मुख किरणमयीकी प्रखर बुद्धि झुक जाती है।

एक प्रकारसे सुरबालाके चरित्रमे असत्‌का प्रवेश हो नही- पाया है। 'वह जन्म भरमे झूठी वात कभी बोल ही नही सकती।' अपने इन्ही आचार-

विचारोके कारण वह मानस-चक्षुओसे भगवानका दिव्य दर्शन कर लेती है। किरणमयीने, शायद चरित्रकी विपमताके कारण, सुरबालाको सबसे अधिक पहचाना है। वह उपेन्द्रसे कहती है, "तुम्हारी सुरबाला सती स्त्री है, और है तुम्हारे हृदयकी परम पवित्रता। वह स्फटिककी भाँति स्वच्छ है और वज्रके समान कठोर" मरते-मरते वह उपेन्द्रसे फिर मिलनेकी आशा सँजोये रहती है। वस्तुत सुरबालाके अकनमे शरत्की उच्च चरित्रमे आस्था स्पष्ट दिखाई देती है।

'चरित्रहीन'मे सरोजिनीको एक सीधी-सरल प्रेमिकाके रूपमे अकित किया गया है। उसका चरित्र अपेक्षाकृत कम चित्रित होनेपर भी, मर्म-स्पर्शी है। 'चित्रलेखा'की यशोधराकी भाँति उपन्यासके नारी-पात्रोमे मासलता शायद सबसे अधिक उसीमे है। सतीशके प्रति उसका प्रेम बसतके पहले फूलके समान एकाएक ही खिल उठता है। हृदयकी नैसर्गिक भावनाका स्वरूप सरोजिनीके व्यक्तित्वमे पूरा-पूरा उभरा है। उसके पिता पश्चिमी सभ्यताके अनुयायी थे, परतु माँ नितात भारतीय रगमे रँगी है। इन दोनोका ही प्रभाव उसके ऊपर पडता है। अपनी सारी लज्जा एव नम्रताके साथ वह आधुनिका है। उसके वाह्यावरणमे उसके भारतीय सस्कार छिप नही गये हैं। तभी तो उसका गृहिणी-वेप देखकर सतीश कह उठता है, "अहा! कैसी अच्छी लगती हो, मानो साक्षात् लक्ष्मी हो!" वस्तुत उसकी प्रकृति प्राच्यकी है, वेष-भूपा भले ही प्रतीच्यकी हो। सतीशकी उच्छृङ्खलताको वशमे करनेके लिए सरोजिनीकी शात प्रभविष्णुता ही आवश्यक है, यह बात दूरदर्शी उपेन्द्रने भलीभाँति समझ रक्खी थी।

'अघोरमयी' एव जगततारिणीमे हमे जननीके दो स्वरूप दिखाई देते हैं। दोनोके नामोकी ध्वनियोमे जितना वैषम्य है, उतना ही वैषम्य उनके चरित्रोमे है। अघोरमयीका व्यक्तित्व दुर्बल एव कुछ कलहप्रिय है, परतु जगततारिणीका व्यक्तित्व दृढ तथा शात है। पर वात्सल्यकी मात्रा शायद दोनो नारियोमे समान रूपसे है।

दासियोमे हमे मोक्षदा तथा कामिनीके चरित्र मिलते है। इन दोनोके सहारे ही उपन्यासमे शिष्ट हास्यकी कही-कही योजना की गई है। पर साधारण गृहदासियोके समान निर्मल व्यक्तित्व दोनोमे-से किसीका भी नही। 'चरित्रहीन' के नारी-पात्रोमे उपेन्द्रकी बहिन महेश्वरीका यत्र-तत्र उल्लेख भर है। विधवा-जीवनकी सौम्यता एव तेजस्विता उनके अदर अधिक नही मिलती।

'चरित्रहीन' मे सपूर्ण नारी-समाजकी व्याख्या करनेके उपरात अब हम बहुत सक्षेपमे उसकी समग्ररूपसे विवेचना करेगे। 'चरित्रहीन' मे प्रेमका दुहरा सघर्ष है। एक नायक उपेन्द्र है, जिसकी सफल 'नायिका' सुरबाला है, एव असफल नायिका किरणमयी। दूसरी ओर सतीश है, जिसकी सफल नायिका सरोजिनी है, तथा असफल नायिका सावित्री। उपन्यासके अधिकाश भागमे प्रेमकी इन उलझनोका ही अकन है। उसकी गठन इस बातका प्रमाण है कि सेक्स सबधी सामाजिक विधि-निषेध (Sex taboos) शरत्की अत्यत प्रिय कथावस्तु है।

'चरित्रहीन' उपन्यासकारके प्रारभिक जीवनकी कृति है। अतएव उसमे कथानककी वह एकरूपता तथा गठन नही मिलती, जो उनके उत्तरार्द्ध कालके प्रसिद्ध उपन्यास 'शेप प्रश्न' मे द्रष्टव्य है। परतु फिर भी नारी-चरित्रके एक विशिष्ट दर्शनके कारण इसका शरत्-साहित्यमे अत्यत महत्त्वपूर्ण स्थान है। देवताओ-द्वारा भी न जानने योग्य 'स्त्री चरित्र' का इसमे तथ्यात्मक अकन है।

यहाँ हमे किरणमयीके माध्यमसे शरत्के कृतित्वके ऊपर लगाये जानेवाले एक प्रसिद्ध आरोपपर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए। प्राय कहा जाता है कि अपनी रचनाओमे शरत्ने पतित नारियोको बहुत ऊँचा स्थान दिया है, 'चरित्रहीन'की किरणमयी इसका ज्वलत उदाहरण है। परतु वास्तविक बात यह है कि उक्त आक्षेप दूरसे ही सगत प्रतीत होता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट जान पड़ेगा कि शरत्ने अपने जीवन-दर्शनमे नारीके असत् स्वरूपको कही भी प्रश्रय नही दिया है, उसके प्रति

सहानुभूति भले ही प्रकट की हो। 'चरित्रहीन'मे ही, किरणके प्रति हमारी सहानुभूति जाग्रत होती है, उसके 'अनैतिक' कार्योंके प्रति नही। उसकी व्यभिचार-बुद्धिके पीछे एक निश्चित सामाजिक कारण है, जिसे दूर कर देनेपर शायद एक सुधारककी दृष्टिमे उसका चरित्र इतना नीचे न गिरता। परतु आगे चलकर 'शेष प्रश्न' मे तो एकनिष्ठ प्रेमको नितात निराधार सिद्ध किया गया है। इसका समाधान सामाजिक न होकर पूर्णत मनोवैज्ञानिक है। आशु बाबू कहते है, "स्रोतके खिचावसे कौन कब पास आ जाता है और कौन कब दूर चला जाता है, इसका हिसाब कोई भी नही जानता।"

अस्तु, शरत्ने अपनी रचनाओमे पापके प्रति कही भी सहानुभूति प्रकट नही की है। 'चरित्रहीन'मे प्रेमकी पवित्रताके ही कारण उपन्यासकारने सावित्रीको किरणमयीसे ऊँचा उठाया है। किरण यदि हमारी सहानुभूति जाग्रत करती है तो सावित्री हमारी श्रद्धा। किरण एव सुरबालाकी तुलनाके समय भी सुरबाला ही हमे महिमामयी दिखाई देती है। सुरबालाके सुदृढ विश्वासके सम्मुख किरणको स्वय झुकना पडता है। नारीका पतित-स्वरूप शरत्की समवेदनाका विषय हो सकता है, आदरका नही।

पंडितजी

[पंडित मॉशाइ]

●

भोगसे अधिक त्यागको महत्त्व देनेवाले प्रेमका अकन 'पडितजी'के कथानककी प्रमुख विशेपता है। शरत्की इस कृतिमे दापत्य-रति एव वात्सल्य-रति दोनोका ही पर्यवसान समाजकी शैक्षणिक उन्नतिके प्रयत्नमे दिखाया गया है। ग्राम-शिक्षा सवधी रचनात्मक कार्यक्रम एव समाजोत्थानके अन्य उपायोपर अपने सीमित कलेवरमे यह उपन्यास पर्याप्त प्रकाश डालता है। इस क्षेत्रमे शरत्का यह सभवत प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयास है। यहाँ अपनी सेक्स सवधी सामाजिक विधि-निपेधवाली प्रिय कथा-वस्तुसे ऊपर उठकर वे समाजके उस धरातलपर आये है, जहाँ जन-जीवनका एक व्यापक रूप हमे देखनेको मिलता है। 'पडितजी'मे उन सभी ग्राम-समस्याओपर सक्षिप्त रूपसे प्रकाश डाला गया है, जो हमारे देशके अधिकाश भागपर वुरी तरहसे छाई हुई है। सामाजिक ऊँच-नीचकी समस्या, ग्रामीण महामारियोकी समस्या, शिशु-शिक्षाकी समस्या तथा पारिवारिक विपमताकी समस्याने इस उपन्यासमे ताने-वानेका रूप धारण किया है। सामयिक वातावरणके प्रति जागरूक रहनेवाले कलाकार शरत्ने अपनी इस कृतिमे व्यक्तिकी रागात्मिका वृत्तियोको समाजके हितमे समीकृत होते दिखाया है।

'पडितजी'की मूल कथावस्तु इस प्रकार है—कुसुम वाडल ग्रामके जमीदार वृदावनकी परित्यक्ता पत्नी है। अपने सीधे-सादे भाई कुजके साथ वह बड़ी निर्धनतामे किसी प्रकार जीवन-निर्वाह करती है। एक दिन अपने प्रथम यौवनमे प्रविष्ट कुसुमको वृदावनने कुएँपर पानी भरते देखा। उसके रूप-शीलपर वे सहसा ही मुग्ध हो गये। अपनी मॉकी सम्मतिपर

वे उसे फिर घर वापस लानेकी चेष्टा करने लगे, परतु अभिमानिनी कुसुम इसके लिए तैयार न हुई, यद्यपि मन ही मन वह भी अपने स्वामी वृ दावनकी ओर आकर्षित हो चली थी। वृ दावनकी दूसरी पत्नीसे उत्पन्न मातृहीन शिशु चरण कुसुमके सूने जीवनका सहारा हो गया। प्राय एक-आध सप्ताहके लिए वृ दावन उसे कुसुमके पास छोड जाते थे।

बाडलमे विसूचिकाका आक्रमण हुआ। महामारीके डरसे बालकोको पढाकर मन लगानेवाले 'पडितजी'—वृंदावन चरणको कुसुमके पास रखनेके लिए ले गये। कुसुमने सुन रक्खा था कि उसके पति अब तीसरा विवाह करनेवाले है, इसी अपमानके कारण उसने चरणको ऐसे सकट-कालमे भी अपने पास रखना अस्वीकार कर दिया। निराशमन वृन्दावन वापस घर लौट आये। कुछ दिनके उपरात उनकी माँ विसूचिकाका शिकार हुई। तत्पश्चात् चरण भी बीमार पडा। डाक्टरने उसके रोगको असाध्य बता दिया। सब समाचार जानकर कुसुम अपने भाईकी ससुरालसे दौडी आई और अपने जीवनाधार चरणकी परिचर्या करने लगी, परतु इससे कुछ न हो सका और अतत वह निरीह शिशु भी चल बसा। वृन्दावनका मन इससे बहुत विरक्त हो गया। उन्होने अपनी सारी देवोत्तर सपत्ति ग्राम-सुधारके लिए अर्पित कर दी, और अपनी पत्नी कुसुमको साथ लेकर भिक्षुकके वेषमे बाडलसे चले गये।

'पडितजी'मे शायद प्रथम बार शरत्ने नारी-हृदयका समन्वितरूप रक्खा है। उनकी पूर्वकी कृतियोमे या तो वात्सल्यकी ही व्यजना मिलती है—जैसे, 'रामेर सुमति' एव 'बिदुर छेले'मे, अथवा केवल दाम्पत्य भावका ही अकन मिलता है—जैसे, 'चद्रनाथ' और 'विराज बहू'मे। परतु 'पडितजी' की कुसुममे नारी-हृदयके दोनो पक्षो—वात्सल्य एव दापत्यका उचित समीकरण हुआ है। इसीलिए उसका व्यक्तित्व उपन्यासकारके सामान्य नारी-पात्रोंके व्यक्तित्वकी भाँति अधिक कोमल एव सजल न होता हुआ भी, पर्याप्तरूपसे स्वाभाविक है। भावकतासे ऊपर उठकर उसमे दृढताका समावेश है। कुमारी अथवा विधवा न होकर कुसुम परित्यक्ता है, और

इस प्रकार नारी-हृदयका कदाचित सबसे बडा अभिशाप—सबसे बडी वेदना उसके हिस्सेमे आ पडी है।

कुसुमकी बाल्यावस्थाका इतिहास इतना भद्दा है कि उसका स्मरण-कर वह लज्जासे गड जाती है। पाँच बरसकी होनेपर उसका विवाह हुआ, किंतु बादमे उसकी विधवा माँकी बदनामी सुननेपर ससुरने उसका परित्याग कर दिया। कुसुमकी माँ गरीब होनेपर भी अभिमानिनी थी। वह उसे कठी बदलवानेके लिए एक वैरागीके पास ले गई, किंतु वस्तुत उसकी कठी बदली नही गई। वह वैरागी नित्य-धाम सिधार गया पर यह कोई न जान सका कि कुसुमकी कठी उसके साथ बदली गई थी या नही। अस्तु, माँकी मृत्युके उपरात दुखिया कुसुम बडी होनेपर अपने आपको विधवा समझने लगी।

'अब वह सोलह वर्षकी युवती है। रूप उसके अग-अगसे फूटा पडता है। उसमे गुण भी वैसे ही है और काम-काज करनेमे भी वह वैसी ही चतुर है, और फिर, लिखना-पढना भी जानती है।' यही सब देखकर वृन्दावन उसे फिर ग्रहण करना चाहते है। किंतु कुसुम अपनी मूल प्रकृतिमे स्वाभिमानिनी है। निर्धन-अवस्थामे रहते हुए भी वह प्राचीन अपमानको न भूल सकनेके कारण वृन्दावनके घर सुख-भोगके लिए नही जाना चाहती। अपने भाईके इस प्रस्तावको वह यह कहकर अस्वीकार कर देती है 'मुझे भी क्या तुमने कुत्ता, बिल्ली समझ रखा है कि जो इच्छा होगी वही कर गुजरूँगी! उधर ब्याह और इधर कठी-बदली! अब फिर ब्याह हो और फिर कठी-बदली!' बेचारा कुज अपनी शिक्षिता, तेजस्विनी बहिनके आगे सिटपिटा जाता है।

यहीसे कुसुमके हृदयमे सघर्षका प्रारभ होता है। उसकी रागात्मिका वृत्ति उसे वृन्दावनकी ओर खीचती है किंतु उसका अभिमान उसे रोकता है, उसके मनमे निर्धनताकी हीनता-ग्रथि भी छिपी हुई है। वह कुजको वृन्दा-वनके यहाँ जानेसे रोकती है—'वे लोग ठहरे बडे आदमी और हम है गरीब! हमे उनसे ज्यादा मेल-जोल बढानेकी जरूरत ही क्या है!'

कुसुम अपने भाई कुजको बडी स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखती है। उससे छोटी होनेपर भी वह उसपर शासन रखती है। कभी-कभी अप्रसन्न हो जानेपर भी, वह उसके लिए सदैव चितातुर रहती है। उसके गृहिणी-स्वरूपकी सारी अधिकार-वृत्तियाँ कुजनाथपर केन्द्रित है। कुजका विवाह हो जानेपर भाई-बहिनके इस पारस्परिक प्रेममे अवश्य कुछ व्यवधान पडता है, किंतु थोडे समयके वाद उनके सवध फिर पूर्ववत् हो जाते है।

कुसुम वृन्दावनसे सहज सस्कारवश प्रेम करती है, किंतु उनके यहाँ जाना नही चाहती। मूल रूपसे इसके दो कारण है—एक तो यह कि अपने अल्पवुद्धि भाईको अकेला छोडनेमे वह असमर्थ हे, और दूसरे वह अपनी प्रकृतिसे अभिमानिनी है। जिस स्थानसे एक वार उसे तिरस्कृत कर दिया गया, उस जगह फिर जानेके लिए उसका अत करण स्वीकृति नही देता। इसीलिए वृन्दावनके प्रति उसका प्रेम, उसके अभिमानसे दव जाता है, यद्यपि अपनी माँ तथा भाइयो सहित आये हुए वृन्दावनके लिए वह सिर काट कर पकानेके लिए तैयार है। अपने स्वजनोके अतिथि-सत्कारका अवसर उसकी आदिम गृहिणी मनोवृत्तिको जाग्रत कर देता है।

कुसुमकी प्रकृतिमे क्रोधके लिए शायद कुछ अधिक स्थान है। वृन्दावनके शब्दोमे, 'वुद्धिकी अपेक्षा क्रोध कही अधिक है।' फिर भी अपने अवचेतनके आग्रहसे वे उसका शासन उसके सम्मुख स्वीकार कर लेते है। शरत् द्वारा अक्षय एव युग-युगातरसे चले आनेवाले प्रेमको दी गई मान्यता 'पडितजी' मे भी द्रष्टव्य हे। इसीलिए अलग हो जानेपर भी कुसुम और वृन्दावन एक दूसरेके आकर्पणका वरावर अनुभव करते रहते है। प्रेमकी यह अदृश्य एव स्वर्गीय शक्ति शरत्की अधिकाश रचनाओकी मूल सवेदना है।

वृन्दावनकी माँ के हृदयमे कुसुमके लिए कोमलतम स्थान सुरक्षित है। उनका निर्णय है, "अभी यह तो नही कह सकती कि वह विलकुल खरा सोना हे, पर यह वात निश्चयपूर्वक कह सकती हूँ कि पीतल नही है, मुलम्मा नही है।" किसी भी प्रकारकी अतिशयोक्तिसे हीन माँका यह वाक्य कुसुमके चारित्रिक मूल्यपर पर्याप्त प्रकाश डालता है। किंतु प्रभविष्णु

न होते हुए भी कुसुमका चरित्र प्रभावोत्पादक है, इसे कोई अस्वीकार नही करता'। "किसी-किसीकी राशि ही भारी होती है वृन्दावन! उससे विना डरे काम ही नही चलता चाहे आदमी उमरमे उससे बडा ही क्यो न हो। हमारी बहू भी उसी धातुकी बनी है, बहुत ही शात फिर भी सख्त।" शात एव सख्त—कुसुमके व्यक्तित्वका विश्लेपण करते समय उसके यही दो मूल तत्त्व हमारे सम्मुख आते है। वस्तुत ये दोनो पक्तियाँ मिलकर कुसुमके चरित्रकी बडे पूर्ण रूपसे व्याख्या करती है। उसकी राशि भारी होनेके कारण ही उसके तेजके सम्मुख सबको दबना पडता है।

कुसुमके व्यक्तित्वमे दूरदर्शिता एव सूक्ष्म बुद्धिका कुछ अभाव जान पडता है। वह वृन्दावनके प्रेमके साथ ही साथ माँ के निर्मल स्नेहको भी पहचाननेमे असमर्थ है। असफल वैवाहिक सबधकी प्रतिक्रिया मनमे रहते हुए भी उसे साधारण विवेकसे हीन नही होना चाहिए। अज्ञात रोषकी भावना-के आवेशमे वह माँके द्वारा दिये हुए कड़ो एव आशीर्वादको अपने नासमझ भाईके हाथ लौटा देती है, और जिसका वादमे उसे सदैव पश्चात्ताप रहता है। भीषण महामारीके डरसे आये हुए चरणको वह अपने पास रखना स्वीकार नही करती, जिसका मूल्य उसे अपने वात्सल्यसे देना पडता है। इस प्रकार प्रत्युत्पन्नमतिका उसमे अभाव ही कहा जायेगा। उसमे क्रोध अधिक है, क्षमाका अश नहीके बराबर है। इस क्षेत्रमे वात्सल्यका प्रभाव उसे सदय नही बना पाता, उसका तृषित मातृ-हृदय करुणासे अभिभूत नही हो उठता।

शरत्के प्रतिनिधि नारी-पात्रोकी भाँति कुसुम भी अनुपम सौदर्य-शालिनी है। किंतु जितना उसमे रूप है, उतनी उसमे क्षमा एव दया नही। 'स्त्रियोके लिए सबसे बडी सीखनेकी बात है क्षमा करना, सो उसने नही सीखा।' वृन्दावनको मन ही मन अपना मानती हुई भी वह उनके आमत्रणको बार-बार अस्वीकार कर देती है, वह स्वामीके घर 'अभिमानपूर्वक' जाना चाहती है। उसका गर्व उसके स्नेहको पराभूत कर डालता है। यदि वह क्षमा करना जानती होती तो अपने पति, अपने भाई एव अपनी सास

पर वह विजय प्राप्त कर लेती, किंतु उसके मानसिक सस्थानने एसा होने नही दिया। वह सोचती है कि वृन्दावनके प्रति उसके हृदयमे जो भाव उत्पन्न होते है, वे एक हिंदू कन्याके हृदयमे केवल पतिके लिए उत्पन्न होने-वाले भाव है, किंतु अपमानकी ज्वाला, विधवा होनेकी विडबना एव प्रकृतिमे क्रोधका आधिक्य उसे उसके स्वामीसे अलग कर देता है। और अतमे वृन्दावनसे उसका मिलन तभी होता है, जब पति एव पुत्रके अभावने उसके हृदयको एकदम निर्मल बना दिया है।

परतु इतना सब होनेपर भी कुसुमके मनमे नारी-सुलभ लज्जा एव पति-प्रेमका पूरा-पूरा अधिकार है। वृन्दावनके तीसरे विवाहकी योजनामे जब उसका भाई बाधा डालना चाहता है तो वह इसके लिए मना करती है। और उसकी चिर-परिचित हठके सामने कुजको दबना ही पडता है। ऐसा जान पडता है कि 'पडितजी' की कुसुमके ऊपर 'चरित्रहीन' की किरणमयी-के यथार्थवादी अकनका एक सयमित प्रभाव अवश्य पडा है। अपने तीव्र व्यक्तित्वमे वह विराज बहूका विकसित स्वरूप है। विराजका चरित्र आदर्शवादी है, किंतु कुसुमका चरित्र सामान्य और शायद अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक है। शरत्के इस रचना-कालमे नारीका दापत्य स्वरूप उतना उज्ज्वल नही रह जाता, जितना वह पहले था। पुरुषके प्रति आत्मसमर्पण-का आवेग उसमे कम हो जाता है। एक ओर उसमे विराजके व्यक्तित्व-की तीव्रता बढ गई है और दूसरी ओर उसमे विराजकी उत्कट पतिभक्ति कम हो गई है। शेखरके दूसरे विवाहकी चर्चा सुनकर 'परिणीता' की ललिता मौन रहती है, किंतु वृन्दावनके दूसरे विवाहकी योजना ज्ञात होनेपर 'पडितजी' की कुसुम के हृदयमे ईर्ष्याकी ज्वाला भडक उठती है, जिसे वह छिपाकर नही रखती, वरन् चरणके माध्यमसे वृन्दावन पर भी प्रकट कर देती है। सामान्य मानव-सुलभ कमजोरियोका नारी-हृदयमे समावेश शरत्ने अपनी रचनाओके इस द्वितीय युगमे बडी कुशलताके साथ किया है। इसके बाद तो उनके उपन्यासोमे नारीके भारतीय आदर्शात्मक रूप एव उसके पाश्चात्य यथार्थवादी ढॉचेमे बराबर सघर्ष होता दिखाई पडता है, जिसमे कभी एक पक्ष

विजयी होता है, कभी दूसरा पक्ष और कभी दोनोमे समन्वयकी भी चेष्टा दृष्टिगत होती है। 'शेष प्रश्न' मे यह द्वद्व अपनी चरम सीमापर पहुँच गया है।

जब बादमे कुसुमको ज्ञात होता है कि वस्तुत. उसकी कठी किसी वैरागीसे नही बदली गई, तो उसकी विधवा होनेकी लज्जा मिट जाती है। फिर उसे अपने वात्सल्यके आधार चरणकी बीमारीकी सूचना मिलती है, और वह बेसुध होकर अकेली दौडती हुई अपने पतिके घर पहुँचती है। यहाँ पर उसकी चारित्रिक दृढता सचमुच ही दर्शनीय है। वह अविचलित होकर चरणके मृत शरीरको श्मशान भिजवा देती है। अब जैसे उसका जीवन निष्काम हो गया हो। अपने पतिके साथ, भारतीय त्यागके आदर्शका अनुकरण करती हुई वह भिक्षुणीके वेषमे देशाटनके लिए चली जाती है।

कुसुमके अतिरिक्त 'पडितजी' मे दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र वृन्दावनकी माँ का है। स्त्रीके जननी-स्वरूपके सबधमे शरत्‌की कुछ निश्चित धारणाएँ भी जान पडती है। उनकी रचनाओमे माँका व्यक्तित्व सौम्य एव सयमित, शात एव दृढ तथा अपार स्नेहसे अभिभूत है। नारायणी, भुवनेश्वरी, हेमागिनी एव दयामयी जैसे चरित्र नारीके उज्ज्वल स्वरूपकी उद्‌भावना करनेवाले है, उनका व्यक्तित्व महिमामय है। 'पडितजी'मे वृन्दावनकी माँ भी इसी वर्गकी एक जननी है। परमवैष्णवकी भाँति उनके हृदयमे सबके लिए कोमल स्थान सुरक्षित है।

उपन्यासकारके शब्दोमे "वृन्दावनकी माँ निम्न श्रेणीकी साधारण स्त्रियोके समान नही थी। वह बहुत समझदार थी।" वस्तुत एक ओर उनका विवेक अत्यन्त सूक्ष्म है, और दूसरी ओर उनका हृदय अत्यत भावुक। 'उन्हे जरा-सी भी बात बहुत लगती है।' बुद्धि एव भावनाके सयोगसे ही उनका व्यक्तित्व इतना उज्ज्वल-इतना कोमल बन सका है। 'शात' एव 'सन्यासिनी' जैसे विशेषण इस भगवद्‌भक्तिमे अनुरक्त महिलाके लिए नितात उपयुक्त है जो भीषण महामारीके समय भी अपने ठाकुरजीको छोडकर नही जा सकती। उनका विवेक कुसुमके वास्तविक मूल्यकी परख करता है, और उनका हृदय वृन्दावनको दूसरा विवाह करनेसे रोकता है।

वे कुसुमको ही अपनी पुत्र-वधूके रूपमे चाहती है। कठोर-से-कठोर अपराधको भी उन्होने उसके लिए क्षमा कर दिया है। मानसिक या शारीरिक, किसी भी प्रकारका कष्ट वे किसीको नही देना चाहती। उनके चरित्रकी प्रभविष्णुताका आभास हमे कलह-प्रिय कुजकी सासके वार्तालापसे मिलता है।

वृन्दावनकी मॉकी ठीक दूसरी दिशामे कुजकी सासका व्यक्तित्व आता है। उनका स्वभाव कडा, रूखा तथा परछिद्रान्वेषी है। अशिक्षिता होनेके साथ-ही-साथ वह अप्रियवादिनी भी है। दूसरेकी भावनाओका उसे तनिक भी ध्यान नही। वह मिथ्याडबरप्रिय एव अहवादिनी है। दूसरेकी उन्नति या भलाईमे उसे रुचि नही है, और इस ईर्ष्याके कारण ही उसे प्राय कलहका सहारा लेना पडता है। कुसुमके साथ तो, उसने कभी भी अच्छा व्यवहार नही किया, वह सदैव उसे दासी समझती रही। अपनी लडकीको भी वह कुसुमसे अच्छी तरह बात करते नही देख सकती। कुजके ऊपर तो उसने पहले ही अपना धन-वल जमा दिया है। व्रजेश्वरी स्पष्ट कहती है "मॉ, तुम्हारी जैसी दो-चार वैष्णव स्त्रियोकी कृपासे तो जी चाहता है कि हम लोग अपने आपको डोम, चमार, मोची कहा करे।"

कुजकी पत्नी व्रजेश्वरी उपन्यासमे पार्श्व-चरित्र मात्र है। उपन्यासकारके शब्दोमे, "वह जैसी मुखरा है वैसी ही कलह-पटु। वह अभी पूरे पन्द्रह वर्षकी भी नही हुई है, पर उसकी बात-चीतके ढग और उसके विषकी जलनसे उसकी मॉको भी हार मानकर आँसू वहाने पडते है।" पर यह एक आश्चर्यजनक बात है कि इतनी कटु प्रकृतिकी व्रजेश्वरी भी, अपनी मॉका विरोध करती हुई, कुसुमको हृदयसे प्यार करती है। वह इस निरीह, दुखिता नारीकी शुभेच्छु है। स्वय पति-प्रेममे प्रवृत्त व्रजेश्वरी कुसुमसे आग्रह करती है कि वह वृन्दावनके यहॉ जाना स्वीकार कर ले। सच तो यह है कि न जाने किस अज्ञात शक्तिके वशमे होकर व्रजेश्वरीका सारा विप कुसुमके लिए अमृत बन जाता है।

मँझली बहिन

[मेजदिदि]

•

शरत्के कृतित्वमे 'रामेर सुमति', 'बिदुर छेले' एव 'मेजदिदि'की एक ऐसी अनुपम त्रिवेणी है, जिसे पाकर ससारका कोई भी कथा-साहित्य गौरवान्वित हो सकता है। इन तीनो कहानियोकी मूल सवेदना लगभग एक ही है, कलात्मक सूक्ष्मता भी प्राय एक कोटिकी है, किंतु फिर भी उनके वातावरणमे सुस्पष्ट विभिन्नता है। नारायणी, विंदो और हेमागिनीके चरित्र समान भावधारासे अनुप्राणित है, पर उनके व्यक्तित्व अलग-अलग है। इन तीनो गल्पोमे किसी एककी अपेक्षाकृत श्रेष्ठता भी प्रतिपादित नही की जा सकती। नारीका वात्सल्यपरक स्वरूप अपनी सारी महिमाके साथ इन कहानियोमे अकित हुआ है, और उनका कथा-विधान शरत्की उच्चतम 'टेकनीक'का नमूना है। इसीलिए इन तीनो रचनाओका ध्येय पाठकके हृदयको एक ही भाव-लोकमे ले जानेका है, किंतु वहाँतक पहुँचानेके लिए तीनोके मार्ग कुछ भिन्न-भिन्न है। नारीके वात्सल्यपरक स्वरूपपर शरत्की श्रद्धा कदाचित् सर्वाधिक है, अत उसीके अकनमे उनका कलात्मक निखार भी अपनी चरम-सीमापर पहुँचता है। नारायणी, विदो एव हेमागिनीके चरित्र इसके साक्षी है।

'मँझली बहिन'का कथानक उतना ही सीधा और सरल है, जितनी उसकी कला। कहानियोके विधानमे यह सरलता कितनी हृदय-ग्राहिणी होती है, यह सर्व-विदित है। परिवारविहीन, चौदह वर्षका बालक किशन अपनी स्नेहशीला जननीके देहातके बाद आश्रयकी खोजमे अपनी सौतेली बहिन कादबिनीके पास पहुँचता है। उसकी कठोर प्रकृतिकी बहिन बडी कठि-

नाईसे उसे अपने यहाँ रहनेके लिए स्थान देती है। दोनो समयके रूखे-सूखे खानेके लिए किशनको जी-तोडकर परिश्रम करना पडता है और इतनेपर भी बहिनका तिरस्कार और मार-पीट उसका पीछा नही छोडती। अपने अपराधोके लिए उसे प्राय भूखा रहना पडता है। अपार ममताके वातावरणमे पले हुए किशनका बाल-हृदय किसी प्रकार इन अत्याचारोका अभ्यस्त हो जाता है।

कादबिनीकी देवरानी हेमागिनीका हृदय अत्यत कोमल तथा वात्सल्यपूर्ण है। वह अनाथ किशनके इन कष्टोको देख नही पाती और उसकी मँझली बहिन बनकर यथासभव उसे स्नेह तथा मातृ-सुखका दान देती है। स्वभावत ही कादबिनीको यह सब अच्छा नही लगता और इसी बातको लेकर देवरानी एव जिठानीमे प्राय कलह हो जाया करती है। हेमागिनी पतिसे आग्रह करती है कि वे किशनको अपने साथ रखे, किंतु विपिन अपने बडे भाईसे और मनमुटाव नही करना चाहते। अतत पति, जेठ तथा जेठानीके अत्यत विरोध करनेपर भी स्नेहकी शक्ति विजयिनी होती है, और हेमागिनी किशनको अपनी तीसरी सतान मानकर अपने पास ही रख लेती है। पारिवारिक जीवनके सुखद दृश्यकी अवतारणाके साथ कहानीका अत हो जाता है।

सपूर्ण गल्पमे केवल दो ही नारी-पात्रोका अकन हुआ है। कादबिनी एव हेमागिनी दोनोके चरित्र कथानकमे समान भावसे प्रतिष्ठित है। पारस्परिक तुलनामे उनके व्यक्तित्व और भी उभर जाते है। गार्हस्थिक जीवन के कुशल शिल्पी शरत्ने इन दोनो गृहिणियोके चरित्रोका निर्माण ही नही किया, वरन् उनमे प्राण-प्रतिष्ठा भी की है। उनके व्यक्तित्व जैसे पुस्तकके पृष्ठोंसे बाहर निकल आये है। दैनिक जीवनमे कादबिनी एव हेमागिनीके प्रतिरूप अनेक मिल सकते है, परतु उन्हे दो निश्चित वर्गोका अलग-अलग प्रतिनिधि बनाकर साहित्यिक सवेदनामे रँगना, शरत्की ही कला है।

'सुमति' तथा 'बिदोका लल्ला'की भाँति 'मँझली बहिन'मे भी वात्सल्य एव करुणाका सयोग हुआ है। किशनकी सौतेली बहिन कादबिनी उसका

सब प्रकारसे तिरस्कार करती है, किंतु दूसरी ओर हेमागिनी जिसका उससे कोई भी सबध नही है, उसके साथ बडा स्नेहपूर्ण व्यवहार करती है। इन विपरीत भावनाओके सघर्षमे ही उक्त दोनो रसोकी सृष्टि होती हे, जिससे पाठकका मन करुणासे ओत-प्रोत हो उठता है।

कादबिनीके चरित्रका विश्लेषण हम पहले करेगे। कादबिनी किशनकी सौतेली बडी बहिन है और अपने पति-गृहमे धन-सपत्तिका पूरा उपभोग करती है। पर उसकी रागात्मक वृत्तियाँ अपने परिवारतक ही सीमित हे। उसकी अत्यधिक कठोर प्रकृतिका परिचय हमे सर्वप्रथम तभी मिल जाता है, जब उसका अनाथ भाई किशन उसके घर आश्रयके लिए पहुँचता है। वह उसका स्पष्ट तिरस्कार करती हुई, रास्ता दिखानेके लिए आये हुए बूढेको लक्ष्य करके कहती है, "खूब मेरे सगेको बुला लाये हो, रोटियाँ तोडनेके लिए।" इन शब्दोसे उसकी कठोर प्रकृतिके साथ-साथ उसकी कटु वाणीका भी परिचय मिलता है। अपनी सौतेली माँके लिए वह कहती है, "पिता जो कुछ धन-सपत्ति छोड गये थे सभी तो कलमुँहीने इसके पेटमे ठूँस दी है। मुझे तो एक कानी कौडी भी न दी।" मृत जननीके प्रति कादबिनीका यह तिरस्कार कितना असत्य है, यह समझनेके लिए हमे जानना पडेगा कि उसके पिताकी धन-सपत्तिके नाम सिर्फ एक मिट्टीकी झोपडी और उसके पास ही जँबीरी नीबूका एक पेड भर था, उसी झोपडीमे बेचारी विधवा किसी तरह सिर छिपाकर रहा करती और नीबू बेचकर किशनकी स्कूलकी फ़ीस जुटाती।

किशनके आगमनसे कादबिनीका मन और भी असतुलित तथा असयमित हो गया है। लोक-मर्यादाके भयसे किसी प्रकार वह अपने इस अनाथ भाईको आश्रय दे तो देती है, किंतु उसका तिरस्कार करनेके लिए वह सदैव तत्पर है। 'मर, क्या पागल और बहरा है?' जैसे वाक्योसे किशनका अभिनन्दन प्राय ही हुआ करता है।

कादबिनीकी इस कटु प्रकृतिका एक कारण यह है कि उसके लिए ससारमे पैसेसे बढकर और कुछ भी नही। पैसेके लिए वह सबका अपमान कर सकती है, तथा पैसेके लिए ही वह दूसरेका तिरस्कार भी सह सकती है।

वस्तुत उसकी प्रकृतिमे भौतिकताके परमाणु पर्याप्त विकृतावस्थामे पहुँच चुके है । क्रोध-जैसा मानसिक विकार उसके दैनिक व्यवहारका स्थायी अग है । 'वह उन लोगोमे-से नही, जिनका गुस्सा किसीको चुप रहते देखकर कम हो जाता है ।' इसीलिए उसकी झगडा करनेकी प्रवृत्ति सदैव उत्तेजित रहती है । कलहने उसके जीवनमे सदाके लिए अपना घर बना लिया है ।

कादबिनीकी विपरीत दिशामे हेमागिनीका चरित्र है । वह शहरकी लडकी है और दास-दासी रखकर, चार आदमियोको खिला-पिलाकर ठाटसे रहना पसद करती है । वह पैसा बचाकर गरीबी चालसे नही रहती, इसी-लिए कुछ दिन पहले दोनो परिवार अलग हो गये थे । हेमागिनी चाहती है कि किसी प्रकार दोनो देवरानी-जिठानीमे मनोमालिन्य मिट जाय, परतु ऐसा करनेके प्रयत्नमे कलहकी मात्रा कुछ और बढ जाती है ।

हेमागिनीका हृदय अत्यत कोमल तथा सरल है । अनाथ किशनका प्रथम बार कुठित, भीत और असहाय मुख देखकर उसका कलेजा हिल जाता है । वह तभीसे उसे अपना लेती है । उसका व्यापक वात्सल्य किशनकी रक्षाका साधन बन जाता है । उसके अदरका मातृत्व सीमित एव सकुचित न होकर पर्याप्त रूपसे विस्तृत है, और इसीलिए 'मँझली चाचीको सभी बाल-बच्चे प्यार करते हैं ।' वह किशनसे कहती है "देख किशन, तू अपनी मँझली बहिनसे कभी कोई बात मत छिपाना । जब जिस चीजकी जरूरत हो, चुपचाप यहाँ आकर माँग लेना ।" इस स्नेह एव ममताके कारण ही उसका जीवन इतना सजल, इतना सरल हो गया है । वह आगे भी कहती है, "भाई, तुझे मेरे सिरकी सौगन्ध है, आजसे मुझे अपनी मरी हुई माँकी जगह ही समझना ।" वस्तुत हेमागिनीके वात्सल्यका आलबन स्वय किशन ही नही, वरन् कोई भी बालक हो सकता है । उसके जननी-रूपमे मोह-माया तथा दयाका पूरा-पूरा निखार हुआ है ।

हृदयकी सरलता एव निष्कपटताके कारण ही हेमागिनी अत्यत स्पष्ट-वादिनी है । इसीलिए अपनी जिठानीको वह 'निष्ठुर' एव 'बेहया' कहनेमे नही झिझकती । उसके विचार उसकी वाणीके साथ एकाकार हो गये है

तथा दृढता उसके चरित्रमे घुल-मिल गई है। अनाथ किशनके लिए वह अपने पति, जेठ तथा जिठानीका सारा आक्रोश सह लेती है, किंतु उसे छोडती नही। वीच-वीचमे अवश्य वह उससे झुंझलाकर कह देती है, "अव तू यहाँ मत आना, जा।" और कभी-कभी तो अपने पतिके रोपके कारण वह उसे घरसे वाहर निकलवा देती है, किंतु वह फिर शीघ्र ही अनुभव करती है 'वह वेचारा वहुत ही दुखी है। उसके माँ-वाप नही है। वे लोग उसे मारे डालते है और यह मुझसे अपनी आँखोसे देखा नही जाता।' उसका किशनके प्रति प्रेम पहाडी झरनेकी निर्मल-धाराके सदृश है, जो मार्गमे पत्थरोके अवरोधके कारण और भी तीव्रतासे वहने लगता है। अपनी चारित्रिक दृढताके कारण ही वह पतिसे कह देती है, "मै कल ही उसे वुलाकर अपने पास रखूंगी। और यदि जिठानी जोर करेंगी, तो मै उसे थानेमे दारोगाके पास भेज दूंगी।" और इसके वाद किशनको कष्ट देनेके कारण वह कादविनीका भी जी भरकर तिरस्कार करती है।

जैसा कि शरत्‌की अन्य कहानियोकी विवेचना करते समय कहा जा चुका है, शरतकी माताओका प्रेम कोरा अतिमानवीय नही है। हेमागिनी भी किशनकी गलतियोके लिए चाहे वह उसके भलेके लिए ही की गई हो, उसे ताडना देती है। जब उसे ज्ञात होता है कि किशनने रुपया चुराकर उसके स्वस्थ होनेके लिए देवीको भेंट चढाई है तो वह उसे मारती भी है। यहाँपर भी उसके स्नेहकी दृढता दर्शनीय है, किंतु अतमे 'रामेर सुमति' एव 'विदुर छेले'की भाँति 'मेजदिदि'मे भी नारीकी ममता एव वात्सल्य ही विजयी होता है। पहले तो वह अपने पति विपिनसे किशनको आश्रय देनेके लिए प्रार्थना करती है, परतु जव वे पारिवारिक मर्यादासे डरते जान पडते है तो वह अत्यत शात एव दृढ स्वरमे कहती है, "मै उसे ले आऊँगी, तो दुनियामे कोई उसे रोक सकेगा? मेरे दो बच्चे कलसे तीन हो गये है। मै किशनकी माँ हूँ।" और जब इतनेपर भी उसकी वात नही मानी जाती तो वह किशनको लेकर अपने मायके चल देती है, परतु कहानीका अत यही नही होता। स्नेहकी शक्ति सर्व-विजयिनी है। विपिन यह सब समा-

चार सुनकर दौडे-दौडे हेमागिनीको वापस लेनेके लिए आधे रास्तेतक जाते है और कहते है, "किशन अपनी मँझली बहिनको घर लौटा ले चल भाई। मै शपथपूर्वक कहता हूँ कि जबतक मै जीता रहूँगा, तबतक दोनो भाई बहिनको कोई अलग न कर सकेगा" और यद्यपि यही कथा समाप्त हो जाती है, परतु फिर भी पाठक 'रामेर सुमति' एव 'बिन्दुर छेले'की ही भाँति 'मेजदिदि'मे भी, शरत्की अपूर्व व्यजनाके सहारे, सुखद गार्हस्थिक जीवनकी कल्पना कर लेता है।

इस प्रकार हम देखते है कि अनाथ बालक किशनके प्रति हेमागिनीका सबल प्रेम ही 'मेजदिदि'की मूल सवेदना है। इस कहानीसे शरत्की यह मान्यता और भी दृढ हो जाती है कि वास्तविक वात्सल्य नारीका केवल अपनी सतानके लिए ही नही होता, वरन् वह किसी भी समय किसी भी बालक-के लिए आषाढके प्रथम मेघकी भाँति अनायास ही उमड सकता है, और इस वात्सल्यके मूलमे मोह, ममता, करुणा एव परोपकारकी भावना अबाध गतिसे बहती है। 'मेजदिदि'मे हेमागिनीका प्रेम अपने बच्चोके लिए भी शायद उतना नही, जितना किशनके लिए है। नारीका यह व्यापक वात्सल्य सचमुच ही श्रद्धेय है। और उसके साथ अविच्छिन्न भावसे रहनेवाली नि स्वार्थ परोपकारकी भावना (जो हमे हेमागिनीके साधारण जीवनमे भी बराबर दिखाई देती है) तो और भी महिमामय है।

अब हम बहुत सक्षेपमे कादबिनी एव हेमागिनीके चरित्रोकी तुलना करेगे। कादबिनी प्रकृतिमे अत्यत लोभी है, ससारमे पैसा ही उसके लिए सब कुछ है, परतु हेमागिनीकी प्रकृति इसके विपरीत है। वह पारि-वारिक सुख एव परोपकारमे भरपूर व्यय करती है। दूसरोके हितके लिए सौ-डेढ सौ रुपया खर्च कर देना उसके लिए कोई बडी बात नही। वह हृदयकी सरल, निष्कपट तथा शात है, किंतु कादबिनी क्रूर एव कलहप्रिय है। इसके अतिरिक्त हेमागिनी क्रोधका भाव अपने मनमे अधिक देरतक नही रख सकती, पर उसकी जिठानी पक्की है, और अच्छी तरह समझती है कि टूटी हुई हाँडीमे कभी जोड नही लगता। सक्षेपमे, कादबिनीकी मूल

प्रकृति स्वार्थ-वृत्तिसे प्रेरित है, यहाँतक कि वह अपने अनाथ छोटे भाईको, स्वय पर्याप्त रूपसे सपन्न होती हुई भी अपने पास प्रेमसे नही रख सकती, किंतु उसकी देवरानी हेमागिनी स्वभावसे परोपकारी है। उससे किसीके ऊपर अत्याचार नही देखा जा सकता। गाँवके त्रस्त व्यक्तियोको बचानेमे वह कुछ भी उठा नही रखती। और किशनके लिए तो मानो उसकी सारी माया-ममता ही उमड पडती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, एक वात्सल्य भावकी पृष्ठ-भूमिपर ही शरत्‌की इन तीनो कहानियो—'रामेर सुमति', 'बिदुर छेले' एव 'मेजदिदि'का निर्माण हुआ है, परतु एक ही मूल सवेदना होते हुए भी इन तीनोका व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न है। आगे चलकर 'अभागीर स्वर्ग' जैसी रचनाएँ भी इसी वर्गके अतर्गत आती है। वस्तुत शरत्‌के रचना-कालमे वात्सल्य भावकी कहानियाँ थोडी-थोडी दूरपर मिलती हैं। ऐसा जान पडता है कि नारीके प्रिया-स्वरूपके विकारोका वर्णन करते-करते जब उनका मन थक जाता है तब वे उसके जननी-स्वरूपका अकन करके हृदयको पवित्रता एव शाति देते हैं। कहनेकी आवश्यकता नही कि लेखकके मनकी यह पवित्रता और शाति पाठकके लिए कितनी सवेदनीय है।

ग्रामीण समाज

[पल्ली-समाज]

जिन लोगोको यह शिकायत है कि शरत अपनी कृतियोमे सदैव आतरिक काम-कुठाओके वर्णनमे उलझे रहे है, और उन्होने कभी बाह्य जीवनको व्यापक दृष्टिकोणसे नही देखा, उन्हे लेखकके 'पल्ली समाज'को बडे मनोयोगपूर्वक पढना चाहिए। इस उपन्यासमे शरत्ने न केवल ग्राम-समस्याओका उद्घाटन किया है, वरन् एक बड़ी हदतक अपनी अपूर्व व्यजनाके सहारे उन्होने उसके लिए कुछ सुझाव भी उपस्थित किये है। अपने सक्षिप्त कलेवरमे 'ग्रामीण समाज' बगालके ग्राम्य जीवनकी विपमताओको 'स्कैची' परतु ध्वन्यात्मक रूपमे हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। जिस दृष्टिकोणको लेकर शरत् 'पडितजी'मे चले थे, उसका कुछ व्यापक एव विस्तृत स्वरूप 'ग्रामीण समाज'मे अकित हुआ है। 'पडितजी'मे गाँवोकी शिक्षा-समस्या मुख्य थी, परतु 'ग्रामीण समाज'मे गाँवके व्यक्तियोकी स्वार्थपरता, फूट एव कलहका अधिक निदर्शन है। पुरुप और नारीका पारस्परिक प्रेम, जो अवतक शरत्के प्राय सभी कथा-विधानोमे प्रमुख स्थान पाता रहा था, इस उपन्यासमे आकर नितात गौण हो गया है।

'पल्ली-समाज'की एक बडी विशेषता यह है कि इसमे अकित नारी-पात्र वास्तविक जीवनके बहुत समीप आ गये है। कुरुचि-उत्पादक यथार्थवादको प्रश्रय न देते हुए भी शरत् अब काफी यथार्थवादी हो चले है, इस बातका स्पष्ट पता उनके नारी-चरित्रके अकनसे लग जाता है। माधवी जैसी प्रेमिका एव विराज जैसी पत्नी, लेखक अपनी रचनाओके प्रारभिक युगमे ही चित्रित कर सका था, उसका यह आदर्शवाद 'चरित्रहीन'से शिथिल

होता है, जो एक तरुण विचारकका प्रथम प्रबल विद्रोह है। 'पल्ली-समाज'के चरित्र-चित्रणमे सयमित यथार्थवादका अच्छा नमूना मिलता है; यहाँ उनके पात्र साधारण बुराइयो-भलाइयोसे घिरे हुए, साधारण हाड-माससे निर्मित व्यक्ति है। कभी उनमे भलाईके परमाणु जोर बाँधते है तो कभी बुराईके। चरित्रकी इस धूप-छाँहका अकन ही शरत्‌की दूसरे युगकी अधिकाश रचनाओमे व्याप्त है।

'पल्ली-समाज'के नारी-पात्रोमे रमा एव विश्वेश्वरी सर्व-प्रमुख है। प्रचलित मान्यताओके अनुसार यद्यपि नायिकाका स्थान रमाको ही दिया जायगा, परतु विश्वेश्वरीका भी चरित्र कथा-विधानकी दृष्टिसे कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही है। अस्तु, रमाके चरित्रका विश्लेषण हम सर्वप्रथम करेगे।

शरत्‌की अधिकाश रचनाओकी नायिकाके समान रमा एक विधवा युवती है, परतु लेखककी सामान्य विधवा नारियोके समान उसका व्यक्तित्व बहुत अधिक कोमल एव सजल नही है, इसका पता हमे उपन्यासके पटोद्घातके समय ही लग जाता है, जब वह अपने बाल्यावस्थाके साथी रमेशके लिए बिगडकर कह देती है, "मै कुछ भी न कहूँगी। दरवाजे-पर दरबान ही उसे उत्तर दे देगा।" कुलीन घरकी लडकी होते हुए भी यद्यपि वह अधिक सामाजिक भेद-भावको प्रश्रय नही देती, तथापि निरपराध रमेशके लिए उसके मनमे कोई विशेष कोमल स्थान सुरक्षित नही है। वह वेणीसे कहती है, "आग, करज और दुश्मनका कुछ भी बाकी नही छोडना चाहिए", और रमेशको अपना दुश्मन मानती हुई वह उसके कार्योमे बाधा डालना चाहती है। उसकी उक्तियोको सुनकर वेणीको भी कहना पडता है, "बहन, भला ऐसी कौन-सी बात है जो तुम न समझती हो। भग-वान्‌ने तो तुम्हे लडका बनाते-बनाते लडकी बना दिया।"

प्रकारातरसे, यहाँ 'पल्ली-समाज'की मूल कथाकी भी चर्चा अधिक अप्रासगिक न होगी। रमा और रमेश दो विरोधी परिवारोकी सतान है, परतु दोनो ही घनिष्टबाल्य सहचर रहे है। एक-दूसरेके लिए ज्ञात अथवा अज्ञात रूपसे दोनोमे पर्याप्त आकर्षण है। जब वे दोनो बडे होनेपर बहुत

दिनोके उपरात एक-दूसरेसे मिलते है तो उन्हे ज्ञात होता है कि प्राचीन पारिवारिक कलहके कारण दोनोके मार्ग अलग-अलग हो गये है। अधिक गलतफहमी रमाकी ओर ही से है। खिन्नमन रमेश अपनी ताईजीके प्रोत्साहनपर ग्राम-सुधारके कार्यमे प्रवृत्त होता है और अनेक विघ्न-विरोधोके उपरात भी उससे विमुख नही होता, यहाँतक कि एक बार उसे निरपराध जेल भी जाना पडता है। उसे इस प्रकार नीचा दिखलानेवाले समुदायमे रमाका भी हाथ है। अतमे ताईजी अर्थात् वेणीकी माँके उद्योगसे रमा एव रमेशके बीचकी गलतफहमियाँ दूर हो जाती है, और वे अस्वस्थ तथा अपराधोके बोझसे दबी हुई रमाको लेकर तीर्थयात्राके लिए चली जाती है।

रमाका चरित्र नारी-सुलभ कमजोरियोसे भरा हुआ सामान्य कोटिका है। वे 'बिलकुल लक्ष्मी है' और शायद इसीलिए उसमे लोभकी भी कमी नही है। यद्यपि रमेश उसके बारेमे कहते है, 'वह कभी पराई चीज नही छुएँगी', पर रमा उनके इस विश्वासको अपनी दुर्बलताओके फलस्वरूप असत्य सिद्ध कर देती है। एक बार रमेश सारे गाँवके हितार्थ उसके तालाबका बाँध तोड देनेकी अनुमति लेनेके लिए जाते है, पर स्वार्थवश वह यह कह कर मना कर देती है, "मै इतने रुपयोका नुकसान नही कर सकूँगी।" और तभी रमेशको क्रोधके आवेशमे कहना पडता है, "तुम्हे निष्ठुर कहना भी भूल है। तुम बहुत ही नीच, बहुत ही छोटी हो।" आगे चलकर भी रमेशको रमाकी 'अखड स्वार्थपरता'का परिचय मिलता है, जिससे उसके अधे हृदयकी आँखे खुल जाती है।

रमा और रमेशका सबध कुछ विचित्र प्रकारका है। बाल्यावस्थाका प्रेम दोनोको एक-दूसरेकी ओर खीचता है, किंतु पारिवारिक वैमनस्य उन्हे अलग कर देता है। रमेशके प्रति बरबस आकर्पित होती हुई भी रमा उसका बुरा चाहनेमे नही चूकती। वह उसे निरपराध होते हुए भी स्वय अपनी गवाही देकर जेल भिजवानेका प्रयत्न करती है और वह इसमे सफल भी होती है। वस्तुत 'ग्रामीण समाज'मे शरत्ने अपनी पिछली कृतियोकी अपेक्षा नारीका अधिक यथार्थ अकन किया है, और साथ-ही-साथ इसमे नारी-

के सम्मुख पुरुषका व्यक्तित्व अधिक प्रबल है। रमा रमेशको बचानेका भी प्रयत्न करती है, किंतु उसका यह प्रयत्न केवल कुल-मर्यादाकी रक्षाके लिए है, स्वय रमेशके लिए नही। ऐसा जान पडता है कि ईर्ष्या, द्वेष एव वैमनस्यसे घिरे होनेके कारण, रमाका रमेशके प्रति प्रेम बहुत ही कम अवसरोपर उभर पाता है। रमेशके अनाचार (?) एव देवताके प्रति अश्रद्धा होनेके कारण उसका मन उसकी तरफसे और भी विमुख हो उठता है।

परतु इतना सब होनेपर भी रमा एव रमेश एक-दूसरेके ऊपर अपन अधिकारका अनुभव बराबर करते है। भैरवके घरमे, रमेशका हाथ पकडकर रमा उसे भैरवसे अलग कर देती है। वह यह बात अच्छी तरह जानती है कि अनेक भलाइयो और बुराइयोके बावजूद भी वह रमेशके विश्वासकी अमानतदार है। और वह स्वय भी रमेशके प्रति श्रद्धा रखती है, उसकी यश-गरिमा सुनकर पुलकित हो उठती है।

अतमे उसके व्यक्तित्वका अधिक अच्छा भाग विजयी होता है, और रमेशके प्रति अपने अपराधोके लिए वह पश्चात्ताप करती है। मन ही मन घोर सतापके कारण वह बीमार पड जाती है। रुग्णावस्थामे वह ताईजीसे कहती है, "सिर्फ एक ही जगह हम दोनो एक-दूसरेसे अलग न हो सके। अर्थात् तुमको हम दोनोने ही प्यार किया. . .ताईजी, तुम मेरी तरफसे उनसे सिर्फ इतना ही कह देना कि वे मुझे जितनी बुरी समझते थे, मै उतनी बुरी नही थी। और मैने उन्हे जितना दु ख दिया है, उससे कही अधिक दु ख मैने भी पाया है।" वस्तुत उद्धरणकी अतिम दो पक्तियाँ रमाके चरित्रके लिए मूल सूत्रका कार्य करती है।

तीर्थ-यात्राके कुछ समय पूर्व जब रमाको देखनेके लिए रमेश जातेहै तो वह उनसे बातचीतमे भी कुछ दूर ही रहना चाहती है, जिससे कही प्राचीन स्नेह फिरसे न उमड पडे। उनकी महानताका कथन करते हुए वह रमेशके हाथोमे अपने भाई यतीन्द्रको सौप देती है, मानो उन्हे वह अपना खोया हुआ विश्वास फिर दे रही हो। और तभी वह रमेशको अपनी मौन वेदना एव सहन-शक्तिका कुछ आभास देती है। ताईजीका निष्कर्ष तो स्पष्ट ही

है, "भगवान्‌ने उसे इतना रूप, इतना गुण और इतना बडा हृदय देकर क्यो इस ससारमे भेजा था, और फिर क्यो बिना किसी दोष या अपराधके इस तरह उसके सिरपर दु खका बोझ लादकर उसे ससारके बाहर फेक दिया तुम कभी भूलकर भी मेरी इस बातपर अविश्वास न करना कि तुम्हारी उससे अधिक मगलाकाक्षिणी और कोई नही है।"

वेणीकी माँ तथा रमेशकी ताई विश्वेश्वरीका चरित्र 'ग्रामीण-समाज'के ईर्ष्या तथा द्वेषके अधकारमे निर्मल दीपक-ज्योतिके समान है। इस स्नेह-मय रमणीकी तरफ थोडी देरतक देखते रहनेसे मानो सारा अत करण मोहसे भर जाता है। जितना कोमल उनका हृदय है उतना ही अनिद्य उनका सौंदर्य है। परतु इतनी कोमलताके साथ-साथ उनके व्यावहारिक जीवनमे आवश्यक कठोरताका भी अभाव नही है। उचित-अनुचितका विचार रखते हुए भी वे सामाजिक व्यवहारका पर्याप्त ध्यान रखती है। उनके व्यक्तित्वमे साधारण मनोविकार भी है। वे अपने अन्यायी पुत्रकी बुराई करती हुई भी उसका मोह नही छोड सकती। पारिवारिक मर्यादाका उन्हे पूरा ध्यान है, अत्यत सुलझे विचार रखते हुए वे प्राचीन रीति-नीतिकी अनुयायिनी है। व्यावहारिक सयमकी उनमे कमी नही है, और इसीका उप-देश वे रमेशको भी देती है। वे उससे गाँवमे रहकर सुधार-योजनामे प्रवृत्त होनेका आग्रह करती है। हर विषयमे उनकी सुनिश्चित धारणाएँ है, और उन्हीके अनुसार उनका क्रिया-कलाप चलता है। रमा, रमेश, वेणी सबके लिए उनके हृदयमे स्थान है, किंतु उनकी धार्मिक मर्यादाके सम्मुख सब तुच्छ है। अपने कुकृत्योके लिए दडित वेणीके लिए उन्हे अधिक दु ख नही है, इससे वे सतुष्ट ही अधिक है। उनके चरित्रके मूलमे उनकी ससारके प्रति अनासक्ति है और इसीके कारण उनका व्यक्तित्व इतना ऊँचा है। धार्मिक एव नैतिक आस्थाएँ उनके जीवनमे विशेष महत्त्वपूर्ण है।

रमा एव ताईजीके अतिरिक्त "ग्रामीण समाज"के शेष नारी-पात्र पार्श्व चरित्र है। रमाकी मौसी कलह-प्रिय, अदूरदर्शिनी एव शकालु है। कटु-भाषणमे वह अपनी सानी नही रखती। कुछ इसी प्रकारका, किंतु

इससे कुछ हल्का चरित्र विधवा ब्राह्मणी क्षेन्तीका है। गाँवकी अनेक वुढि-याओके समान वह ससारके सारे तथ्योको समझनेवाली एव क्रोधी प्रकृतिकी है। भैरव आचार्यकी पुत्री भी इसी वर्गसे सबधित हे। लडने-झगड़ने एव कटु भापणमे वह विशेप योग्य है। उसकी माँका व्यक्तित्व उससे कुछ ऊँचा है।

'ग्रामीण समाज'के कथानकके अनुरूप ही उक्त तामसिक चरित्रोका निर्माण हुआ है। कामिनीकी माँ-जैसा कोई एक-आध पात्र अवश्य ही यत्र-तत्र हृदयमे कुछ श्रद्धाका सचार कर जाता हे, अन्यथा ईर्ष्या एव वैमनस्यसे ग्रसित मानवताके दर्शन ही हमे शरत्‌की इस कृतिमे होते है। आदर्शसे हटकर, उपन्यासकारका नारी-चरित्रका अकन सामान्य भाव-भमिपर आ गया है, इस वातका निर्देश हम पहले ही कर चुके है।

अरक्षणीया

अरक्षणीया' के कथा-विधानकी एक-एक पक्तिमे उपन्यासका शीर्षक जैसे व्याप्त हो गया है। निर्धन बगाली विधवाकी विवाह योग्य पुत्रीको समाज किन तिरस्कारकी निगाहोसे देखता है, इसीका चित्रण करनेके लिए शरत् बाबूने इस गल्पका प्रणयन किया है, जो अपनी शास्त्रीय मर्यादामे एक गल्प होते हुए भी वास्तविक जीवनके क्षेत्रमे अक्षरश सत्य है। वह सडा-गला एव खोखला समाज, जिसमे विवाहके नामपर बडे-से-बडा अनर्थ होता है, इस लघु उपन्यासका सर्वप्रमुख पात्र है। कथाका एक-एक अक्षर अरक्षणीया-की कातर पुकारसे मुखरित है, और अरक्षणीयाकी पुकारमे अनेक कुलीन घरकी कन्याओकी वेदना समाहित है।

'अरक्षणीया' की मूल-कथा पर्याप्त सीधी-सरल होते हुए भी अनेक घात-प्रतिघातोसे पूर्ण है। निर्धन तथा परिवारसे तिरस्कृत विधवा दुर्गा अपनी पुत्रीके विवाहके लिए चिन्तित है। ज्ञानदा पूरे तेरह वर्षकी हो चुकी है, परन्तु धनाभावके कारण अभीतक उसका सबध भी निश्चित नही हो पाया। पडोसके सपन्न परिवारका कलकत्ता-प्रवासी पुत्र अतुल ज्ञानदाका बाल-सहचर रहा है। उसके बीमार पडनेपर अकेली ज्ञानदाने ही उसकी दिन-रात सेवा-शुश्रूषा करके उसे मौतके मुँहसे बाहर निकाला था। दुर्गाके पति जब प्राण-त्याग कर रहे थे, उस समय अतुलने ज्ञानदाका भार अपने ऊपर लेनेका वचन उन्हे दिया था। बस इसी एक आशापर दुर्गाका कष्टमय जीवन बीता जा रहा था। विधवा होनेके कुछ समय पश्चात् अपने कुटुबियोके व्यवहारसे दुखित होकर वे अपने बडे भाईके यहाँ चली गई। घोर स्वार्थसे प्रेरित दुर्गाके बडे भाईने ज्ञानदाका विवाह ज़बर्दस्ती अपने सालेके साथ

करके अपने सौ रुपयेके ऋणसे मुक्त होना चाहा, परन्तु अपनी कर्कशा-स्नेहमय मामीकी कृपासे ज्ञानदा इस घोर अभिशापसे वच गई। भाईके यहाँ रहनेसे दुर्गा तथा ज्ञानदा दोनो ही वीमार हो गईं, इधर महीनोसे अतुलका भी कोई समाचार न मिला था। इसलिए माँ-वेटी दोनो रुग्णा-वस्थामे ही वापस अपने गाँव चली आई। यहाँ आकर जव दुर्गाको यह ज्ञात हुआ कि अतुलका विवाह कही अन्यत्र हो रहा है ओर वह ज्ञानोके साथ अपना कोई सवन्ध नहीं मानता तो जेसे उनके ऊपर वज्रपात हो गया। इस धक्केने उनका अन्त और भी निकट कर दिया। दुर्गाके शवके जलनेके उपरान्त, जव श्मशानमे अतुलने नि सहाय ज्ञानदाको उसके द्वारा वहुत दिन पहले दी गई चूडियोको तोडते देखा तो उसके हृदयमे प्राचीन स्नेह फिरसे उमड आया। प्रेमके सामने विरोधी शक्तियोको दवना पडा और अतुलने वही, श्मशानमे ही, अरक्षणीयाको रक्षाका वरदान दिया।

इस गल्पमे निश्चित रूपसे नारी-पात्रोकी प्रधानता है। अपने सीमित कलेवरमे ही 'अरक्षणीया' पाँच विशिष्ट नारी-चरित्रोको वडे व्यजनात्मक ढगसे पाठकके सम्मुख उपस्थित करती है। मध्यम-वर्गसे सवन्धित ये व्यक्तित्व अपनी सारी ईर्ष्या-द्वेष एव स्नेह-सहित पुस्तक पृष्ठोसे वाहर निकल आते है। उन सवकी अपनी अलग-अलग सवेदना है और अलग-अलग रूप। पर उनका चारित्रिक गठन एव सामजस्य समान भावसे कलात्मक है।

ज्ञानदा ही 'अरक्षणीया' है, यदि हम यह कहे तो कदाचित् अधिक अत्युक्ति न होगी। पूरी गल्पमे उसका व्यक्तित्व एक पलके लिए भी विस्मृत नही किया जा सकता। यहाँ हमे यह अवश्य ध्यान रखना पडेगा कि अन्य स्थानोकी अपेक्षा वगालमे एक तेरह वर्षकी किशोरी वडी आसानीसे उपन्यास अथवा गल्पकी नायिका वन सकती है। वहाँका तत्का-लीन समाज इस छोटी-सी अवस्थामे ही, वालिकासे खेलके गुड्डे-गुडिया छीन कर वास्तविक जीवनके गभीर दायित्व दे देता है। इसीलिए वहाँके नारी-जीवनका अधिकाश इतना करुण, इतना असहाय है।

ज्ञानदाको शरत्की पूर्व-नायिकाओंसे उत्तराधिकारके रूपमे शील एव नम्रता तो मिली है, पर रूप नही। 'काली-कलूटी होनेके कारण कोई उसे ग्रहण ही नही करना चाहता।' और तभी दुर्गाका आहत मन कह उठता है, "अरे जले समाज, अगर तू कुछ भी नही देखता, कुल-शील-स्वभाव-चरित्र वगैरह किसी गुणकी परवा नही करता, केवल रग काला होनेसे ही तू लडकीको दुरदुरा देता है, तो फिर उस लड़कीका ब्याह न होनेके लिए उसके माता-पिताको दण्ड देनेका तुझे क्या अधिकार है?" सचमुच जिस विवाहके लिए लडकीको 'रूपकी परीक्षा' देनी होती है, उस विवाहका मनुष्यकी आत्मासे कोई सबन्ध नही। ऐसी प्रथाको प्रश्रय देनेवाला समाज अधिक-से-अधिक सोन्दर्यके क्रम-विक्रयकी हाट कहा जा सकता है।

परन्तु ज्ञानदाके व्यक्तित्वमें रूपकी कमी, नम्रता पूरी करती है। उसका शील दिखावेका न होकर प्राकृतिक है। गुरुजनोकी आज्ञाका पालन करना उसका स्वभाव बन चुका है—'बचपन ही से बडे-बूढोकी आज्ञा को—वह चाहे उचित हो चाहे अनुचित—ज्ञानदा बिना सोचे-विचारे सिर-आँखोसे मजूर कर लेती थी, उनकी सेवा करती थी, मुँह बद रखकर सब कुछ सहती थी।' किसी आदेशका उल्लघन करना, किसी आज्ञाका प्रतिवाद करना उसकी प्रकृतिके विरुद्ध है।

अपने इन चारित्रिक गुणो एव मानसिक सस्थानमे ज्ञानदा 'परिणीता' को ललितासे बहुत कुछ मिलती है। दोनोकी वय एक है, और रूप-रग तथा गुण-शीलमे भी दोनो समान है। उनके परिवारोकी आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय है, और इसीलिए वे अपने अभिभावकोकी चिंताका कारण बनी हुई है। ललिता एव ज्ञानदा दोनो अपने सपन्न पडोसीके पुत्रको प्यार करती है, और उन दोनोको प्रेमका प्रतिदान भी मिलता है, परन्तु तभी आकाशके नक्षत्रोकी गति वक्र होती है, और दोनोके जीवनमे विपत्तियोका आगमन कथाके प्रवाहको तीव्र करता है, परन्तु किशोरीके निर्मल तथा असहाय प्रेममे कितनी शक्ति है, इसे शरत् भली भाँति जानते थे, और इसी-लिए अन्तमे ज्ञानदा एव ललिता दोनोको ही अपना प्राप्य मिलता है।

'अरक्षणीया' की समस्या मुख्य रूपसे बगालमे निर्धन मध्यम वर्गके परिवारोमे कन्या-विवाहकी समस्या है। और यदि धनके साथ-साथ कुमारीके लिए रूपका भी अभाव हुआ तो फिर कहना ही क्या ? अभाग्य-वश ज्ञानदाके लिए ये दोनो अभाव सयुक्त हो गये है और तभी तो 'चिताका मुर्दा भी तुम्हारी लडकीसे व्याह करनेको राजी नही होता ।' रूप तथा धनके समक्ष शील एव सौजन्यका वलिदान समाजमे वहुत दिनोसे होता आया है, और 'अरक्षणीया' इसीकी करुण कथा है। वस्तुत इस देशकी अनेक ज्ञानदाएँ इस लज्जासे बचनेके लिए आत्महत्याका सरल मार्ग पकड लेती है, परन्तु धरती माताकी तरह सहनशील होनेके कारण ही शरत्‌के इस उपन्यासकी चरित-नायिका इतनी ग्लानि एव अपमान सहकर भी दुखी जीवनका भार उठाती रही। उसकी अपार सहिष्णुताने ही उसे जीनेके लिए विवश किया।

१२--१३ वर्षकी अल्पायुमे ही ज्ञानदा 'सयानी---पूरी औरत' हो जाती है और तवतक अविवाहित रहनेके दंड-स्वरूप वह अपने ही घरमे एक प्रकार-से अस्पृश्य एव अमगलसूचक हो गई है। रसोई और ठाकुरद्वारेमे जानेके लिए उसे निषेध है। यही नही, स्वर्णमजरीके शब्दोमे तो वह 'घरका एक मुर्दा है।' यदि वह निकाला नही जायेगा तो पडे-पडे सडकर ऐसी वदवू फैलायेगा कि घरमे रहना कठिन हो जायेगा। स्वर्णने यह वात ज्ञानदा-को घृणाका आलबन मानकर कही है, हमलोग भी उसकी असहाय अवस्थाको देखकर उसे जीवन्मृत कह सकते है, परतु यहाँ वह हमारे लिए करुणाका आलवन होगी।

ज्ञानदा और अतुल वाल-सहचर है। दोनोके हृदयमे एक-दूसरेके लिए विश्वास एव स्नेह सरक्षित है। ज्ञानदाके पिता जब मरणासन्न हो जाते है तो वह अपने घर आये हुए अतुलके पैरोपर सिर पटककर रोने लगती है। उसे सासारिक लोक-मर्यादाका कुछ भी ध्यान नही रहता। अतुल भी ज्ञानदाके अधिकारको मान्यता देता है और मरते हुए प्रियनाथके सम्मुख उसका भार अपने ऊपर ले लेता है। ज्ञानदाको अपने प्राप्यके मिलनेकी

आशा हो जाती है, जिसे उसने स्वय मृत्युके मुँहमे से बचाया था, सावित्री-के समान यमराजके हाथसे छीन लिया था, किंतु जब कुछ दिनोंके उपरात उसे यह ज्ञात होता है कि उसका अपना अतुल उसीके सामने दूसरेका होने-वाला है तो उसके दु खकी सीमा नही रहती । उसका अस्तित्व निराधार हो जाता है और वह अतुल-द्वारा दी गई चूडियोको, जिन्हे वह प्राणोके समान प्रिय समझती थी अपनी माँके जलते हुए शवके सम्मुख तोडकर फेक देती है। किंतु ये टूटी हुई चूडियाँ अतुलके मनको ज्ञानदासे फिर जोडती हैं, और वही श्मशानमे अरक्षणीयाको अपने प्रियतमका सरक्षण मिल जाता है।

ज्ञानदाको चरित्रकी नम्रता अपनी माँ दुर्गासे विरासतके रूपमे मिली है। बगालकी विधवा नारी यदि निर्धन भी हो तो उसके दु खोका अत नही रहता। सयोगसे दुर्गा इसी कोटिकी स्त्री है। इसीलिए उसमे कुछ-कुछ मान-अपमानसे परे होनेकी बात आ गई है। वह स्वर्णसे कहती है, "नही दीदी, मेरे अब मान-अभिमान क्या है!" पर इससे यह न समझना चाहिए कि उसका स्वाभिमान एकदम नष्ट हो गया है। जब उसे अपने बडे भाईके घर जानेके लिए कहा जाता है तो बिना बुलाये उनके यहाँ जानेके लिए वह एकाएक तैयार नही होती। अपनी ओरसे वह किसीके भी गले नही पडना चाहती।

दुर्गा अपनी एकमात्र सतान ज्ञानदाको प्राणोके समान चाहती है। उसे भूखा देखकर वह आप खाना तक नही खा सकती, किंतु ऐसी स्नेह-शील जननी भी पुत्रीका दुर्भाग्य देखकर झुँझला उठती है। क्रोधके आवेशमे यदि वह अतुलको मरनेके लिए कह सकती है तो साथ ही साथ वह ज्ञानोको अपनी खाटसे भी ढकेल सकती है। अत्यधिक राग एव ममताको इस प्रकार क्रोध तथा खीजमे वदलते देख सहृदय पाठकका मन भर आता है। दुर्गाकी प्रकृतिमे इस क्षणिक तामसिकताका एकमात्र कारण है पुत्री-विवाहकी चिता, और इसी चितामे वह घुल-घुल कर प्राण-त्याग कर देती है।

'अरक्षणीया' में दुष्ट चरित्र दुर्गाकी विधवा जिठानी स्वर्णमजरीका है। दिगंबरी, एलोकेशी, वुढिया वैष्णवी आदिके व्यक्तित्वकी सारी कड़ुआहट स्वर्णको उत्तराधिकार-स्वरूप मिली है। वह प्रकृतिकी कटु होनेके साथ ही साथ वाणीकी भी कटु है। ज्ञानदाको वह 'पख कटी परी' एवं 'पीपलपरकी चुड़ैल' कहती है, दुर्गाके ऊपर अपने देवरकी गृहस्थीको विनष्ट करनेके प्रयत्नका आरोप लगाती है। इन्ही सब बातोको देखकर अतमे छोटी बहूको कहना पडता है, "दीदी, दो-एक साल मधु-संक्रातिका व्रत कर डालो, जिससे दूसरे जन्ममे जरा मीठी बोली-बानी हो।"

चारित्रिक कटुताके साथ स्वार्थवृत्ति उसके व्यक्तित्वकी मूल सवेदना है। अपने लिए भलाईका मार्ग ढूँढकर दूसरेको वह सदैव बुराईकी ओर बढाना चाहती है। वह चाहती है कि दुर्गा भाईके यहाँ जाकर अपनी लडकी-को किसी मर्दके गले मढ दे, जिससे स्वय उसे कोई बुरा न कह सके। अपनी देवरानी एव उसकी पुत्रीके लिए वह एक पाई भी नही खर्च करना चाहती।

स्वार्थपरताके कारण ही स्वर्णमे हृदयहीनताकी भी मात्रा कम नही है। उपन्यासकारके शब्दोमे, 'उसके हृदय नामका कोई पदार्थ तो था ही नही—वह इस बलासे बिलकुल बरी थी।' लेखककी इस टिप्पणीका महत्त्व तब समझमे आता है, जब वह निर्दोष, नि सहाय एव हतभागिनी ज्ञानदाको अतुलके सामने अमाननीय ढगसे बुरा-भला कहती है—'हजार बार कह चुकी कि तुम्हारा मुँह देखनेसे सात पीढिया नरकमे गिरती है, मेरे सामने तुम न आया करो।' एक अबोध बालिकाके लिए इतने कठोर एव पैने शब्दोका प्रयोग स्वर्णमजरी ही कर सकती है। ज्ञानदाको तो वह 'खानगी' (वेश्या) कहनेमे भी सकोच नही करती। सक्षेपमे, स्वर्ण प्रकृति एव वाणीकी कठोर, कलहप्रिय, हृदयहीन तथा मर्यादा-शून्य है।

उपन्यासमे अनाथनाथकी पत्नी छोटी बहूका चरित्र अपेक्षाकृत कम अकित है। वह आलस्यकी प्रतिमूर्त्ति, तथा कटु होती हुई भी अपनी जिठानी स्वर्णके समान तीखी नही है। आलसी होनेके कारण वह दूसरोकी व्यथाका अनुभव करती हुई भी अपने परिश्रमसे उनका दुख

दूर नही कर पाती, परतु वह दूसरोका बुरा नही चाहती और न यथासभव अन्यायका पक्ष ही ग्रहण करती है। अतुलको भी समयपर वह खरी-खरी सुनानेमे नही चूकती। और जब ज्ञानदाको घरसे निकालकर 'मलेरियाके डिपो' हरिपालपुर भेज देनेका प्रस्ताव उसके कानोतक पहुँचता है तो वह एकातमे अपने स्वामीसे कहती है, "तुम सठिया तो नही गये, जो बडी भावजकी सलाहसे ऐसे असमयमे रोगी माँके पाससे लडकीको जुदा करनेकी बात कह आये ? कसाई लोग भी—जिनका पेशा ही हत्या करना है—तुम्हारी अपेक्षा अधिक दया-माया रखते होगे।" वस्तुत छोटी बहूका मन ऊपरसे खुरदुरा होते हुए भी अदरसे सवेदनशील है। उसके व्यक्तित्वकी तामसिक वृत्तियाँ भलाईके परमाणुओको विजित नही कर सकी हैं।

'अरक्षणीया' मे सबसे सुगठित चरित्र दुर्गाकी भाभी भामिनीका है। उसके व्यक्तित्वकी पृष्ठभूमिमे मनोविज्ञानका वह सिद्धात स्थित है, जिसके अनुसार ऊपरसे कठोर एव कर्कश दिखाई पडने वाले व्यक्ति हृदयके बडे कोमल एव सरल होते हैं। भामिनीका चरित्र इसी जातिका है। वह बातचीत जरा ऐंठ-ऐंठकर करती है, और जैसी वह बोलनेमे तेज है, वैसी ही लडनेमे भी प्रवीण। परतु वह गले पडकर किसीसे लडना-झगडना नही चाहती। इस प्रकार उसके चरित्रका तीखापन अधिकाशत. भलाईके लिए ही है, बुराईके लिए नही। अपनी ननदकी एकमात्र सतान ज्ञानदाकी परिचर्या वह बडे मनोयोगसे करती है। इससे उसका अप्रकाशित वात्सल्य भलीभाँति प्रकट होता है। दुर्गाने उसके स्वभावकी तीव्रताके कारण उसका नाम 'जला कुदा' रख छोडा है, परतु अतमे वापस घर जाते समय उसे अपनी भाभीकी उच्चाशयताका ज्ञान होता है, और वह भरे हुए कठसे भामिनीसे क्षमा माँगती है।

वस्तुत भामिनीमे प्यार करनेकी अपरिमित शक्ति है और इसका पता हमे उसके रुग्ण ज्ञानदाके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहारसे लगता है। सच तो यह है कि भामिनी ऊपरसे देखनेसे ही 'जला कुदा' लगती हे, अदर तो वह चदनके समान शीतल है। इस चारित्रिक विपर्ययका अध्ययन शरत्‌के

मनोवैज्ञानिकने बडे पूर्ण एव सहृदय ढगसे किया है। प्रारभमे दुर्गा उससे मन ही मन बहुत डरती है, परतु धीरे-धीरे उसकी घृणा एव भय कम हो जाता है।

अपनी प्रकृतिके अनुकूल ही, स्पष्टवादिता भामिनीके चरित्रकी प्रमुख विशेषता है। खरी-खरी सुनानेमे वह अपने पतिको भी नही छोडती। शभुके स्वार्थका पर्दाफाश करती हुई वह चिल्ला-चिल्लाकर कहती है, "मामा है! मामापन फैलाने आये है! नवीनके साथ ब्याह करोगे! तभी तो मय सूदके सौ रुपये अदा हो सकेगे, क्यो न? इसीलिए वह बडा अच्छा वर है, क्यो?. तुम्हे गलेमे फाँसी लगाकर मर जानेके लिए रस्सी नही मिलती कही क्या? धिक्कार है! लानत है!" वस्तुत नि.सतान भामिनीमे माया-ममताका अभाव नही है, इसीलिए किसीके भी प्रति किये जानेवाले अन्यायको वह सहन नही कर सकती।

स्पष्टवादिताके साथ चरित्रकी दृढता एव स्वाभिमान रहता है। अपने पति-द्वारा हरामजादी कहे जानेपर उसके क्रोधका पार नही रहता, शभुको वह चेतावनी देती है, "फिर ज़बानसे यह गाली निकाली तो तुम्हारे इस मुँहमे जलती हुई चूल्हेकी लकडी जो न ठूँस दूँ तो मै पाँचू घोषालकी लडकी ही नही तरकारी काटनेकी मेरी छूरी देख रखो। साले-बहनोईकी एक साथ नाक काटकर तब जान छोडूँगी। मेरा नाम भामिनी है, यह याद रहे।" यहाँ इस बातका ध्यान हमे अवश्य रखना पडेगा कि इस शक्तिशाली क्रोधकी पृष्ठभूमिमे वह दया है जो दुर्गा एव उसकी पुत्रीके प्रति अन्याय होते देखकर भामिनीके हृदयमे उमड पडती है। ज्ञानोके प्रति उसकी ममताका परिचय हमे तब मिलता है,जब वह बताती है कि उसकी बीमारीमे डाक्टरको बुलानेके लिए उसने अपना एक मात्र गहना बेच डाला था। कर्कशताके आवरणमे दबी हुई भामिनीके हृदयकी यह विशालता सचमुच ही श्रद्धेय है। उसके जीवनका ध्येय है, "जो कुछ अपना है वही लेकर रखो, खाओ-पियो। पराई रकम लेकर अपना पेट मोटा करनेकी कोशिश करते हो? ऐसा करनेवालेका भगवान् कभी भला नही करते।"

जैसा अन्यत्र कहा जा चुका है, निर्धन बगाली कन्याका विवाह 'अरक्षणीया'की कथाका सर्वप्रमुख पात्र है। जब दुर्गा कहती है, "ओ ! इतने बडे शत्रु (लडकी) को भी अपने गर्भमे रखने और खिला-पिलाकर बडा करनेकी झखमारी माताको करनी पडती है" तो उपन्यासकी समस्या हमारे सम्मुख स्पष्ट रूपसे आ जाती है। फिर, विवाह न कर पानेकी चिंता ही नही, वरन् उसके फलस्वरूप समाजसे च्युत हो जानेकी आशका भी पुत्रवती जननीके सिरपर सदैव मँडराया करती है—'मै अपने समाजकी निष्ठुरता या धीगाधीगी खूब जानती हूँ। लडकीका व्याह न करे, तो बिरादरीसे अलग कर दिये जायँ।' और तभी आँसुओकी धाराके बीच दुर्गाको अतुलसे कहना पडता है, "दूसरे जन्ममे मैने न-जाने कितनी स्त्री-हत्या, बाल-हत्या की है अतुल, जिससे इस जन्ममे मेरे पेटसे लडकी पैदा हुई है।" वस्तुत एक निर्धन गृहस्थको अपनी काले रगकी लडकीका विवाह करनेके लिए क्या-क्या करना पडता है, इसका सही अनुमान लगाना बहुत कठिन है। इसके फलस्वरूप सोलह सालकी लडकीका विवाह साठ सालके वृद्धसे हो जाता है, जिसे देखकर एक बार शायद निष्ठुरताके हृदयमे भी दयाका सचार हो सकता है।

और फिर बगालमे ११-१२ सालकी लडकी "सयानी—पूरी औरत' हो जाती है, और यदि उस अवस्थातक उसका विवाह न हो सका तो अपने घरमे ही वह एक प्रकारसे अस्पृश्य समझी जाने लगती है। इतना होनेपर भी प्रातके किसी-किसी भागमे ज़बर्दस्ती पकडकर व्याहकर लेना रोजमर्राकी साधारण घटना है। इन अत्याचारोसे पीडित होकर ही ज्ञानोको कहना पडता है, "मेरा व्याह करनेवाला कोई नही है, तो भी मेरी उमर बढती ही जाती है—यह भी क्या मेरा अपराध है, प्रभो ?" वस्तुत बगालमे नारी होनेके अपराधके लिए शायद एक ही प्रायश्चित्त है, और वह है आत्म-हत्या। तत्कालीन इतिहास इन जघन्य कृत्योसे पग-पगपर भरा हुआ है। चिताका मुर्दा भी निर्धन लडकीसे विवाह करनेके लिए तैयार नही है, और दूसरी ओर समाजका फौलादी पजा सिरके ऊपर है, ऐसी दशामे लडकीके

लिए जो कुछ भी किया जायगा वह सब उसके लिए आत्महत्याकी कोटिका ही होगा। या तो उसका विवाह किसी रुग्ण एव असहाय व्यक्तिके साथ हो जायगा, या उसे किसी वृद्धके सम्मुख रूपकी परीक्षा देनी होगी, अथवा अतत वह जीवनका मोह ही छोड देगी। इस प्रकार शास्त्रकी बलि वेदीपर कन्याका बलिदान (कन्यादान नही!) बगालके समाजमे बहुत दिनो तक होता रहा है, जिसके विरोधमे बडे-बडे सुधारक एव साहित्यिक भी नही ठहर सके।

यह है बगालमे कन्या-विवाहका अत्यत सूक्ष्म चित्रण, जो प्रस्तुत उपन्यासका कदाचित् सर्वप्रमुख पात्र है, और जिसकी गणना मानवताके महानतम अभिशाप एव कलकके अतर्गत की जा सकती है। शरत्‌की 'अरक्षणीया' इस समस्याका एक सक्षिप्त, परतु अत्यत मर्मस्पर्शी दृश्य उपस्थित करती है।

श्रीकांत

[श्रीकांतेर भ्रमण काहिनी]

१

'श्रीकात'के चार पर्वोकी रचना उपन्यासकारने अलग-अलग की है। चारो पर्वोके रचनाकालमे समयका पर्याप्त व्यवधान है। 'श्रीकात'का प्रत्येक पर्व अपने आपमे पूर्ण है—हिदीके 'शेखर . एक जीवनी'की भाँति। अत. पूरे उपन्यासमे एक प्रकारसे समरसताका अभाव ही कहा जायगा। जीवनके विश्रृखल सूत्रोको कलाकारकी सवेदनामे रँगकर, शरतने अपनी भ्रमण-कहानी प्रस्तुत की है। इसीलिए उपन्यासके पात्रोमे, किसी बँधे-बँधाये एव सुगठित चरित्रको खोजना प्राय असफल रहता है। किंतु इसका यह अर्थ कदापि नही कि 'श्रीकात'मे शरत् बाबूकी उत्कृष्ट चरित्र-चित्रण-शैली कुछ नीचे गिर गई है, वरन् यह कि उसमे किसी निश्चित तारतम्यका अभाव है। और वस्तुत आत्मकथात्मक उपन्यासमे इस प्रकारकी शैली नितात स्वाभाविक ही नही, स्यात् नितात आवश्यक भी है। मानव-जीवन-की लम्बी अवधिमे बहुतसे व्यक्तित्व घटनास्थलपर एक बार आकर फिर सदैवके लिए तिरोहित हो जाते हैं। ऐसे चरित्रोको उनके अल्पकालीन विराममे ही अंकित करना चाहिए। सच तो यह है कि ऐसे पात्रोका क्षणिक सपर्क व्यक्तिके जीवनको सदाके लिए प्रभावित कर जाता है।

अस्तु, 'श्रीकात'की कथा बहुत दूर-दूरतक बिखरी हुई है। स्वय नायकके जीवनके सहारे ही इन विश्रृखल सूत्रोमे परस्पर एकता स्थापित हो सकती है, अन्यथा विभिन्न कथा-भाग एक दूसरेसे सबद्ध नही जान पडते। घुमक्कड श्रीकातका परिचय बाल्यावस्थामे ही इद्रनाथसे हो जाता है। ये दोनो बाल्-सहचर अकेले बहुत दूर-दूरतक नावपर चढकर घूमने जाते हैं। एक दिन

इद्रनाथ श्रीकातको नदी किनारे, एक निर्जन वनमे रहनेवाली अपनी मुँह-बोली दीदीके यहाँ ले जाता है। यह दीदी शात, सयमी और पति-भक्त अन्नदा है, जिसके व्यक्तित्वका अमिट प्रभाव श्रीकातपर जीवन-पर्यन्त रहता है। अपने पति शाहजीकी मृत्युके उपरात एक दिन अन्नदा जीजी विना किसीको वताये हुए, अकेली घर छोडकर चली जाती है, और श्रीकात अपनी दीदीका अधिकाधिक सपर्क पानेके लिए लालायित रह जाता है।

कुछ और वडा होनेपर श्रीकातका परिचय एक नाचने-गानेवाली वाईजी प्यारीसे होता है, जो वस्तुत. उसकी निकट वालसहचरी राजलक्ष्मी है। श्रीकात उसे नही पहिचान पाता, परतु वह श्रीकातको पहिचान लेती है। इसके वाद जव दोनो एक-दूसरेको परस्पर अच्छी तरह जान लेते है, तो उनके हृदयमे शैशवावस्थाका प्रणय फिरसे जाग उठता है। राजलक्ष्मी श्रीकातके अत्यत निकट आना चाहती है, परंतु उसका वैधव्य एव उसकी वर्त्तमान स्थिति वीचमे रुकावट वन जाती है। पर श्रीकात और प्यारी एक-दूसरेके ऊपर अपने अधिकारका अनुभव करने लगते है, और उसका प्रयोग भी करते है।

श्रीकात अपनी घुमक्कड प्रवृत्ति तथा व्यवसायके अभावके कारण वर्मा चला जाता हे। रास्तेमे उसकी जान-पहिचान अभया नामक एक 'फारवर्ड' लडकीसे होती है, और उन दोनोमे परस्पर दृढ मैत्री स्थापित हो जाती है। वर्मा पहुँचनेपर श्रीकात अभयासे प्राय. मिला करता है, और एक वार तो घोर रुग्णावस्थामे श्रीकातकी परिचर्या करके अभया उसकी जान वचा लेती है। अभयाके कहनेसे ही वह राजलक्ष्मीके पास वापस कलकत्ते चला आता है।

अनेक दिन राजलक्ष्मीके साथ रहनेके वाद श्रीकात फिर एक दिन वाहर निकल पडता है। इस वार वह एक वैष्णव-मठमे पहुँचता है, जहॉकी प्रमुख वैष्णवी कमललता उसे रोक रखती है। श्रीकातका मन भी वहॉसे वापस आनेको नही होता, और परम वैष्णवीय वातावरणमे उसके कुछ दिन वडे आरामसे कट जाते है। कमललता श्रीकातको हृदयसे चाहती है, और मन ही मन उसका वडा आदर करती है।

अतत. श्रीकात जब उस आश्रमसे फिर वापस कलकत्ते पहुँचता है तो उसे वहाँ राजलक्ष्मी उसकी प्रतीक्षामे मिलती है। इस बार राजलक्ष्मी अपने सारे मोहको छोडकर, अपने सारे वैभवको त्यागकर, श्रीकातको सपूर्ण रूपमें पानेके लिए आई है। वह श्रीकातको अपने साथ गगामाटी नामक गाँवमे ले जाती है और वहाँ दोनो व्यक्ति परम शान्तिके वातावरणमे रहने लगते है।

तभी एक दिन श्रीकातको अपने मित्र, एव कमललताके प्रिय, गौहरकी बीमारीका समाचार मिलता है। वह सीधा मुरारीपुरके लिए अकेले प्रस्थान करता है। उसके वहाँ पहुँचनेके पहले ही गौहरकी मृत्यु हो जाती है। कमललताके दु खका पार नही रहता, और उसकी मानसिक वेदना तब और बढ जाती है, जब गौहरके साथ उसका अनुचित सबध जानकर मठके अधिवासी उसका तिरस्कार करते है। श्रीकात वापस गगामाटीके लिए चलता है, कमललता भी उसके साथ स्टेशनतक आती है। श्रीकात उसे वृन्दावनका टिकट देकर ट्रेनमे बैठा देता है। 'गाडी दूर-से-दूर होने लगी, गवाक्षसे देखा, उसके झुके हुए मुँहपर स्टेशनकी प्रकाश-माला कई बार आकर पडी और फिर अधकारमे मिल गई। सिर्फ यही मालूम हुआ कि हाथ उठाकर मानो वह मुझे शेष नमस्कार कर रही है।' और यही श्रीकातकी कथा समाप्त हो जाती है—मानव-जीवनकी भाँति ही अपूर्ण और अशेष !

'श्रीकात'के विस्तृत कथा-भागमे लेखकने तेरह नारी-पात्रोका अवतरण किया है। इनमेंसे अन्नदा, राजलक्ष्मी (प्यारी), अभया और कमललता उपन्यासमे प्रमुख पात्रोका स्थान ग्रहण करते है; उनके व्यक्तित्व काफी उभरे हुए है। टगर, सुनदा और पूटूँका कथा-विधानमे स्थानीय महत्त्व है, और शेष बुआजी, मालती, वर्मी स्त्री, कुशारी पत्नी, चक्रवर्त्ती-गृहिणी और पद्मा पार्श्व-चरित्र मात्र है। प्रमुख पात्रोमे राजलक्ष्मीको छोडकर, अन्नदा, अभया और कमललताका चित्रण केवल एक-एक पर्वमे ही हुआ हे। अन्नदा जीजी प्रथम पर्वमे हमारे सम्मुख आती है, अभया दूसरे पर्वमे और कमललता चतुर्थ पर्वमे। केवल राजलक्ष्मी उपन्यासके चारो पर्वोमे अकित

है। वस्तुत राजलक्ष्मी ही 'श्रीकात'की कथाकी, और श्रीकातके व्यक्तित्व की प्रमुख सवेदना है। सबसे पहले हम उसीके चरित्रका विश्लेषण करेंगे।

राजलक्ष्मी अथवा प्यारीको हम श्रीकातके जीवनका सत्य कह सकते है। उपन्यासमे उसके प्रथम दर्शन प्यारीके रूपमे होते है। कुमारके तबूकी बाईजी, 'खूब सुदर, सुकठ और गानेमे निपुण' है, उसके होठोकी गठन कुछ इस किस्मकी है, मानो हर बात वह मजाक मे ही कहती है और मन ही मन हँसती है। एक वेश्याके आवरणमे भी वह श्रीकातके प्रति अपने प्रेमको हृदय-मे सुरक्षित रख छोडती है। अपने बाल-सहचरको देखते ही उसके व्यक्तित्व-की प्यारीका जीवन समाप्त हो जाता है। उसका इधर-उधर भटकता हुआ मन श्रीकातपर आकर स्थिर हो जाता है, जैसे कोई बरसातकी उमडती हुई नदी किसी अज्ञात शक्तिके वशीभूत होकर शारदीय रजनीकी सुरसरि-धारके समान शात हो जाय। यहीसे उसके जीवनका प्रथम अक समाप्त होकर द्वितीय अक आरभ हो जाता है। वह श्रीकातके घुमक्कड एव बीहड मनको वशमे करनेकी चेष्टा करती है; उसकी श्रीकातसे यही प्रार्थना है कि 'सुखके दिनोमे नही, तो दु खके दिनोमे मुझे न भूलिए।'

राजलक्ष्मीके चरित्रके मूल्याकनके लिए, उसके श्रीकातके साथ सबधको हमे माप-स्वरूप स्वीकार करना होगा। उपन्यासके उत्तरार्द्धमे तो उसने अपना जीवन श्रीकातके साथ एकाकार ही कर दिया है। और उसका यह आत्मसमर्पण तभी प्रारम्भ हो जाता है, जब वह परिणत वयमे श्रीकातको प्रथम बार देखती है। मार्गमे श्रीकातकी रुग्णावस्थाका समाचार पाकर वह सीधी उसे अपने घर लिवा लाती है। श्रीकातके स्वस्थ होनेपर वह अपने खोये हुए बाल्यावस्थाके अधिकारको पुन प्राप्त करना चाहती है, किंतु श्रीकातका थकित व्यवहार उसे कुछ सकुचित कर देता है। कुछ दिनो तक लक्ष्मी एव श्रीकातमे इसी प्रकारकी आँख-मिचौनी चलती है। पर अतत श्रीकातके पुरुषकी अकर्मण्य प्रकृतिपर राजलक्ष्मीकी नारीकी ममता एव स्नेह विजय प्राप्त कर लेता है। श्रीकातको पानेके लिए राजलक्ष्मी-ने कितने प्रयत्न किये है, इसका स्पष्ट उल्लेख वह स्वयं करती है—"तुम्हे

पानेके लिए मैंने जितना किया है, उससे आधा भी अगर भगवान्के पानेके लिए करती तो अब तक शायद वे भी मिल जाते। मगर मैं तुम्हे न पा सकी।"
उद्धरणके अतिम अशमे श्रीकातको न पा सकनेकी जो खीज परिलक्षित है, वह स्पष्ट ही श्रीकातकी अस्थिर प्रकृतिके कारण है। पर राजलक्ष्मीका अपार धैर्य श्रीकातको पाकर ही रहता है। गोसाईं द्वारिकानाथसे वह यही आशीर्वाद चाहती है कि इसी तरह हँसते-खेलते इनके समक्ष ही एक दिन वह मर जाये। श्रीकातसे वह कहती है, "तुम्हारी कुलटा राजलक्ष्मीने अपनी नौ वर्षकी उम्रमे उस किशोर वरको एक मनसे जितना ज्यादा प्यार किया था, इस ससारमे उतना ज्यादा प्यार कभी किसीने किसीको नही किया।" वस्तुत श्रीकातके प्यारमे ही राजलक्ष्मीका भाग्य निहित है।

राजलक्ष्मीके जीवन-वृत्तसे उसकी चारित्रिक दृढ़ताका बडा स्पष्ट आभास मिलता है। चतुर-बुद्धि रतनकी इस बातमे पर्याप्त सचाई है कि 'बाईजीकी बातमे कभी जरा भी फर्क नही पडता।' मानसिक दु खका अत्यधिक भार उठानेपर भी वह धरित्रीके समान सहनशील है। अभयाके शब्दोमे 'राजलक्ष्मीने जीवनमे दु खको ही सबल-रूपसे प्राप्त किया है।' पर इतनेपर भी उसके चरित्रमे विशुद्ध वैष्णव सहनशीलताका नमूना मिलता है। सयम उसके स्वभावमे सहज बन गया है। वह श्रीकातसे स्वय कहती है, "तुम्हारी लक्ष्मी चाहे जैसी हो, लेकिन अस्थिर मनकी नही है। उसने एक बार जिसे सत्य समझ लिया, फिर उसे उससे कोई डिगा नही सकता।"

सयम एव सहनशीलताके साथ-साथ राजलक्ष्मीमे व्यावहारिक साधनाकी भी कमी नही है। वह प्रारभसे ही एक भारतीय आचरण-शील रमणीके समान हमारे सम्मुख आती है। पुरुष एव स्त्रीका भेद करती हुई वह कहती है, "वे जो इच्छा हो खावे, जो इच्छा हो पहिने, जैसे भी हो सुखसे रहे, हम लोग आचारका पालन करती जावे, बस यही बहुत है।" कृच्छ्र-साधनामे उसकी प्रवृत्ति उसे तप पूत बनाती है। छुआछूतका विचार उसके जीवनके साथ इस प्रकार ग्रथित है कि इस विषयमे सत्यासत्यका प्रश्न ही अवैध

है। गुरु-पुरोहित, तैंतीस करोड़ देवता, तथा बहुत-सी विधवाओका भरण-पोषण उसके चरित्रकी धार्मिक पृष्ठभूमि है।

लक्ष्मी एक ओर जहाँ अपने चरित्रमे इतनी सहज है, वही उसके व्यक्तित्वमे आत्माभिमान एव स्पष्टवादिता भी है। वह किसी बातको छिपाना नही जानती। प्यारीके रूपमे वह श्रीकातसे कहती है, "मै भली औरत नही हूँ, यह तो तुम जानते हो? फिर भी, तुम्हे क्यो सदेह नही हुआ?" स्पष्टवादिताकी शक्ति वह कमललतासे अर्जित करती है, ओर अपने प्रियतमको वह अपनी सारी कलक-कथा, उसके न चाहते हुए भी, सुना देती है। उसे अपने ऊपर पूरा विश्वास है और तभी तो वह कहती है, "जिस साधनासे तुमको पाया जाता है, उससे तो भगवान भी मिल सकते है। यह वैष्णव वैरागियोका काम नही है। मै डरने जाऊँगी न जाने कहाँकी इस कमललतासे?"

अपने पूर्वके कलकित जीवनके बावजूद राजलक्ष्मीका चरित्र अत्यत शात एव दयामय है। सहिष्णुता उसके स्वभावमे है। गाँवमे जो लोग उसके परम शत्रु है, उन्हीके आठ-दस लडकोको वह पढाई-लिखाईका खर्च देती है। शीतकालमे कितने ही लोगोको कपडे और कम्बल देती है। वस्तुत उसकी इस दयाकी पृष्ठभूमिमे स्वस्थ भावुकता है। उसका हृदय इतना कोमल है कि वह दूसरोके कष्टोका वर्णन सुन तक नही सकती। इसीलिए स्टेशन-प्लेट-फार्मपर मिले हुए एक गरीब क्लर्ककी लडकी सरलाको वह एक साडी उपहार-स्वरूप भेजती है। दान ही नही वरन् अदम्य त्यागकी भावनासे उसका व्यक्तित्व परिपूर्ण है। सर्व-त्यागके द्वारा ही उसने अपने प्रेमको ऐसा निष्पाप, ऐसा एकात बना लिया है। श्रीकातके शब्दोमे, "एक-एक करके सभी कुछ छोड दिया मालूम होता है। सिर्फ एक मै ही बाकी रह गया हूँ।" निष्काम परोपकारकी भावना उसके मनमे बहुत दिनोसे लगी हुई है। श्रीकात-द्वारा, अनजान चक्रवर्त्ती-गृहिणीकी निर्धनता सुनकर वह उनका बहुत-सा कर्जा अपने ऊपर ले लेती है। यहाँ हमे रुग्ण श्रीकातकी परिचर्या करनेके कारण चक्रवर्त्ती-गृहिणीके प्रति उसकी कृतज्ञता भी दिखाई देती है।

रतनके अनुसार "माँ जब देती है तो दोनो हाथोसे उँडेल देती है।" भगवती बाबूकी चित्रलेखाकी तुलनामे शरत्‌की राजलक्ष्मी अधिक शात परतु अधिक प्रभविष्णु है। उसके रागमे भी अनासक्ति है। इसीलिए सन्यासी आनंदको वह 'दुनियासे अलगकी कोई चीज़' दिखाई पडती है।

राजलक्ष्मीके परोपकार-कृत्योंसे स्पष्ट है कि उसका मन कितना दया एव ममता-मय है। अपने सौतेले लड़के बकूको वह अपने पुत्रके समान ही मानती है। यौवनावस्थामे बदल जानेपर भी, बालक बकूकी धारणा है कि ऐसी माँ सबको नसीब नही हो सकती। राजलक्ष्मी स्वय उसकी भावनाओका इतना अधिक ध्यान रखती है कि उसके समक्ष वह यह भी नही चाहती कि कोई उसे 'प्यारी' कहकर सबोधित करे, और इस प्रकार उसके पुत्रको स्मरण दिलावे कि उसकी माँ एक नाचने-गानेवाली बाईजी है। 'उसकी असयत कामना, उच्छृङ्खल प्रवृत्ति, उसे चाहे जितने अध पातकी ओर क्यो न ठेलना चाहे, परतु यह बात भी तो उससे भूली नही जाती कि वह एक लडकेकी माँ है।' लेखकके अनुसार, ऐसी रमणियोको देखकर यह दृढतापूर्वक कहा जा सकता है कि नारीकी चरम सार्थकता मातृत्वमे है। राजलक्ष्मी अपनी मूल प्रकृतिमे एक गृहिणी है, इसीलिए 'लोगोका गेरुवा वसन छुडवाना उसका काम हो गया है।' एक गृहिणीके रूपमे उसका अतिथि-सत्कार उसकी खास अपनी चीज है।

अपने इन्ही गुणोंके कारण राजलक्ष्मीकी प्रभविष्णुता अदम्य है। रतनके शब्दोमे, "क्या जाने क्या जादू-मत्र जानती है वे! अगर कहे कि तुम लोगोको यमराजके घर जाना होगा, तो इतने आदमियोमे किसीकी हिम्मत नही कि कह दे, 'ना'।" वस्तुत उसकी इस प्रभविष्णुताका एक कारण उसकी सूक्ष्म अतर्दृष्टि है। वह दूसरेके मनकी बातोको दर्पणवत स्पष्ट देख सकती है। इसके अतिरिक्त अपने सरस व्यवहारमे भी वह बेजोड है। 'अपनी इच्छाको ही जबर्दस्ती दूसरेके कधेपर लाद देनेके कडुएपनको वह स्नेहके मधुर-रससे इस तरह भर दे सकती है कि उस ज़िदके विरुद्ध किसीका भी कोई सकल्प सिर नही उठा सकता।' उसकी व्यवहार-

कुशलतामे वह करामात है, जिससे कुशारी पत्नी एव उनकी देवरानीके बीच वहुत दिनसे चला आनेवाला कलह समाप्त हो जाता हे। इस व्यावहारिक वुद्धिके न होनेके कारण ही वह शास्त्र-ज्ञाता सुनदाको वहुत ऊँचा स्थान नही देती। उसकी विचार-शक्ति एव मनुष्योकी परख कुछ कम नही है। सुनदा के वारेमे वह कहती है, "उसकी पोथीकी विद्या जवतक मनुष्योको सुख-दु ख, भलाई-वुराई, पाप-पुण्य, लोभ-मोहके साथ सामजस्य नही कर पाती, तवतक पुस्तकोके पढे हुए कर्त्तव्य-ज्ञानका फल मनुष्योको विना कारण छेदेगा, अत्याचार करेगा और तुम्हे वताये देती हूँ कि ससारमे किसीका भी कल्याण नही करेगा।" इस कथनसे हमे उसकी गहरी अतर्दृष्टिका पता चलता है। किंतु उसकी व्यवहार-कुशलता एव अतर्दृष्टिके अतिरिक्त, उसके चरित्रकी प्रभावोत्पादकताका मुख्य कारण उसका 'भद्रपन' है। वह अपनी प्रकृतिसे कभी किसीको हानि नही पहुँचा सकती। राजलक्ष्मीकी प्रभविष्णुता श्रीकातकी अकर्मण्यताके समक्ष और भी अधिक प्रदीप्त हो उठती है।

लक्ष्मीके चरित्रका विश्लेपण करते समय एक वातके लिए हमे विशेप रूपसे सावधान रहना पडेगा, और वह यह है कि अपनी सारी प्रभविष्णुता-के वावजूद, राजलक्ष्मी श्रीकातके चचल मनके समक्ष सदैव झुकी-सी रहती है। श्रीकात अकर्मण्य है, इसलिए राजलक्ष्मीकी नारी उसे निश्चित रूपसे प्रभावित करती है, किंतु वदलेमे श्रीकातकी आकर्षण-शक्ति भी कुछ कम नही है। राजलक्ष्मी, शायद व्यक्तित्वकी विपर्ययताके कारण, पुरुपके प्यारको अधिक महत्त्व देती हे। 'दु खके तराजूमे इस आत्मोत्सर्गके साथ समतौलता वनाये रखनेके लिए जिस प्रेमकी जरूरत है, उसे यदि पुरुप अपने भीतरसे वाहर न प्रकट कर सके, तो किसी भी स्त्रीके लिए यह संभव नही है कि वह पूरा कर सके।' और इसीलिए नारीके समक्ष पुरुपको प्राथमिकता देती हुई वह आगे कहती है, "पुरुप जाति चिरकालसे ही उच्छृखल रही है, चिरकालसे ही कुछ-कुछ अत्याचारी भी रही है; किंतु, इसीलिए तो स्त्रीके पक्षमे भाग खडे होनेकी युक्ति काम नही दे सकती। स्त्री जातिको सहन

करना ही होगा, नही तो ससार नही चल सकता।' और नारी-जाति के सबधमे उसके यह विचार तभी है, जब वह स्वय पर्याप्त रूपसे सहनशील है। उसके लिए कष्टोका बोझा उठाना ही परम नारीत्व है और 'इसमे कोई हीनताकी बात नही है।' पुरुषके प्रति उसका आत्म-समर्पण इतना अधिक है कि वह श्रीकातको अपना गुरु—अपने सारे कर्मोका नियामक मानती है।

राजलक्ष्मीके चरित्रके माध्यमसे शरत्के कृतित्वपर कई आरोप लगाये गये है, उनमेंसे सर्वप्रमुख यह है कि शरत्ने अपने जीवन-दर्शनमे पतित नारियो एव वेश्याओके प्रति सहानुभूति ही नही प्रकट की, वरन् उनको अवाछनीय उच्च स्थान दिया है, और ऐसा करनेसे कलाकी सामाजिकताको धक्का पहुँचाया है। यह सच है कि शरत्की एक-आध कृतियोको पढ़कर बहुत शीघ्रतामे ऐसी धारणा बना लेना नितात स्वाभाविक है, परतु लेखकके दृष्टिकोणको कुछ अधिक गहराईसे समझनेपर उक्त धारणा भ्रातिमूलक जान पडेगी। 'श्रीकात'की राजलक्ष्मीको ही लीजिए! उसके जीवनका पूर्वार्द्ध प्यारी वेश्याके रूपमे बीता है। किंतु प्रश्न तो यह है कि उसके वेश्या बननेका कारण क्या है? इसके उत्तरमे हमारे सम्मुख उसका बाल-विवाह और उसके दुष्परिणाम आ जाते है। लक्ष्मी एव उसकी बहिनका विवाह एक साथ ही, एक अधेड ब्राह्मण रसोइयेके साथ होनेवाला था, किंतु दहेजके कारण ब्याह आधा ही रह गया, और राजलक्ष्मीके जीवनका कोई भी सहारा अवशिष्ट न रहा। ऐसे समयमे उसे 'कुत्ते-बिल्लियोकी-सी दुर्दशा'का सामना करना पडा। इन सारे दु खोसे घबडाकर अपरिणत वयमे ही उसने वेश्याका रूप स्वीकार कर लिया।

यह तो हुई उसकी चारित्रिक पृष्ठभूमि! किंतु क्या इतना सब होने पर भी उसे पतित कहा जा सकता है? शायद नही! उसका वात्सल्य, उसकी पति-भक्ति, उसकी सहनशीलता किसी भी भारतीय नारीके लिए गौरवका विषय हो सकती है। उसके व्यक्तित्वमे व्यभिचार-बुद्धिका अभाव है। अपने देशके सतीत्वपर उसे गर्व है, पति-परित्याग उसके निकट पापकी सीमा है। और उसकी सहिष्णुता तो सचमुच सराहनीय है, जिसके सहारे

वह श्रीकातके बीहड मनको भी वशमे कर लेती है। अपने इन्ही गुणोंके कारण राजलक्ष्मी उपन्यासकारके लिए ही नही, वरन् पाठकके लिए भी श्रद्धेय है। फिर शरत्की अन्नदा जीजीके सबधमे उच्च धारणाएँ उन्हे असतीत्वका समर्थक नही ठहराती।

राजलक्ष्मीके उपरात 'श्रीकात'मे दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र अन्नदाका है। उपन्यासमे अन्नदाका बहुत कम अकन हुआ है, परतु उसके जीवनका जितना भाग भी चित्रित है, वह भागीरथीके जलके समान निर्मल एव पवित्र है। अन्नदा दीदीके प्रभावके कारण ही श्रीकातके रूपमे लेखक 'स्त्री जातिको कभी तुच्छ रूपमे नही देख सका।' उनको देखनेसे ऐसा जान पडता है, 'मानो राखसे ढँकी हुई आग हो। जैसे युग-युगातरव्यापी कठोर तपस्या समाप्त करके अभी आसनसे ही उठकर आई हो।' वे पारस-मणिके समान उज्ज्वल एव दिव्य है; उनका स्पर्श लोहेको सोना बना देता है। श्रीकातका दृढ विश्वास है कि 'उनका दर्शन पाकर प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति सच्चरित्र साधु हो जाता।' कहना न होगा कि अन्नदाकी इस प्रभविष्णुताका आधार उनका अपूर्व शील-सौजन्य है। उन्हे देखनेसे ही मानो हृदयमे स्नेह एव श्रद्धाका सचार होने लगता है।

अन्नदाके चरित्रका सर्वप्रमुख गुण उनकी अटल पति-भक्ति है। क्रुद्ध श्रीकात कहता है, "उस दिनसे अबतक इस शैतानके बच्चेने (अन्नदाका गँजेडी पति) उन्हे कितनी मार मारी है, इसका कोई हिसाब नही। इतने पर भी जीजी लकडी ढोकर, कडे बेचकर किसी तरह इसे खिलाती-पिलाती है, गाँजेके लिए पैसे देती है—फिर भी यह उनका अपना न हुआ।" अन्नदा ने पतिको अपना धर्मतक समर्पित कर दिया है, उनके मुसलमान हो जानेपर वह स्वयको भी मुसलमान ही मानती है। शाहजीकी मृत्युके उपरात वे अकेले उनका सारा कर्ज चुकाती है, क्योकि पतिका ऋण खुद उनका ऋण है।

अन्नदाका दापत्य-जीवन अपने प्रारभिककालसे लेकर पतिके बिछोह तक प्राय दुखमय ही बीता। उनके पतिने सदैव उनके एव अपने लिए लज्जा एव कलकके उपकरण प्रस्तुत किये, परतु वे किसी प्रकार उन्हे दबाती

चली । यहाँ तक कि एक धनी परिवारकी कन्या होनेपर भी वे अपने पतिके साथ घर छोडकर चली आई और जब कि उनके पति अत्यत निर्धनावस्थामे सँपेरेका काम करके, गहन वनमे कुटिया बनाये हुए रहते थे । यहाँ उनका जीवन कितने दु ख एव कितनी करुणा-जनक अवस्थामे बीता, इसका अदाज लगाना कठिन है । परतु इतनेपर भी उनका धैर्य, उनकी सहनशीलता अटल रही । वे अपने दु खोके लिए स्वय अपने पूर्व-जन्मके पापोको ही उत्तर-दायी ठहराती है । किसी अन्य व्यक्तिके ऊपर दोषारोपण करना उनके स्वभावके विरुद्ध है ।

अन्नदा जीजीके समान 'पतिव्रता स्त्री'का श्रीकातके कोमल मनपर पूरा-पूरा प्रभाव पडा है । उनके शात एव सजल व्यक्तित्वके कारण वह नारीके कलककी बातपर सहज ही विश्वास नही कर सकता । 'सोचता हूँ कि न जानते हुए नारीके कलककी बातपर अविश्वास करके ससारमे ठगा जाना भला है, किंतु विश्वास करके पापका भागी होना अच्छा नही ।' जिस अन्नदाका स्मरण-मात्र इतना पुनीत है, उसके व्यक्तित्वकी शुभ्रता एव पवित्रताका अनुमान आसानीसे लगाया जा सकता है । श्रीकातके शब्दोमे, "जिनके मुखकी याद मनमे लाते ही, न मालूम कैसे, प्रथम यौवनकी उच्छृखल-लता अपने आप सिर झुका लेती है ।" सन्यासिनी ऐसी शात अन्नदा एव धरित्रीके समान सहनशील उसका मन किसी भी व्यक्तिके हृदयमे श्रद्धा एव विश्वास सचारित कर सकते है । श्रीकातके जीवनके तो कण-कणपर अन्नदा-का प्रभाव छा गया है । उसने प्रण किया है कि 'जीवनमे जब कभी किसीके मुँहसे ऐसी कोमल बोली, होठोमे ऐसी मधुर हँसी, ललाटपर ऐसा अलौकिक तेज, आँखोमे ऐसी सजल करुण दृष्टि पाऊँगा, तभी मै आँख उठाकर उसकी ओर देखूगा । जिसे मै अपना मन दूँगा वह भी मानो ऐसी ही सती साध्वी होगी ।' और सचमुच ही श्रीकातके माध्यमसे अन्नदाका अलौकिक तेज मानो राजलक्ष्मीमे प्रतिबिबित होकर उसकी कायाको तप पूत बना देता है, उसके असत्को सत्मे परिवर्तित कर देता है ।

अन्नदाका जीवन पितृ-गृह छोडनेके बाद दु खमय बीता है । अभया उनकी कथा सुनकर कह उठती है, "श्रीकात बाबू ! अन्नदा जीजी, राज-

लक्ष्मी—इन दोनोने जीवनमे दु.खको ही सम्वलरूपसे प्राप्त किया है।"
विरोधाभास-सा जान पडनेपर भी यह सच है कि अन्नदाका व्यक्तित्व दु.ख एव कष्टोपर आधारित है। श्रीकातका विश्वास है कि 'मेरी अन्नदा जीजी अपने दु खका सारा भार चुपचाप सहन करनेके सिवाय और कुछ न कर सकती।' इस सती-सावित्रीके देशमे भगवान्ने सचमुच ही पतिके कारण सहधर्मिणीको अपरिसीम दु ख देकर, सतीके माहात्म्यको उज्ज्वल-से-उज्ज्वल-तर करके ससारको दिखाया है। पर अन्नदा ऐसी सतीके मुँहपर असतीकी काली छाप मारकर उसे हमेशाके लिए ससारसे क्यो निर्वासित कर दिया, इसका रहस्य कोई नही जानता। शायद ऐसी नारियोका सपर्क ग्रहण करने लायक आजका समाज है नही। तभी तो उनका व्यक्तित्व कीचडके देशमें कमलके समान लगता है।

अन्नदा जीजी दुखी होनेपर भी सहनशील और स्वाभिमानिनी है। वे शाहजीका ऋण अपने आभूषणोको वेचकर चुकाती है, और अपने स्नेहमय वधु-द्वय इद्रनाथ और श्रीकातसे कुछ भी आर्थिक सहायता नही लेती, क्योकि उनमे-से कोई भी स्वय जीविकोपार्जन नही करता। 'कुल बाईस पैसे लेकर उस निरुपाय निराश्रय स्त्रीने ससारके सुदुर्गम पथमे अकेले यात्रा कर दी है।' और उन्हे दान देनेका साहस भी किसमे था, उस जलती अग्निशिखा-मे जो कुछ भी दिया जाता, वह जलकर खाक हो जाता। अन्नदा जीजी सतोष एव धैर्यकी जीवित प्रतीक है। उन्होने भगवान्के चरणोमे एकात भाव से अपने आपको समर्पित कर दिया था। शाहजीकी मृत्युपर भी वे विशेष दुखी नही होती, केवल यही कहती है, "जाने दो, अच्छा ही हुआ इद्रनाथ, भगवान्को मै तनिक भी दोष नही देती।" नारीका ऐसा चरित्र जिसे किसी-से कुछ भी शिकायत नही है, किसी भी समाज एव साहित्यमे गौरवकी वस्तु हो सकता है। शरत्की कलाके फलस्वरूप अन्नदा जीजीके अकनमे जो व्यज-नात्मकता आ गई है, इससे उनका चरित्र और भी शुभ्र एव श्रद्धेय हो उठा है।

राजलक्ष्मी एव अन्नदाके पश्चात् 'श्रीकात'मे तीसरा प्रमुख नारी-चरित्र अभयाका है। अभयाके नाममे ही उसके व्यक्तित्वकी पूरी-पूरी

व्यंजना छिपी हुई है। भय उसके मानसिक सस्थानका अग नही है। उसकी शारीरिक रूप-रेखा उसकी प्रभावोत्पादकताको भलीभाँति व्यक्त करती है—'ऊँचा कपाल स्त्रियोकी सौंदर्य-तालिकामे कोई स्थान नही रखता, यह मुझे मालूम है, फिर भी, इस तरुणीके चौडे मस्तकपर बुद्धि और विचार-शक्तिकी एक ऐसी छाप लगी हुई देखी जिसे मैंने कदाचित् ही देखा है।' उसकी बातचीतसे भी यह ज्ञात होता है कि वह 'अत्यत फार-वर्ड' है। वस्तुत उसका चरित्र शरत्‌के नारी-समाजके उस वर्गके अतर्गत आता है, किरणमयी जिसकी अग्रगामिनी है तथा कमल जिसकी सौम्य प्रति-निधि है। 'चरित्रहीन'की किरणमयीका विद्रोह दूधके पहले उफानकी तरह अत्यत तीव्र एवं आवेगपूर्ण था, परतु अभया तक आते-आते यह विद्रोह पर्याप्त स्थिर एव सयमित हो गया है।

अभया, किरणमयीकी भाँति, प्राचीन परपराओका एकदम ही तिरस्कार नही करती। उसमे प्रभविष्णुता है, मनुष्यको वशमे करनेकी अद्‌भुत शक्ति है, पर इतनेपर भी उसका व्यक्तित्व अत्यत शात है। वह अपनी सौतके साथ मजेमे गिरस्ती चला सकती है। स्वामी-द्वारा तिरस्कृत एव परित्यक्त होनेपर भी उसकी पति-भक्ति कम नही हुई है। निष्ठुर पतिको खोजनेके लिए वह अनेक कष्टोको सहन करती हुई, एक दूरके रिश्तेके भाई रोहिणीको साथ लेकर, बगालसे बर्मा आ पहुँची है। श्रीकातसे वह कहती है, "आपके मुँहमे फूल-चदन पडे, श्रीकात बाबू, मैं ओर कुछ नही चाहती। वे जीवित है, बस इतना ही मेरे लिए काफी है।" उसकी प्रभविष्णुता इतनी अधिक है कि उसके निर्लज्ज पतिको भी स्वीकार करना पडता है कि 'ऐसी सती लक्ष्मी क्या कही और है?'

परतु उक्त विवेचनासे यह नही समझना चाहिए कि अभयाकी पतिभक्ति परपरानुगत है। 'शेष प्रश्न'की कमलका स्मरण दिलाती हुई वह कहती है, एक दिन मेरे द्वारा जो विवाहके मत्र बोल लिये गये थे उन्हीको बुलवा लिया जाना ही क्या मेरे जीवनका एकमात्र सत्य है, बाकी सब बिलकुल मिथ्या ही है? इतना बडा अन्याय, इतना बडा निष्ठुर अत्याचार, मेरे पक्ष

मे कुछ भी, कुछ भी नही है ?" वह अपनी विचार-शैलीमे काफी सुलझी हुई है। जव वह देखती है कि उसका पति किसी भी प्रकार उसके साथ रहनेको तैयार नही तो वह स्वय ही उसका त्याग कर देती है, और रोहिणी के साथ अपना नया घर वसा लेती है। इस प्रकार उसका चरित्र आदर्श अथवा यथार्थ न होकर, नितात स्वाभाविक है। सव औसत मनुष्योकी भाँति उसके व्यक्तित्वमे भी भलाई और वुराईके परमाणु है, जिनमे कभी एक पक्ष विजयी होता है, और कभी दूसरा। हाँ, अन्नदा जीजी जैसे आदर्श-नारी-चरित्रोके सम्मुख उसका चित्रण यथार्थवादी अधिक है। पर व्यक्तित्व की ऊँची-नीची भूमियोके वावजूद उसका मन, राजलक्ष्मीके समान हो, सचमुच भद्र है।' इसीलिए उसकी आकर्षण शक्तिका अनुभव करके श्रीकातको कहना पडता है, "यह कौन है जो मुझे इस तरह धीरे-धीरे जोर डालकर अपने जीवनके साथ जकड रही हे।"

उपन्यासकारके अधिकाश प्रतिनिधि नारी-पात्रोकी परपरामे अभया अत्यत सहनशील एवं कर्मण्य हे। नितात कष्टमय परिस्थितियोमे भी वह हँस सकती है, यद्यपि उसकी हँसीमे उसके भयानक दु खकी छाया दिखाई देती है। परतु उसकी सहनशीलताकी एक सीमा है, क्योकि अपनी प्रकृतिमे वह कर्मण्य है। वह आरामसे वैठना नही जानती, उसका चरित्र स्थिर (Static) न होकर गत्यात्मक (Dynamic) है। इसीलिए प्रचलित परपराओके प्रति वह विद्रोह करती है। 'चिरकालसे ही स्त्रियोको ऐसे दुर्भाग्यका भोग करना पड रहा है और इस दु खको सहन करते रहनेमे ही उनके जीवनकी चरम सफलता है,' यह सोचकर उसकी अपनी विपत्तियो एव निराशाके वीच वह चुपचाप नही रह सकती। उसका उद्योग ही उसे दूर देश तक लाया है, और उसका उद्योग ही उसके आनेवाले जीवनको भी सफलतापूर्वक ग्रथित करता है। प्रसिद्ध समीक्षक श्री इला-चद्रजोशीका यह मत कि 'शरत्की नारियोका विद्रोह समुद्रके तूफानके समान है, जो अपनी मर्यादाको लाघित नही कर सकता, अभयाके इस सयमित असतोष एव विद्रोहके सवधमे कदाचित् सर्वाधिक सत्य है।

अभयाकी व्यवहार-कुशलता कम ध्यान देने योग्य नही है। श्रीकान्तके निकट आनेपर भी वर्माकी यात्राके समय उसके व्यवहारमे ऐसा कुछ था जो प्रत्येक क्षण याद दिला दिया करता था कि 'हमलोग केवल यात्री है जो एक जगह ठहर गये है—किसीके साथ किसीका सचमुचका कोई सबध नही है, दो दिन वाद शायद जीवन-भर फिर कही किसीकी किसीसे मुलाकात ही न हो।' इस प्रकार, कुछ आवश्यक प्राचीन सस्कारोके साथ वह 'फारवर्ड' है—आधुनिका है। दूसरेके मनोभावोको पहिचाननेमे वह प्राय भूल नही करती। श्रीकान्तके मनकी चिन्ताको वह भलीभाँति, अनायास ही समझ लेती है।

किरणमयीके वर्गकी नारी होनेके कारण अभयाकी विचार-शक्ति पर्याप्त रूपसे परिपक्व है। 'अभया केवल अपने मतको अच्छा प्रमाणित करनेके लिए ही वाग्वितडा नही करती—वह अपने कार्यको भी बलपूर्वक विजयी करनेके लिए वाकायदा युद्ध करती है। उसका मत कुछ हो और काम कुछ हो, ऐसा नही है।' नामके महत्त्वपर प्रकाश डालती हुई वह कहती है, "नाम ही तो सब कुछ है श्रीकान्त वावू, नामको छोडकर दुनियामे और है ही क्या ? गलत नामोके भीतरसे मनुष्यकी वुद्धिकी विचारशीलता और ज्ञानकी धारा कितनी वडी भूलोके बीच वहाई जा सकती है, सो क्या आप नही जानते ? इसी नामके भुलावेके कारण ही तो सब देश और सब काल विधवाके आचरणको सबसे श्रेष्ठ मानते आ रहे है। यह निरर्थक त्यागकी निष्फल महिमा है श्रीकान्त बाबू, बिलकुल ही व्यर्थ, बिलकुल ही गलत।" अभयाके इन तर्कोको सुनकर श्रीकान्तको कहना पडता है, "दर-असल उसे वहसमे हरा देना एक तरहसे असम्भव ही है।" अभयाको अपने मतामतपर पूरा विश्वास भी है। वर्मा जाते समय वह श्रीकान्तसे कहती है—"यदि कही अटको तो चिट्ठी लिखकर मेरी राय जरूर ले लोगे।"

अभयाकी पारिवारिक दशा अत्यन्त दयनीय है, उसके बाप है नही, माँ भी मर गई है, और इस सबके ऊपर पतिका निष्ठर व्यवहार एव लाछना उसके लिए असह्य हो गई है। अन्तमे, पतिका घर छोडकर वह

स्वय ही नही चली जाती, वरन् वह वहाँसे तिरस्कृत करके निकाली जाती है। ऐसी दशामे उसका आत्म-सम्मान अनेक सामाजिक विधानोके रहते हुए भी उभर पडता है, और वह श्रीकान्तसे कहती है—"वे अपनी वर्मी स्त्रीको लेकर सुखसे रहे, मुझे इसकी कोई शिकायत नही, किन्तु मै आपसे यह बात जानना चाहती हूँ कि पति जब एकमात्र बेतके जोरसे स्त्रीके समस्त अधिकारोको छीन लेता हे और उसे अँधेरी रातमे अकेली घरके बाहर निकाल देता है, तब इसके बाद भी विवाहके वैदिक मन्त्रोके ज़ोरसे उसपर पत्नीके कर्त्तव्योकी जिम्मेदारी बनी रहती है या नही ?" पतिका घर छोड-कर आनेके बाद अभयाका दुखित मन और भी चिडचिडा हो जाता है। उसका स्नेह—उसकी ममता केवल दो ही व्यक्तियोके लिए अवशिष्ट रह जाती है—एक तो रोहिणी और दूसरे श्रीकान्त। रोहिणीके साथ वह गार्ह-स्थिक जीवनका समारम्भ कर देती है, और श्रीकान्त जैसे मित्रकी वह प्लेगकी भयानक बीमारीमे सेवा-शुश्रूषा करनेसे नही हटती। वस्तुत. अभयाकी नारीका अपार स्नेह उसके दुर्भाग्यके तापके कारण सूख गया है। माँ बनने-की लालसा उसके मनमे विद्यमान है; अपने भावी पुत्रका पालन, वह सारा कलक और सारा अपयश सिरपर लेकर भी, करनेको तैयार है। रोहिणी-का प्रेम तो उसके जीवनका सर्वस्व हो गया हे। ऐसे मनुष्यके सारे जीवनको लँगडा बनाकर वह 'सती'का ख़िताब नही खरीदना चाहती, यह वह स्वय स्वीकार करती है।

'श्रीकान्त'के नारी-समाजके तीनो प्रमुख व्यक्तित्व—राजलक्ष्मी, अन्नदा और अभया—एक-दूसरेके लिए अपने-अपने हृदयमे पर्याप्त स्थान रखते है। अभया अन्नदा जीजीकी भक्त हे, और राजलक्ष्मी अभयाके सम्मुख नत-मस्तक है, यद्यपि इनमे-से किसीने किसीको देखा नही है। पर श्रीकान्त अभया और अन्नदाके चरित्रकी तुलनामे अन्नदाको ही ऊँचा स्थान देता है—'यह भी ठीक है कि उसके (अभयाके) विचारोकी स्वाधीनता, उसके आच-रणकी निर्भीक सावधानता, उसका परस्परका सुन्दर और असाधारण स्नेह—यह सब मेरी बुद्धिको उसी ओर निरन्तर आकर्षित करते थे, किन्तु फिर

भी, मेरे जीवन-भरके सस्कार किसी तरह भी उस ओर मुझे पैर नही बढाने देते थे। मनमे केवल यही आता था कि मेरी अन्नदा जीजी यह कार्य न करती।' अन्नदाकी अपार कष्ट-सहिष्णुताके सम्मुख अभयाका यह जीवन-निश्चय ही अधिक महिमामय नही है—कम-से-कम भारतीय दृष्टिकोणसे—कि 'सुख प्राप्त करनेके लिए दुख स्वीकार करना चाहिए, यह बात सत्य है किन्तु इसीलिए, यह स्वत सिद्ध नही हो जाता कि जिस तरह भी हो, बहुत-सा दु ख भोग लेनेसे ही सुख हमारे कन्धोपर आ बैठेगा। यद्यपि यह ठीक है कि 'अभयाके लिए कुछ भी कठिन नही है। मृत्यु ! वह भी उसके आगे छोटी ही है', तथापि उसका मन तपस्याके भारतीय आदर्शोसे युक्त नही—वस्तुत अभयाके व्यक्तित्व, विचार-धारा एव आचरणमे प्राच्य एव प्रतीच्यकी प्रकृतिका अद्भुत मिश्रण है, पर उसके 'मनमे (किरणमयी एव कमलके समान ही) जलेबी-जैसा पेच है।'

'श्रीकान्त'मे चौथा प्रमुख नारी-चरित्र है कमललता वैष्णवीका। उम्र उसकी तीससे ज्यादा नही होगी—श्यामवर्ण, इकहरा बदन, हाथमे कुछ चूडियाँ है पीतलकी—सोनेकी भी हो सकती है। बाल छोटे-छोटे नही है, गिरह देकर पीठपर झूल रहे है। गलेमे तुलसीकी माला और हाथकी थैलीके भीतर भी तुलसीकी जपमाला है। छापे-आपेका ज्यादा आडम्बर नही है। सब व्यवस्थाओमे उसका कर्तृत्व है सबके ऊपर, किन्तु स्नेहसे, सौजन्यसे और सर्वोपरि सविनय कर्मकुशलतासे यह कर्तृत्व इतनी सहज शृखलामे प्रवहमान है कि कही भी ईर्ष्या-विद्वेषका जरा-सा भी मैल नही जमने पाता। उपन्यासकारके इन वर्णनोसे कमललताकी वैष्णवी वेश-भूषा और भाव-भगिमा पाठकके मानस-चक्षुओके सम्मुख नितान्त साकार हो जाती है। उसका शान्त एव सौम्य व्यक्तित्व जीवनके तूफानोसे भरा हुआ है, इस बातको आसानीसे नही जाना जा सकता। उसका पूर्व-जीवन समाजकी दृष्टिसे कलकित है। वैष्णवी होनेसे पहले उसका नाम था उषा। अपने होनेवाले पति मन्मथकी वचनाके फलस्वरूप वह अविवाहितावस्थामे ही माँ बन गई। अपने नवजात शिशुको गगामे बहाकर उसने एक पाप और

अर्जित किया। अन्तत. सब ओरसे विमुख होकर वह वैष्णवियोके मठमे आकर सम्मिलित हो गई।

कमललतामे प्रेम करनेकी अपूर्व शक्ति है, किन्तु उसके हृदयकी रागात्मिका वृत्ति पूर्णत व्यक्त नही हो पाती। अदर-ही-अदर घुटते रहनेके कारण उसका प्रेम अदम्य हो गया है। इस बातक उल्लेख करती हुई वह श्रीकान्तसे कहती है, "तुम लोगोके और हमलोगोके प्यारकी प्रकृति ही भिन्न है। तुमलोग चाहते हो विस्तार और हम चाहती है गम्भीरता, तुम लोग चाहते हो उल्लास और हम चाहती है शान्ति। जानते हो गुसाँई कि प्रेमके नशेमे हम भीतर-ही-भीतर कितना डरती है। उसके उन्मादसे हमारे हृदय की धडकन नही रुकती।" यद्यपि आश्रमके वातावरणके फलस्वरूप उसकी वासनाका उन्नयन भक्तिमे हो चला है, तथापि उसका अतृप्त प्रेम अपने लिए उपयुक्त आश्रमकी खोजमे प्रवृत्त है। उसका स्नेह सार्वजनीन है, 'किसीके चले जानेपर वह शोकमे अधमरी हो जाती है।' पर इससे उसके उमडते हुए रागको अभिव्यक्ति नही मिलती। पूर्ण आस्तिक होते हुए एव भगवद्भक्तिके वातावरणमे रहते हुए भी उसका आत्म-समर्पण पूरा नही हो पाता, जिसके लिए सम्पूर्ण मानवता साधारणत', और स्त्री-जाति विशपत, सदैव लालायित रहती है।

उषाके रूपमे कमललताकी रागात्मक वृत्तियाँ सबसे पहले मन्मथपर केन्द्रीभूत हुई थी। श्रीकान्तको वह बताती है, "फिर भी, एक दिन उससे ज्यादा मेरा अपना कोई नही था—ससारमे इतना प्यार किसीने भी किसीको नही किया होगा।" पर तन-मन सौंप देनेके उपरान्त भी उसे अपने प्रियसे प्रतिदान-स्वरूप वचना मिली। इसके बाद, मठमे आनेपर उसका झुकाव गौहरकी ओर हुआ। किन्तु इस बार उसके और उसके प्रेमके बीच धर्मकी ऊँची, अलघ्य दीवार थी। निदान, इस बार भी उसका प्यार अभिव्यक्त न हो सका। तभी उसके आश्रममे श्रीकान्तका आगमन हुआ। अब उसने सोच लिया था कि वह श्रीकान्तको अपने पाससे न जाने देगी। किन्तु वह 'विवाहित' श्रीकान्तका भी सामीप्य प्राप्त न कर सकी। श्रीकान्तके चले

जाने पर गौहर बीमार पडा और उसकी मृत्यु हो गई। उसकी रुग्णावस्थाके समय कमललताने अन्तिम तीन दिनोमे न तो खाना खाया और न सोया, गौहरका बिछौना छोडकर वह एक बार भी नही उठी। कमललताके इस व्यवहारके कारण उसके मठवालोने उसका तिरस्कार किया। इस लाछना से ऊबकर वह कही बाहर जानेकी इच्छा करने लगी। इसी बीच मित्रकी बीमारीका समाचार देरसे पाकर, श्रीकान्त भी आये। कमललता उन्होके साथ गॉव छोडकर चली आई, शेष जीवनके दिन वृन्दाबनमे बितानेके लिए। वृन्दावन जानेको तैयार श्रीकान्तसे बिदा लेते समय वह कहती है, "जानती हूँ कि तुम्हारे कितने आदरकी हूँ। आज विश्वासपूर्वक उनके पाद-पद्मोमे मुझे सौपकर तुम निश्चिन्त होओ, निर्भय होओ। मेरे लिए सोच-सोचकर अब तुम अपना मन खराब मत करना गुसॉई, तुम्हारे निकट मेरी यही प्रार्थना है।"

यह है बहुत सक्षेपमे कमललताकी प्रेम-कथा। उसके निरुपाय जीवनमे मन्मथ, गौहर तथा श्रीकान्तका प्रवेश हुआ, किन्तु किसीसे भी उसे अपने प्रेमका प्रतिदान न मिल सका। अन्तत भारी मन और एकाकी जीवन लिये हुए वह वृन्दावन-विहारीकी शरणमे चली गई, जिससे कि निराश्रय ज़िदगीके अतिम दिन त्याग एव शान्तिके वातावरणमे बिताये जा सके।

कमललताका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभविष्णु है। उसके रूप-रग तथा व्यवहारमे आकर्षण और जादू भरा हुआ है। इस प्रभविष्णुताके मूलमे शायद उसका असहाय प्रेम ही है, जो वर्षोसे उसके हृदयके किसी कोनेमे सचित पडा है। इसीलिए वैष्णव-मठके वातावरणमे भी उसका प्रभाव इतना मादक है। गौहरके नौकर नवीनके अनुसार इस वैष्णवीका जाल तोडकर अचानक बाहर नही निकल जाया जा सकता। श्रीकान्त सोचता है यह असभव नही है और बहुत असगत भी नही है। नारी-हृदयकी सारी अतृप्ति उसकी रूप-रेखा एव व्यवहारमे फूटकर निकलना चाहती है, किंतु समुचित निकासके अभावमे वह उसके व्यक्तित्वमे उभरी-उभरी-सी है, जिसके फलस्वरूप वह इतनी मोहक, आकर्षक एव प्रभावोत्पादक बन गई है।

'श्रीकान्त'के प्रमुख नारी-पात्रोके व्यक्तित्वकी कुछ मीमासा करनेके उपरान्त अव हम उन चरित्रोको देखेगे जिनका उपन्यासमे स्थानीय महत्त्व है। ऐसे पात्र तीन है—सुनन्दा, टगर और पूटू। सुनन्दाके चरित्रका विश्लेपण हम सर्वप्रथम करेगे। उसके व्यक्तित्वका मूल तत्त्व है न्यायप्रियता। अन्यायके समक्ष वह 'टूट जायगी पर नवेगी नही।' जिस दिनसे उसे यह ज्ञात होता है कि उसके जेठ किसी दूसरेकी सपत्तिका उपभोग कर रहे है, उसी दिन वह घर छोडकर पति-पुत्रके साथ वाहर चली जाती है। बडी दृढताके साथ वह अपनी जिठानीसे कह देती है, "नही जीजी, वह जायदाद अपनी नही है। उसे अगर तुम न लौटा दोगी तो मै अव रसोईमे घुसूँगी ही नही। उस नावालिग लडकेके मुँहका कौर छीनकर अपने पति-पुत्रको भी न खिला सकूँगी, और ठाकुरजीका भोग भी मुझसे न लगाया जायगा।" अन्तत वह घोर निर्धनतामे रहना पसन्द करती है, पर अन्यायके प्रतिवादमे वह अपना सव-कुछ छोड देती है—जीर्ण वस्त्रकी तरह। दृढताके साथ-साथ उसके व्यक्तित्वमे सरलता एव स्पष्टताका वहुत वडा अश है। इसके अतिरिक्त सुनन्दामे व्यावहारिक तथा मानसिक सयम सहज हो गया है, जो उसकी अध्ययनशीलताके साथ उसके प्रभावको और भी अधिक वढाता है। वस्तुत उसके शास्त्र-ज्ञानने ही उसे ऐसा कठोर, पत्थरके सदृश वना दिया है, और इसीलिए राजलक्ष्मीकी दृष्टिमे सुनन्दाकी यह पोथीकी विद्या अधिक श्रद्धेय नही है। पर अपनी सिधाई तथा नम्रताके कारण वह सवको प्रभावित करती है। सुनन्दा अपने पतिके विश्वासकी अमानतदार है, तथा श्रीकान्त उसे 'अजीब औरत' मानता हुआ, स्पष्ट निर्णय देता है, "जिन थोडे से नारी-चरित्रोने मेरे मनपर गहरी रेखा अकित की है, उनमे-से एक है कुशारी महाशयके छोटे भाईकी विद्रोहिनी वहू सुनन्दा।"

टगरका चरित्र स्थानीय महत्त्व रखता हुआ भी उपन्यासकी कथाको विशेष प्रभावित नही करता। श्रीकान्तकी वर्मा-यात्राके समय वह अपनी कलहप्रियतासे पाठकोके निकट शिष्ट हास्यका आलम्वन अवश्य वन जाती है। वर्माके दृश्योमे भी यत्र-तत्र उसकी अवतारणा की गई है।

पूर्टका चरित्र श्रीकान्तके जीवनमे और 'श्रीकान्त'के कथा-भागमे अवश्य कुछ महत्त्व रखता है। 'लडकी अच्छी है। साधारण भद्र गृहस्थ घरानेकी, रग गोरा तो नही था लेकिन देखनेमे सुन्दर थी।' उसका आन्तरिक व्यक्तित्व स्पष्ट तथा सरल जान पडता है। उसका विवाह श्रीकातसे तै होने जा रहा है, पर इस संबन्धमे बाबाजीकी सारी चालबाज़ी वह श्रीकान्तको स्वय बता देती है। वह हृदयकी अत्यत निर्मल है। जब श्रीकान्त अपने रुपयेकी मददसे उसका विवाह अन्यत्र उसके प्रिय शशधरसे करानेका वचन देता है, और कहता है, "अच्छा, वहाँ तुम्हारी शादी हो जानेपर अगर वे लोग तुमसे प्रेम न करे ?" तो बडे विश्वास एव दृढताके साथ वह उत्तर देती है, "मुझसे ? प्रेम क्यो नही करेगे ? मै रसोई बनाना, सिलाई करना और गृहस्थीके सारे काम जानती हूँ। मै अकेले ही उनका सारा काम कर दूँगी।"

पार्श्व-चरित्रोमे अनुशासनप्रिय तथा स्नेहमय श्रीकान्तकी बुआजी, अस्थिर प्रकृतिकी मालती, सरल एव निरीह बर्मी स्त्री, क्लैसिकल प्रवृत्तियो-वाली कुशारी पत्नी, निर्धन, चिडचिडी परन्तु सहृदय चक्रवर्त्ती-गृहिणी, तथा कमललताकी भोली-भाली सखी पद्मा विशेष उल्लेखनीय है।

आत्मकथात्मक उपन्यास होनेके कारण 'श्रीकान्त'की विचारात्मक उक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। 'श्रीकान्त'के अध्ययनसे शरत्की नारी-सबन्धी निम्नलिखित धारणाएँ एकत्र की जा सकती है—

(१) स्त्री-जातिको तुच्छ रूपमे नही देखा जा सकता। (१ ४८)

(२) नारीके कलकपर अविश्वास करके ठगा जाना अच्छा, पर विश्वास करके पापका भागी बनना अच्छा नही। (उपन्यासके नायककी यह युक्ति नही, सस्कार है।) (१ ७३)

(३) स्त्री-जातिका मन भी कैसा विराट् अचिन्तनीय व्यापार है। (१ १०२)

(४) कितनी बुरी है यह स्त्रियोकी जाति, एक दफा भी किसीको प्यार किया कि मरी। (१ १०१)

(५) नारीकी चरम सार्थकता मातृत्वमे है, यह बात शायद खूब गला फाडकर प्रचारित की जा सकती है। (२ १३०)

(६) कन्या-दान बगाली गृहस्थका भार है जो उन्हे सोने नही देता। (१ ७८)

(७) हृदयका विनिमय नर-नारीकी अत्यन्त साधारण घटना है—ससारमे नित्य ही घटती रहती है—विराम नही, विशेपत्व नही। फिर भी यह दान और प्रतिग्रह ही व्यक्ति-विशेपके जीवनका अवलम्बन कर ऐसे विचित्र विस्मय और सौन्दर्यसे उद्भासित हो उठता है कि उसकी महिमा युगयुगान्त तक मनुष्यके हृदयको अभिपिक्त करती रहकर भी समाप्त नही होना चाहती। यही वह अक्षय सपत्ति है जो मनुष्यको वृहत् करती है, शक्तिशाली वनाती है और अकल्पित कल्याणद्वारा नया वना देती है। (४ १५८)

(८) वगालकी कन्या अत्याचारकी चिर-अभ्यस्त है, और कही तो शायद कुत्ते-विल्लियोकी भी इतनी दुर्गति करनेमे मनुष्यका हृदय काँपता होगा। (४ १६०)

(९) (नारीके) स्नेहकी गहराई समयकी स्वल्पतासे नही नापी जा सकती। (३ ३९)

(१०) अजीब देश हे यह वगाल! इसमे राह चलते माँ-वहिने मिल जाती हे, किसमे सामर्थ्य है कि इनसे वचकर निकल जाय? (३ ३९)

(११) तुम्हारे देशकी स्त्रियाँ अपने आपको छोटा समझनेके कारण छोटी नही हो गई है। सच यह है कि तुम्ही लोगोने उन्हे छोटा समझकर छोटा वना दिया है, और तुम खुद भी छोटे हो गये हो। (२.१३४)

(१२) सर्वाङ्गीण सती-धर्मकी एक अपूर्वता—दुःसह दुःख और सर्वथा अन्यायके वीचमे भी उसकी आकाश-भेदी विराट् महिमा, मेरी अन्नदा जीजीकी स्मृतिके साथ चिरकालके लिए मनकी गहराईमे खुदकर अकित हो गई है। (२ ७७)

(१३) आज मै आपसे यह कहे जा सकता हूँ कि मैने अपने जीवनमे जो थोड़े-से महान् नारी-चरित्र देखे है उन सवने दुःखके भीतरसे गुजरकर ही मेरे मनमे ऊँचा स्थान पाया है। (२ ९१)

देवदास

○

'देवदास'की गणना शरत्के दु खान्त उपन्यासोकी प्रथम श्रेणीमे होती है। अपने विशिष्ट क्षेत्रमे यह कृति एक साहित्यिक क्लैसिक बन गई है। कथा ओर कलाकी सरलताने 'देवदास'को कितना मार्मिक, कितना हृदय-द्रावक बना दिया है, यह बतानेकी आवश्यकता नही। उपन्यासके पटोद्घाटन और पटाक्षेपकी योजनामे शरत्की टेकनीक अपने उच्चतम शिखरपर जा पहुँचती है। 'देवदास'की कथा अत्यन्त सक्षिप्त और सादी है। सेक्स सबधी सामाजिक विपमता उसकी आधार-भूमि है, और उसकी पृष्ठभूमिका निर्माण स्थानीय विशेपताओसे युक्त, बगालके ग्रामीण वातावरणमे हुआ है। आकारके अनुसार ही उपन्यासमे पात्रोकी सख्या भी वहुत कम है।

'देवदास'की मूल कथा इस प्रकार है--तालसोनापुर गॉवमे देवदास—देव भैया और पार्वतीका बाल्यकाल साथ-साथ व्यतीत होता है। अपरिणत वयमे दोनो ही अभिन्न साथी है। कुछ बडा होनेपर शरारती देवदासको पढनेके लिए कलकत्ते भेज दिया जाता है ओर पारो गॉवमे अकेली रह जाती है। पारोके मॉ-बाप उसके विवाहके लिए चिन्तित ह। पारोकी दादी चाहती है कि पारोका विवाह देवदासके साथ हो जाय, पर देवदासकी मॉ इस प्रस्तावको अस्वीकृत कर देती है। अन्तत पारोका विवाह हाथीपोताके एक अधेड जमीदारसे होता है, जिसकी पहली पत्नी मर चुकी है। इस विवाहसे न पारो सुखी है ओर न देवदास ही, परन्तु परिस्थितियोके सामने दोनोको झुकना पडता हे। अविवाहित देवदास कलकत्तेमे रहता है ओर अपनी मानसिक वेदनाको भुलानेके लिए मदिराका सेवन प्रारम्भ कर

देता है। वहाँ उसकी जान-पहचान चन्द्रमुखी नामक एक वेश्यासे होती है, जो उसे हृदयसे चाहने लग जाती है। अनियमित जीवन व्यतीत करनेके कारण देवदासका स्वास्थ्य बहुत गिर जाता है, और एक दिन सव ओरसे निराश होकर, अपने नौकर धर्मदासके साथ वह अपने घरके लिए चल देता है। रास्तेमे पार्वतीकी ससुरालका स्टेशन मिलता है, और वह धर्मदासको गाडीमे सोता छोडकर, वही उतर पडता है। अत्यन्त रुग्ण एव दयनीय अवस्थामे वह एक वैलगाडी लेकर हाथीपोताकी ओर रवाना होता है। ४८ घटो तक अपार कष्ट सहकर वह पार्वतीके घर पहुँचता है। रात होनेके कारण वह घरके वाहर ही पडा रहता है, सवेरा होते-होते उसके प्राण निकल जाते हैं। अपरिचित शवको चाडाल लोग श्मशान ले जाकर जलाते हैं; जव पार्वतीको अपने सौतेले पुत्र-द्वारा यह समाचार ज्ञात होता है तो वह सव कुछ समझ जाती है, और देवदासके जलते हुए शवकी ओर दौडती है, पर कुछ दूरतक चलकर मूर्च्छित हो जाती है, और इस प्रकार नियति-चक्रका एक घेरा समाप्त होता है।

'देवदास'के नारी-चरित्रोका अकन वडी सादगीसे किया गया है। रेखा-चित्रोकी भाँति ही इन पात्रोमे व्यञ्जनात्मकता अधिक है, किसी भी प्रकारकी जटिलताका अभाव है। चरित्राकनकी इस सिधाई एव सरलताके कारण उपन्यासके पात्रोमे आकर्षण एव प्रभावकी मात्रा वहुत वढ गई है, और कथानक अत्यन्त शक्तिशाली वन गया है। 'देवदास'की नारी रोमाससे ओत-प्रोत, स्नेह तथा ममतामे भीगी हुई है। उसकी मानसिक वृत्तियाँ जटिल नही है; अपनी सज्जामे वह एकदम निरीह, भोली तथा सरल है। स्त्रीके मनकी अँधेरी गहराइयोसे वह अपरिचित है, अवचेतनकी रहस्यात्मकतासे वह अछूती है। अत 'देवदास'की नारीको हम पारदर्शक कहना ही अधिक उचित समझेगे।

'देवदास'की नायिका पार्वती है, और देवदासके व्यक्तित्वकी नायिका पारो है। पारोका चरित्र माधवी, ललिता तथा ज्ञानदाकी परम्परामे है—

निर्मल, विकारहीन और शान्त। शरत्की नायिकाओके इस वर्गमे वय-सधिका बडा स्वाभाविक चित्रण है। वे बाल्यावस्थाकी सरलता और परिणत वयकी दृढताके सयोगसे निर्मित है। उनके व्यक्तित्वमे कोमलता और कठोरता साथ-साथ चलती है। शैशव और यौवनकी इस सम्मिलित पृष्ठ-भूमि पर शरत्के इन नारी-चरित्रोका अकन अत्यन्त सजल एव स्निग्ध है। अपनी प्रकृतिके अनुसार, वय तथा विचारोके सक्रान्ति कालमे इन नायिकाओ-के जीवनपर किसी ट्रैजडीकी छाया ही अधिक दिखाई देती है।

पारो और देव भैया बचपनसे ही अभिन्न है। वस्तुत उनकी वैयक्तिक सवेदना एक-दूसरेके साथ इतनी अधिक घुल-मिल गई है कि एकके चरित्रका विश्लेषण करते समय हम दूसरेको अलग नही रख सकते। बाल्यावस्थामे पारो देवदासके प्रत्येक सुखका बहुत अधिक ध्यान रखती है। उसे पिटनेसे बचाती है, सकटकालमे स्वय-निर्वासनके समय उसके भोजनका प्रबन्ध करती है, और इतनेपर भी अधिक चपल न होनेके कारण वह देव भैयासे हरदम डरती रहती है। लडकपनके इस भय और आदरका अर्घ्य लिये हुए पार्वती जीवनपर्यन्त देवदासके सम्मुख विनत रही, इसका पूरा प्रमाण हमे उप-न्यासकी कथासे मिलता है।

देवदासको कलकत्ते भेजनेका जब उपक्रम होता है तो पार्वती कहती है, "देखो, देव भैया, जाना नही।" पर पारोकी अविरल अश्रुधारा और उसका चीखना-चिल्लाना देवदासको जानेसे न रोक सका। देव भैयाके चले जानेपर यदा-कदा उसके जो पत्र आते है, वही उसके सूने बचपनके साथी है। वह अकेली इधर-उधर घूमती है, पर अन्य किसी बाल-सहचरको नही ढूँढती। गॉवके क्रीडा-स्थलो अथवा स्कूल पहुँचनेपर उसके हृदयमे देव भैयाकी स्मृति फिर जाग उठती है, और उसके छोटे-छोटे कपोलोपर बडे-बडे ऑसू गिरने लगते है। इस तरह बाल्यावस्थासे ही देवदास पार्वतीकी सुख-शान्तिका अमानतदार है।

उत्तरोत्तर बढती हुई वयसका भार पार्वतीमे लज्जा भर देता है, और बहुत दिनो बाद देवदासके गॉव लौटनेपर पारो उसकेसामने अधिकप्रगलभताके

साथ वातचीत करनेमे सकोचका अनुभव करती है, परन्तु लज्जाका भाव मनमे रखते हुए भी जव पारोको यह ज्ञात होता है कि देवदासकी माँ उसे वहू वनानेके लिए तैयार नही है तो वह रातके समय ही देवदासके पास पहुँचती है। यहाँ उसकी प्रेमकी दृढता सचमुच दर्शनीय है। लडकपनसे ही उसकी यह धारणा थी कि 'देव भैयापर मेरा कुछ अधिकार है।' अपनी सखी मनोरमासे वह स्पष्ट कहती है, "मै हँसी नही करती .मै यही जानती हूं कि मेरे स्वामीका नाम देवदास है।" और अपने अधिकारके दावेके लिए वह रात ही मे देवदासके घर जाती हे। उसे भूतोसे डर नही लगता, अँधेरेमे उसका जी नही घवराता, नितान्त निर्जन एव निस्तब्ध रास्तेमे वह भयातुर नही होती। जव देवदास उससे पूछता है, "इस तरह यहाँ आनेमे क्या तुम्हे तनिक भी लज्जा नही हुई ?" तो वह सिर हिलाकर कह देती है, "कुछ भी नही।" उसके प्रेमकी पवित्रता और सच्चाई उसके हृदयको आवेगमय वना देती है, इसीलिए उसे अपने मार्गमे किसी भी प्रकारकी सामाजिक वाधा अथवा कलकका भान नही होता।

पार्वतीके चरित्रमे एक ओर जहाँ सरलता और सिधाई है, वही दूसरी ओर दृढता एव सहनशीलता भी है। 'पार्वती सदासे आत्माभिमानिनी थी' और इसीलिए वह प्राण-पणसे इस वातकी चेष्टा करती थी कि मै जो इतना कष्ट सहती हूँ, सो इसका किसीको तिल भर भी पता न चलने पावे। वह देवदासके सम्मुख झुकती अवश्य हे, परन्तु उसके व्यक्तित्वके समक्ष अपनी सत्ता एकदम नष्ट नही कर देती। पारोकी प्रार्थना एक वार अस्वीकृत करके जव फिर देवदास स्वय अपनी ओरसे उसके साथ विवाहका प्रस्ताव रखता है तो वह अपनी असहमति तथा उदासीनता प्रकट करती हुई कहती है, "तुम्हारे माता-पिता हैं, और मेरे नही हे ? उनके राजी होने या न होनेकी जरूरत नही है ? जवसे होश सँभाला है, तभीसे तुमसे डरती आ रही हूँ। सो क्या इसीलिए तुम मुझे भय दिखलानेके लिये आये हो ? तुम अहकार कर सकते हो, म नही कर सकती !" उसकी भावनाओका आवेग इतना अधिक वढ जाता है कि वह विषकी तरह क्रूर हँसी हँसकर

देवदासको एक चुनौती देती है, "जाओ आखिरी वक्त मेरे नामपर एक कलककी घोषणा कर दो।"

यदि इस स्थानपर पार्वती देवदासके प्रस्तावको स्वीकृत कर लेती तो उपन्यासके कथानककी दिशा ही बदल जाती, परन्तु स्वाभिमानिनी पारो अपनी तरुणावस्थाकी पहली चोटको भूल नही पाती, और इसीलिए वह अपने सबसे निकट व्यक्ति देवदासका भी तिरस्कार कर देती है। यहाँ पार्वतीका चरित्र आदर्श अथवा यथार्थ न होकर नितान्त स्वाभाविक एव प्राकृतिक है। उसके हृदयकी दृढता तो ऐसी है कि एक वृद्ध विधुरके साथ विवाहके समय भी उसके होठोके कोनेपर हँसीकी एक रेखा रहती है। नियतिसे वह किसी भी प्रकार दबना नही जानती, इसीलिए अपने बडे-से-बडे दुर्भाग्यमे वह रोती नही, स्थिर होकर बैठती है। उसके जीवनकी पहली निराशा उसे पत्थरकी भाँति कठोर तथा सहनशील बना देती है। उसका अपराजित रूप और उद्दाम यौवन एकदम शान्त हो जाता है।

वृद्ध पतिके घर आनेपर उसके जीवनका दूसरा अक प्रारभ होता है। अब वह बडी विचारशील, नम्र एव निरभिमान बन गई है। उसकी सारी कामनाएँ जैसे समाप्त हो गई हो! जीवनके उत्साहपर असमयमे ही सफेदी छा गई हो! परम वैष्णवीय भावनाओंसे अभिभूत होकर उसने अपार शान्तिके वातावरणमे परिस्थितियोकी कटुताके समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया है। जिंदगीकी सारी वासनाओका उन्नयन हो गया है। 'काम-धधा करने, मीठी बाते कहने और परोपकार तथा सेवा-शुश्रूषा करनेमे दिन कट जाते है और सब कुछ भूलकर ध्यानमग्ना योगिनीकी तरह रहनेमे भी कट जाते है। कोई उसे कहता है लक्ष्मी-स्वरूपा अन्नपूर्णा और कोई कहता है अन्यमनस्का उदासिनी।'

विवाहके उपरान्त पार्वतीमे अनायास ही विचार-शीलता बढ जाती है। लेखकके शब्दोमे, 'अवस्थाके अनेको प्रकारके परिवर्तनोने पार्वतीको उसकी उम्रकी अपेक्षा बहुत-कुछ परिपक्व कर दिया है। इसके सिवा व्यर्थकी लज्जा-शरम या जडता-सकोच उसमे कभी था ही नही।' पतिके घर आने-

पर उसकी व्यवहार-कुशलतामे भी अभिवृद्धि हुई है। अपने सौतेले लडकेकी पत्नी द्वारा उसके दानपर आपत्ति होनेके कारण पार्वती अपना हाथ खीच लेती है—'अब अतिथिशाला और देवमन्दिरकी पहलेकी तरह सेवा नही होती।' उसके लिए सारी बाह्य सज्जा अनावश्यक हो गई है। नितान्त निरभिमान होकर उसने अपने सारे आभूषण अपनी ननदको सौप दिये है। अपनी नम्रता एवं व्यवहार-कुशलताके कारण ही वह क्रुद्ध यशोदा तथा जलदबालाको अपने वशमे कर लेती है।

वृद्ध पति मिलनेपर भी पार्वती उनको हृदयसे चाहती है। वर्षोका व्यवधान उनके बीचमे दीवार नही बनता। वह अपने पति भुवन चौधरीसे कहती है, "तुम बूढे हुए तो मै भी बहुत जल्दी बूढी हो जाऊँगी। औरतोको बूढी होते क्या ज्यादा देर लगती है?" और केवल पति ही नही, पतिकी सारी 'कच्ची अव्यवस्थित' गृहस्थीका भी उसे पूरा ध्यान है। विवाहके बाद इसीलिए वह शीघ्र ही अपने घर नही जाती। सौतेली सन्तानोंके लिए उसके मनमे इतनी ममता है कि बडी लडकी यशोदाको कहना पडता है, "क्यो भैया, सौतेली माँ भी इतना आदर कर सकती है?" यशोदा-का सारा क्रोध और गर्व तो पार्वतीकी नम्रताके सम्मुख एकदम झुक जाता है। रूठी हुई यशोदाको मनाकर घर लानेके लिए उसकी ससुराल जानेको वह स्वय उद्यत होती है। यशोदाके आ जानेपर वह उससे कहती है—"बडा घर ठहरा, कितने ही नौकर-नौकरानियोकी जरूरत होती है। मै भी तो एक दासीके सिवा और कुछ नही हूँ। छी बेटी, तुच्छ दास-दासियोपर नाराज होना क्या तुम्हे शोभा देता है?" कहना न होगा कि इस हार्दिक सौजन्यके सम्मुख किसका अभिमान टिक सकता है?

अन्य सात्त्विक गुणोके साथ-साथ अब पार्वतीके व्यक्तित्वमे दयाका भाव भी उभर उठा है। देवदासके पुराने नौकर धर्मदासको वह अपने गलेका हार उतार कर दे देती है, जिससे कि वह उसे अपनी लडकीको पहना सके। नि सन्तान होनेके कारण उसका वात्सल्य बहुत व्यापक हो गया है। 'उसके अपने लड़के-बाले नही है, इसीलिए दूसरोके लडके-बच्चोपर उसका

वहुत अधिक अनुराग है। गरीवो और दुखियोकी बात तो दूर रही, जिन लोगोके खाने-पीनेका कुछ ठिकाना है, उनके वाल-बच्चोका भी अधिकाश व्यय उसने अपने ऊपर ले लिया है। इसके सिवा देव-मन्दिरका काम-धधा करके, साधु-सन्यासिनियोकी सेवा करके और अधो तथा लूले-लँगडोकी परिचर्या करके उसके दिन कट रहे हैं वह दरिद्र भले आदमियोको चुपचाप आर्थिक सहायता देती है। यह उसका खुद अपना खर्च था।' वस्तुत अपने इन सत्कार्योके फलस्वरूप पार्वती नारीके उस मूल रूप तक पहुँच गई है, जिसे हम 'जगज्जननी' कहते है। दयाके साथ-साथ, क्रोधके स्थानपर अव उसमे क्षमाशीलता आ गई है। महेन्द्रकी बहूके अपराधोपर कुछ भी ध्यान न देकर वह उसे क्षमा कर देती है, और कहती है, "छी बेटा, वह तो मेरी वहुत अच्छी लडकी है।" अपनी इस सात्त्विकताके प्रभाव-से ही वह सबका क्रोध शान्त करती है, दूसरोके हृदयसे अपने प्रति विद्वेषका भाव मिटा देती है।

जीवनके उत्तरार्द्धमे यद्यपि पार्वतीका स्वभाव बहुत कुछ बदल जाता है, पर उसके हृदयमे देवदासके प्रति प्रेम कभी कम नही होता। विवाहो-परान्त देवदाससे प्रथम बार मिलनेपर उसको कुछ सकोचका अनुभव अवश्य होता है, किन्तु उसके मनकी दृढता पूर्ववत् रहती है। धर्म-द्वारा जब उसे देवदासकी दुर्दशाका समाचार मिलता है तो उसे इस वातका पश्चात्ताप होता है कि वह देव भैयाको कुछ सुख न दे सकी। देवदासके द्वारा अपने मस्तकपर किये गये आघातसे बने हुए चिह्नको वह बहुत पवित्र मानती है—"देव भैया, यह निशान ही मेरे लिए सात्वना है—यही मेरा सबल है। तुम मुझसे स्नेह करते थे, इसलिए तुमने हम लोगोका बाल्य इतिहास ललाटपर लिख दिया है। यह मेरे लिए लज्जा नही, कलक नही, वल्कि गौरवकी सामग्री है।" वह देवदासको किसी भी प्रकार सुख पहुँचानेमे अपनेको कृतकार्य समझती है। जब देवदास कहता है, "तुम्हारे घर चलूँगा तो मेरी 'खूब सेवा करोगी ?" तो पार्वती उत्तर देती है, "यह तो मेरी लडकपनकी साध है। स्वर्गके देवता, मेरी यह साध पूरी कर दो।

इसके वाद अगर मैं मर जाऊँ तो उसका कोई दुख नही।" और जब मनोरमा उसे पत्र-द्वारा देवदासके मद्य-पानका समाचार देती है तो वह उसे अपने यहाँ लानेके लिए स्वय ही तालसोनापुर पहुँचती है। इस कार्यमे वह तनिक भी लज्जाका अनुभव नही करती—'अपनी चीज आप ले जाऊँगी इसमे लाज काहे की ?' परन्तु नियति-चक्रके सम्मुख पार्वतीकी कुछ भी नही चलती। देवदास उसीके घरके सामने आकर मर जाता है और उसे इसका पता भी नही लगता। इसीलिए शरत्‌के साथ-साथ पाठकोको भी देवदास और उसके वर्गके लोगोके लिए प्रार्थना करनी पडती है, "उसकी तरह किसीकी मृत्यु हो तो मरनेमे कोई हर्ज नही है। लेकिन ऐसा हो कि उस समय एक स्नेहपूर्ण कर-स्पर्श उसके मस्तकतक पहुँचे और एक करुणार्द्र स्नेहपूर्ण मुख देखते-देखते इस जीवनका अन्त हो। मरनेके समय वह किसीकी आँखोका एक बूंद जल देखकर मर सके।"

पार्वतीके उपरान्त 'देवदास' की कथामे, और देवदासके व्यक्तित्वमे चन्द्रमुखीका प्रमुख भाग है। वह कलकत्तेमे वेश्यावृत्ति करके अपना जीवनयापन करती है, परन्तु वह अत्यन्त सहृदय है। अपनी जीविकोपार्जनमे उसे कोई कठिनाई नही, क्योकि रूप और वाक्पटुता उसके व्यक्तित्वमे पूर्ण विकसित है। यद्यपि उसकी अवस्था अधिक हो गई है तो भी उसके शरीरमे रूप नही समाता, ऐसा जान पडाता है कि अवस्थाके साथ ही उसके रूपमे भी वृद्धि हो रही है। वार्तालापमे उसे अप्रतिभ करना बहुत ही कठिन काम है। परन्तु ये तो उसके चरित्रके व्यावसायिक गुण है। इनके वीचमे भी उसकी मूल-नारी-प्रकृतिकी ज्योति कभी क्षीण नही होती।

चन्द्रमुखीके व्यक्तित्वका अधिक अच्छा भाग उस समय प्रकाशमे आता है, जब उसका देवदाससे सपर्क होता है। उसके हृदयकी सुप्त सद्‌वृत्तियाँ तभी जाग्रत होती है। देवदाससे प्रथम बार भेंट होनेपर ही वह उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। चुन्नीलालसे वह कहती है, "जब उनका मन ठिकाने हो, तब फिर एक बार लाना, उन्हे फिर एक बार देखूंगी।" ऐसा जान पडता है कि वह किसी ऐसे ही व्यक्तिकी प्रतीक्षामे थी जो उसके विकारग्रस्त

मनको निर्मलताकी ओर ले जावे। वह देवदाससे प्रेम करने लग जाती है। उसके चले जानेपर वह अपना व्यवसाय समाप्त कर देती है, और अपने शृंगारकी ओरसे उदासीन हो जाती है। उसके प्रेममे भोग प्रधान न होकर, त्याग प्रधान है। अब उसकी वेश्या-मनोवृत्तिकी प्रतिक्रिया होती है।

अत्यन्त हीन दशामे चन्द्रमुखी देवदासकी प्रतीक्षा करती रहती है, और अन्तमे जब वह आता है, तब मानो उसकी तपस्या पूर्ण होती है। वह कहती है, "नाराज न होना। जानेसे पहले मैंने आशा की थी कि अगर एक वार तुमसे भेंट हो जाय तो अच्छा हो।" और फिर वह देवदासको बताती है, "जिस दिन तुम पहले-पहल यहाँ आये थे, उसी दिन तुमपर मेरी दृष्टि पडी थी। यह मैं जानती थी कि तुम वहुत वडे धनीके लडके हो। लेकिन धनकी आशासे मैं तुम्हारी ओर आकृष्ट नही हुई शराबसे मुझे वहुत घृणा है। कोई शराबसे मतवाला होता तो उसपर वहुत क्रोध आता। लेकिन तुम मतवाले होते तो क्रोध नही आता—वहुत ही दुःख पाती।" अब चन्द्रमुखी अपने निराश्रित जीवनमे देवदासको ही सहारा समझती है, अभावके समय वह उससे धन माँगनेका वादा भी करती है, परन्तु साथ ही वह यह भी चाहती है कि किसी प्रकार देवदासकी वह कुछ सेवा कर सके। जानेके समय वह देवदाससे कहती है, "ईश्वर न करे, यदि कभी दासीकी आवश्यकता हो तो इसे स्मरण रखना।" उसका विश्वास है कि देवदासकी गृहस्थीमे दासीकी तरह रहकर वह अपने दिन सुखसे बिता सकेगी।

कलकत्ता छोडकर गाँवमे रहनेपर भी उसे देवदासकी सदा चिन्ता रहती है। उसका पता लगानेके लिए वह पैदल ही तालसोनापुर जाती है। रास्तेमे उसके अनभ्यस्त कोमल पैर क्षत-विक्षत होकर लहू-लुहान हो जाते है, पर भूखी-प्यासी रहते हुए भी वह हार नही मानती। इस अविचलित प्रेमका अचल रूपसे देवदासके मनपर प्रभाव पडता है। मरणासन्न अवस्थामे देवदासको अपनी माँके साथ ही चन्द्रमुखीका स्मरण हो आता है।' 'पापिष्ठा समझकर जिससे हमेशा घृणा की है, उसीको अपनी माताके पास ही गौरवके साथ स्पष्ट होते देख उसकी आँखोसे झर-झर आँसू वहने लगते है।'

यहाँ एक बातका स्मरण रखना आवश्यक है कि देवदासको इतना अधिक प्रेम करती हुई भी चन्द्रमुखी उसे अपने लिए प्राप्त नही करना चाहती, क्योंकि वह भली भाँति जानती है कि उसके अभीष्टपर किसी दूसरेका अधिकार है। शरावके नशेमे देवदासने जब पार्वतीका नाम लिया था, तभी वह अपनी सीमा समझ गई थी, परन्तु देवदासको प्यार करनेमे उसे कोई रोक न सकता था। यदि वह चाहती तो अपनी सेवा और सहिष्णुतासे निरुपाय देवदासको प्राप्त भी कर सकती थी, परन्तु उसके हृदयकी विशालता और कदाचित् उसकी सामाजिक स्थितिके ज्ञानने ऐसा नही होने दिया। और इस प्रकार दूसरेका घर उजाडकर उसने अपना घर नही वसाया। देवदासके पास पहुँचनेकी तीव्र इच्छाको अपने मनमे ही रखकर, वह कलकत्तेके समीपवर्त्ती किसी गाँवमे चली गई, क्योंकि तीर्थ और धर्मपर उसकी कोई श्रद्धा नही, और हो भी कैसे सकती थी जब कि उसका तीर्थ और धर्म देवदास ही वन गया था।

अपने कोमल शरीर और मनको लेकर चन्द्रमुखी गाँवमे एक झोपडी वनाकर रहने लगती है। प्रेमकी असफलताने उसे निराश नही किया, वरन् उसकी वासनाओंका उन्नयन किया है। वह देवदासके भेजे हुए रुपयोको गाँवके विपत्तिमे पडे हुए व्यक्तियोको उधार देती है, सूद नही लेती। जो रुपये नही दे सकता, वह नही देता। वह मूल धनके लिए भी लोगोको तग नही करती, क्योंकि वह सोचती है, "वे जीते रहे, मुझे रुपयोकी चिन्ता क्या।" और इस तरह परम शान्तिके वातावरणमे उसके दिन व्यतीत होते है। सेवा और परोपकारकी भावनाएँ उसके व्यक्तित्वने एकदम सहज हो गई है। इसीलिए जव अपनी झोपडीको छोडकर चन्द्रमुखी कलकत्तेके लिए चलने लगती है तो गाँवकी सभी स्त्रियाँ और पुरुष रोने लगते है, स्वय चन्द्रमुखीकी आँखोमे भी जल नही समाता।

चन्द्रमुखीका चरित्र नारीके मूल गुणो—धैर्य एव सहिष्णुतासे विहीन नही है। 'उसमे कितनी अधिक वुद्धि है। वह कितनी शान्त और धीर

है। और वह कितना स्नेह करती है'—ये ती‌नो छोटे-छोटे वाक्य उसके चरित्रके प्रमुख तत्त्वोपर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। उसका अलोभ तथा मदिराके प्रति घृणा उसे वेश्या सिद्ध नही करते। सहनशीलता उसमे इतनी अधिक है कि उसे पूरा-पूरा समझनेके पहले ही देवदास कहता है (और यह कितना सत्य है!) "आहा! तुम सहिष्णुताकी प्रतिमूर्त्ति हो! स्त्रियोको लाछना, भर्त्सना, अपमान, अत्याचार और उपद्रव आदि कितने सहने पडते है, तुम्ही सब इसका दृष्टान्त हो!"

चन्द्रमुखीके हृदयमे पार्वतीके लिए पर्याप्त श्रद्धा है। वह देवदाससे कहती है, "मुझे विश्वास नही होता कि पार्वतीने तुम्हे धोखा दिया है। वल्कि मेरा ख्याल है कि स्वय तुमने अपने आपको धोखा दिया है मेरी समझमे स्त्रियोकी जो यह बहुत वडी बदनामी है कि वे बहुत ही चचल तथा अस्थिरचित्त हुआ करती है, सो ठीक नही। वे उतनी अधिक बदनामीके योग्य नही है।" इन शब्दोसे स्पष्ट जान पडता है कि वेश्या-वृत्तिमे होनेपर भी चन्द्रमुखी प्रेमकी उच्चता एव महानता भली भाँति समझती है। वस्तुत उसे अपनी वर्त्तमान स्थितिपर पश्चात्ताप भी है, वह बताती है—'जितनी घृणा तुम मुझपर करते हो, मै भी उतनी ही घृणा अपने आप पर करती हूँ।' स्त्री-पुरुषके प्रेमके सबधमे उसके विचार वडे सुलझे हुए है, उसका मत काफी सुचिन्तित एव सुनिश्चित जान पडता है। वह कहती है, "रूपका मोह तुम लोगोकी अपेक्षा हम लोगोमें बहुत ही कम होता है, इसीलिए तुम लोगोकी तरह हम लोग उन्मत्त नही हो जाती। तुम लोग आकर अपना प्रेम जतलाते हो, न जाने कितनी तरहकी बातो और भावोमे जब उसे प्रकट करते हो, तब हम लोग चुप ही रहती है। प्राय ऐसा होता है कि तुम लोगोके मनको क्लेश पहुँचानेमे हम लोगोको लज्जा आती है, दु ख होता है, सकोच होता है। मुँह देखनेमे भी जब घृणा होती है, तब भी कदाचित् लज्जाके कारण कह नही सकती कि हम तुम्हे प्रेम नही कर सकेगी। इसके बाद एक बाह्य प्रणयका अभिनय आरभ होता है। फिर एक दिन जब उसका अन्त हो जाता है तब पुरुष क्रुद्ध और अस्थिर होकर कहते है

कि कैसी विश्वासघातिनी है . . उस समय कदाचित् कुछ ममता उत्पन्न हो जाती है। स्त्रियाँ समझती हैं कि कदाचित् यही प्रेम है। वे शान्त और धीर भावसे ससारके सब काम-धधे करती हैं, दु:खके समय प्राणपणसे सहायता करती हैं। उस समय तुम लोग उनकी कितनी सुख्याति करते हो! बात-बातमे उन्हें कितना धन्य कहते हो? लेकिन संभवत: उस समय भी उन्हें प्रेमका अक्षर ज्ञान तक नही होता।" उक्त लवे उद्धरणसे चन्द्रमुखीकी विचारशीलता स्पष्ट प्रकट होती है, और साथ ही उसकी सूक्ष्म दृष्टिका भी पता चलता है। यहाँ स्मरणीय है कि अपने प्रेमके सम्बन्धमे चद्रमुखीकी उक्त धारणा नही है। यह तो स्त्री-पुरुपके प्रेमके सम्बन्धमे एक सामान्य कथन है। अवश्य ही, इससे कुछ उसकी प्रवृत्तियो पर भी प्रकाश पडता है।

'देवदास' मे पारो तथा चन्द्रमुखी—दो ही प्रमुख नारीपात्र है। इन दोनोकी तुलना करता हुआ देवदास स्वय चन्द्रमुखीसे कहता है, "तुम दोनोमें परस्पर कितना अन्तर है, फिर भी कितनी समानता है। एक आत्माभिमानिनी और उद्धत है, और दूसरी कितनी शान्त और सयत है। वह कुछ भी सहन नही कर सकती और तुम कितना सहन करती हो। उसका कितना यश और कितना सुनाम है और तुम पर कितना कलक है। उससे सभी प्रेम करते हैं और तुमसे कोई प्रेम नही करता।"

उपन्यासके पार्श्व-चरित्रोमे, मनोरमाका व्यक्तित्व ओसत दर्जेका है, पारोकी यह सखी वस्तुओको ऊपरी निगाहसे देखनेवाली है। पार्वतीकी सौतेली वधू जलदवालामे लडकपन अधिक है। बुद्धिमती और कार्यपटु होते हुए भी एक गृहिणीकी सूक्ष्म बुद्धिका उसमे अभाव है। क्रोधको वशमे रखना वह नही जानती। परन्तु प्रकृतिकी सरल एव भोली है। इसके अतिरिक्त देवदासकी माँ, देवदासकी भाभी, पारोकी माँ, पारोकी दादी और पारोकी सौतेली पुत्री यशोदाका, कथानकमे यत्र-तत्र उल्लेख भर है। उपन्यासमे हमे उनकी चरित्र-योजनाकी सामग्री नही मिलती। इनका कही कोई विशेष स्थानीय महत्त्व भी नही है। 'देवदास' की ख्याति तो पारो एव चन्द्रमुखीके चरित्राकन पर ही आधारित है।

दत्ता

•

शरत्ने अपने कुछ उपन्यासोमे प्रेममूलक समस्याके साथ ही गुँथी हुई बंगाली समाजकी ब्राह्म तथा हिंदू समस्याको भी अंकित किया है। अपने रचनाकालके पूर्वार्द्धमे उन्होने 'परिणीता' के माध्यमसे एक ऐसा चित्र उपस्थित किया था, प्रौढ लेखनीसे प्रसूत 'दत्ता' और 'गृहदाह' मे भी इसी समस्याको सुलझानेका प्रयत्न किया गया है। उक्त तीनो उपन्यासोमे प्रेमका संघर्ष प्राय एक प्रकारका है। इनमे-से 'दत्ता' एव 'गृहदाह' की रचनामे समयका विशेष व्यवधान नही है। अत उनका मूल कथानक समानान्तर विचार-धाराके फलस्वरूप कहा जा सकता है। परन्तु यदि 'दत्ता' को 'गृहदाह' से कुछ पहलेकी रचना माना जाय, जैसा कि दोनो उपन्यासोकी प्रकृति एव चरित्र-चित्रणसे स्पष्ट है, तो ऐसा जान पडेगा मानो 'परिणीता' की सरलहृदया ललिता ही कुछ अधिक गम्भीर एव विकसित होकर 'दत्ता' की विजया बन गई है, और आगे चलकर 'गृहदाह' की अचलामे विजयाकी अस्थिरता तथा रहस्यात्मकता अपनी चरम सीमा पर जा पहुँची है।

'दत्ता' का कथानक इस प्रकार है—जगदीश, वनमाली तथा रासविहारी बचपनके मित्र हैं। जगदीशके एक लडका है, जिसका नाम है नरेन्द्र। वनमालीके एक कन्या है, जिसका नाम है विजया, एव रासविहारीके पुत्रका नाम विलास है। वृद्धावस्थातक पहुँचते-पहुँचते जगदीश एव वनमालीकी मृत्यु हो जाती है, केवल रासविहारी जीवित रहते हैं। विजयाके रूप-गुण तथा धनको देखकर कूटनीतिज्ञ रासविहारी उसे अपनी पुत्र-वधू बनाना चाहते हैं। विजया भी विलासकी ओर कम आकृष्ट नही है। अत एक

प्रकारसे यह निश्चित हो जाता है कि विजया विलासकी पत्नी होगी। तभी एक दिन विजयाकी नरेन्द्रके साथ प्रथम वार भेट होती है। उसे देखकर वह मुग्ध हो जाती है तथा उसे अपने पिताकी अन्तिम कामना याद आती है कि विजया नरेन्द्रकी वधू बने। परन्तु विजया एव विलास दोनो ही ब्राह्म है, जब कि नरेन्द्र हिंदू है। रासविहारीकी कूटनीति एव धार्मिक विषमताके फलस्वरूप नरेन्द्र और विजयाके वीच ऊँची दीवार खडी हो जाती है। विजयाकी अनिच्छा रहते हुए भी उसके विलासके साथ विवाहकी तिथि निश्चित हो जाती है। पर शरत् भली भाँति जानते थे कि मनीषियोने व्यर्थ ही नही कहा है—'जा पर जाकर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू', और इसीलिए कथाका अन्त होते-होते, वडे ही नाटकीय ढगसे विजयाका विवाह नरेन्द्रके साथ हो जाता है।

'दत्ता' के अपेक्षाकृत विस्तृत कथा-भागमे केवल दो ही नारी-पात्रोका अकन हुआ है। एक तो विजया, जो उपन्यासकी नायिका है, और दूसरा नलिनीका जो पार्श्व-चरित्र है। इतने कम नारी-पात्र लेखककी किसी भी अन्य कृतिमे शायद न मिलेगे। इसका कारण कदाचित् यही हो सकता है कि उपन्यासकारने 'दत्ता' की रचना इस प्रकारकी है कि उसका कथानक केवल एक नारी-चरित्रकी सवेदनासे ढँक जाय। इसीलिए उपन्यासके कथा-विधानमे किसी दूसरे नारी-पात्रकी आवश्यकता नही हुई। नलिनीका चरित्र कथामे कुछ सघर्ष भरनेके लिए रखा गया है। इस दृष्टिसे उपन्यासमे उसका स्थानीय महत्त्व अवश्य है। अन्यथा 'दत्ता' की एक-एक पक्तिमे विजयाके हृदयकी सवेदना ही परिव्याप्त है।

विजया अभिजात्य वर्गके एक धनी पिताकी एक मात्र पुत्री है। वचपनमे ही उसकी माताकी मृत्यु हो गई थी, और युवावस्था तक पहुँचते-पहुँचते वह अपने पिताको भी खो वैठी। भाई-वहिन उसके कोई है नही! उसकी सपत्ति एव कुलीनताकी रक्षाके लिए उसके पिताके घनिष्ट मित्र रासविहारी तथा उनका पुत्र विलास अवशिष्ट है। इन्हींके सहारे वह घर-बाहरका प्रवन्ध करती है।

विजयाके चरित्रकी सर्व-प्रमुख विशेषता है उसकी पितृ-भक्ति, जो आधुनिक सभ्यताके रगमे रँगी हुई कन्याओमे प्राय नही मिलती। अपने वृद्ध पिता वनमालीसे वह सदैव ही कहती रही है, "बापू, तुम्हारा आदेश मै किसी दिन नही टालूँगी।" स्नेहमय पिताके अनुरोधोको वह टालती है, किन्तु केवल तभी जब कूटनीतिज्ञ रासविहारी-द्वारा धर्मका भयानक आवरण उसके मन पर डाल दिया जाता है, किन्तु अपनी इस करनीका उसे सदैव पश्चात्ताप रहता है, और इसीलिए पिताके आदेशके विरुद्ध उनके बाल्य-मित्र जगदीशके पुत्र नरेन्द्रसे, ऋणकी अदायगी स्वरूप लिखा हुआ घर वह वापस करनेकी सोचती है, 'बापूका आदेश ही उसकी अदालत है।'

पिताकी शिक्षा-दीक्षाके अनुरूप ही विजयाके व्यक्तित्वमे व्यावहारिक सयम सहज हो गया है। विलासके कठोर-से-कठोर वाक्य-प्रहारोको वह बिना किसी उत्तरके सहन कर लेती है। इस व्यावहारिक सयमके फलस्वरूप उसकी प्रकृति बहुत कुछ सधि-करनेवाली हो गई है। अपने किसी अपराध-को स्वीकार करके कलहको शान्त करनेमे उसे कोई लज्जा नही। मानसिक सघर्षके समय यह ब्राह्म महिला केवल यह सोचकर रह जाती है, "मगलमयकी इच्छासे सब मगलके लिए ही हुआ है।" परन्तु जब इतनेसे भी काम नही चलता तो वह विवश होकर आकस्मिक निर्णय करती है, अन्यथा प्रत्युत्पन्नमति उसकी विचार-शैलीकी विशेषता नही।

अभिजात्य वर्गके रहन-सहनके कारण उसके दैनिक जीवनके आचार-विचार बडे ही सुलझे हुए है। सभ्य समाजके आचरणोका वह स्वय पालन करती है और साथ ही दूसरोसे भी उसी प्रकारके व्यवहारकी आशा रखती है। विलासके अशिष्ट व्यवहारसे वह सदैव असन्तुष्ट रहती है। भद्रताके तकाजेके कारण ही प्रथम भेटके समय वह नरेन्द्रसे उसका नामतक नही पूछ पाती। उसकी शिष्टताका मापदण्ड भी नितान्त भारतीय है। वह पुरुषोको पहले खिलानेका अधिकार नही छोडना चाहती और जाति-भेदमे उसका विश्वास है, इसीलिए ब्राह्म होते हुए भी उसके विचारोमे हिंदुत्व

अवशिष्ट हे। दूसरोकी निन्दा उसे एकदम अच्छी नही लगती, ओ यह्र वात वह नरेन्द्रको कुछ कठोरताके साथ वता भी देती है।

किसी भी चित्रकारको आकर्षित करनेवाले सौंदर्यकी स्वामिनी होनेके साथ-साथ विजयाके चरित्रमे सहृदयताकी कमी नही है। गाँवकी प्रजाका दुःख सुनकर उसका कोमल चित्त व्यथासे भर उठता है। नरेन्द्रके खाने पीनेकी दुर्व्यवस्था जाननेपर उसकी आँखोमे आँसू आ जाते हैं। हृदयकी-स्निग्धतासे सयुक्त दया भी उसके मनकी स्वाभाविक वृत्ति है। अपने गुमाश्ते वृद्ध दयालकी बीमारीमे, वह स्वय रुग्ण होते हुए, नरेन्द्रको उसके पास परिचर्याके लिए भेजती हे। किसीके दुःख निवारणके लिए दो-चार सो रुपया व्यय कर डालना उसके लिए वडी वात नही। अपने पुराने नौकर कालीपदको नौकरीसे अलग किये जानेपर वह रासविहारी तथा विलासको असन्तुष्ट करके स्वय उसे रख लेती है। उसके जीवनकी यह छोटी-छोटी घटनाएँ उसके कोमल मनकी परिचायक हैं, जो स्त्रियोचित दयाके सयोगके कारण अत्यन्त सजल एव स्निग्ध हो गया है।

विजयाकी विचार-शक्ति अवस्थाके अनुकूल ही पूर्ण परिपक्व नही हो पाई हे। विलास-द्वारा दिये गये यश-प्राप्त करनेके प्रलोभनोमे वह सहज ही फँस जाती है। लेखकके शब्दोमे, "सचमुच इतने वडे नामका लोभ-सवरण करना अठारह वर्षकी लडकीके लिए सभव नही!" और इस प्रकार समाजसे सम्मान प्राप्त करनेके लिए, वह पिताकी अन्तिम इच्छाको ठुकरा कर भी, नरेन्द्रके पैतृक घरको लेनेकी सम्मति दे देती है, जिससे उसमे ब्राह्म-मन्दिरकी प्रतिष्ठा हो सके। पर ब्रह्मसमाजकी अनुयायिनी होनेपर भी उसके मनमे अन्य धर्मोंके प्रति विद्वेष नही है। धार्मिक सहिष्णुता उसके चरित्रका प्रमुख अग हे। इसीलिए अपने घरकी वगलमे वह दुर्गा-पूजाके उत्सवको सपन्न करनेकी आज्ञा दे देती है। विलासके इस सबधमे आपत्ति करनेपर वह स्पष्ट शब्दोमे कहती हे, "आप जो कर सके करे, लेकिन मैं किसीके धर्म-कर्ममे वाधा नही डाल सकूगी।" अपरिपक्व अवस्थाकी होनेपर भी उसकी सावधानीसे रासविहारी बहुत परेशान है। अपनी

दिनचर्यामे विघ्न पडता देखकर वह विलासको फटकार देती है—"महीने-महीने दो सौ रुपय वेतन आप लेते हैं। वे रुपये तो मै आपको यो ही खाली देती नही, काम करनेके लिए देती हूँ ...आपके असख्य उत्पात मै नि शब्द सहती आ रही हूँ, लेकिन मैने जितना ही सहन किया है, अन्याय और उपद्रव उतना ही बढता गया है। मालिक-नौकरके सबधके सिवा आजसे आपका मेरा और कोई सबन्ध नही रहेगा।" और इस प्रकार विलाससे, जो उसका सभाव्य पति है, वह स्वय को 'तुम' कह कर सबोधित करनेका अधिकार तक छीन लेती है। पर जब उसके क्रोधका आवेश उतर जाता है, तो अपने अशिष्ट आचरणके लिए वह लज्जित होती है। विलासके प्रति प्रदर्शित असयत रूक्षतापर उसे पश्चात्ताप है।

ऊपरकी समीक्षासे एकदम स्पष्ट है कि विजयाका चरित्र सामान्य मानव-जीवनकी भलाइयो-बुराइयोसे भरा हुआ, नितान्त स्वाभाविक है। कभी उसका मन इतना दुर्बल हो जाता है कि वह विलासके डरसे अपने प्रिय भृत्य कालीपदको निरपराध ही नौकरीसे अलग करनेके लिए तैयार हो जाती है, और कभी उसका मन इतना सशक्त हो उठता है कि वह रासविहारीको भी कठोर-से-कठोर बाते नि सकोच सुना देती है। अपनी स्पष्टवादिताके कारण वह रासविहारीके सम्मुख ही उनकी नीयतपर सन्देह प्रकट करती है। विलासको वह बता देती है कि उसका प्रेम केवल धनके लिए है। मनकी इन ऊँची-नीची भूमियोसे अवसर पाकर नलिनीके प्रति उसकी ईर्ष्या भी उभर पडती है। नरेन्द्रको नलिनीकी ओर झुकते देखकर वह हत-बुद्धि हो जाती है। उसके हृदयको भारी धक्का लगता है, वह सोचती है, "जगत्के सभी पुरुष एक ही साँचेमे ढले हुए है। रासविहारी, दयाल, विलास, नरेन्द्र—असलमे किसीके साथ किसीका कोई प्रभेद नही। बुद्धि और अवस्थाके तारतम्यसे जो कुछ बाहर दिखलाई देता है, केवल वही प्रभेद है। नही तो अपने सुख और सुभीतेके लिए नीचतामे, कृतघ्नतामे, निर्मम निष्ठुरतामे नारीके लिए ये सभी समान है।" कहना न होगा कि

मनुष्यमें ऐसी विचार-धारा तभी जाग्रत होती है, जब कि उसके मनके निर्बलतम स्थानपर चोट पहुँचती है।

यहाँ तक तो विजयाके चरित्रके सामान्य गुण-दोषोकी सक्षिप्त समीक्षा हुई। अब हम उसके मानसिक सस्थानकी उस वृत्तिका विश्लेषण करेंगे, जो नारी-समाजकी आदिम एव मूल मनोवृत्ति है, और जिसे हम प्रेम जैसे व्यापक नामसे पुकारते हैं। विजयाके हृदयकी रागात्मिका शक्ति बहुत तीव्र न होकर सयमित अधिक है। उसके हृदयमे यौवनावस्थाके आवेगके दो साझीदार हैं—नरेन्द्र और विलास। अवश्य ही पल्ला नरेन्द्रकी ओर झुका दिखाई देता है, क्योकि उसका नैसर्गिक आकर्षण नरेन्द्रकी ओर ही है, परन्तु कुछ परिस्थितियोसे विवश होकर उसे विलासकी ओर झुकना पडता है। इसके दो प्रमुख कारण हैं—एक तो विलास विजयाका सजातीय ब्राह्म है, और दूसरे अपेक्षाकृत वह धनसपन्न है। नरेन्द्रके विपक्षमे ये दोनो ही बाते ठहरती हैं। वह हिंदू है और उसके घरमे सपत्तिका नाम-निशान नही। इसके अतिरिक्त वृद्ध तथा अनुभवी रासविहारीकी कूटनीति भी विजया और नरेन्द्रके बीच यथासभव ऊँची दीवार खड़ी करनेका प्रयत्न करती है। इस प्रकार विजयाका हृदय प्रथम यौवनावस्थासे लेकर विवाह होनेके कुछ क्षण पूर्व तक, तीव्र मानसिक सघर्षोकी रगभूमि बना रहता है।

प्रथम बार ही एक अपरिचित व्यक्तिके रूपमे जब विजयाकी नरेन्द्रसे भेंट होती है तो उसका मन अस्थिर हो उठता है। वह सोचती है, "कौन है यह, और अब कब इससे भेंट होगी ?" फिर लेखककी तो मान्यता ही है, 'जो लोग समझते हैं, यथार्थ बधुत्व होनेके लिए अनेक दिन चाहिएँ उन्हे याद दिला देना जरूरी है, कि नही, यह बहुत जरूरी नही है।' यहाँ शरत्‌बाबू अपनी इस उपपत्तिके लिए कोई निश्चित कारण नही देते, और वस्तुत. यह 'यथार्थ बधुत्व अकारण ही आविर्भूत होता है।' अत इस प्राकृतिक नियमके अनुकूल ही विजया और नरेन्द्र एक-दूसरेको अपने काफी निकट अनुभव करते है। पर विजयाके मनमे आकर्षणका जादू अधिक गहरा है, इसीलिए वह अपरिचित नरेन्द्रको देखनेकी तृष्णा मनमे सँजोये

रहती है। बहुत दिनोतक न मिलनेपर वह बिना किसीको बताये उसका पता लगवाती है।

विजयाको सबसे अधिक असन्तोष इस बातका है कि नरेन्द्रके मनमे उसके प्रेमकी प्रतिक्रिया नही दिखाई देती। उस वैज्ञानिकको सदैव ही निर्विकार रहता जानकर उसकी झुंझलाहट बढ जाती है। इसीलिए कभी-कभी अपने व्यवहार तथा वार्त्तालापसे वह नरेन्द्रको परेशान भी कर देती है। पर उसकी सारी छेड-छाड उसके हृदयके प्रेमको और पुष्ट करती है। विजयाके आचरणको देखकर, बडी सरलतासे नरेन्द्र स्वय कहता है, "मै तो आपके लिए एकदम पराया हूँ, मेरे दु ख-कष्टसे सचमुच ही तो आपका कुछ हानि-लाभ नही है, तो भी आपका आचरण देखकर बाहरका कोई नही कह सकता कि मै आपका अपना व्यक्ति नही हूँ।" नरेन्द्रके इस कथनमे यद्यपि बाह्य शिष्टाचारका कोई अश नही, तथापि उसकी निष्कपट उदासीनता, जो उसके व्यवहार एव बात-चीतसे टपकती है, विजयाके निकट चिन्ताका विषय है। प्रणय-रीतिसे अपरिचित नरेन्द्र विजयाके मनोभाव ठीक-ठीक नही पहचान पाता, इसीलिए उसके चले जानेपर अनजानेमे ही विजयाका मन, आँखे और वस्त्र एकसाथ भीग उठते है।

कुछ तो नरेन्द्रकी सरलताके कारण और कुछ रासविहारी एवं विलासके भयसे विजया नरेन्द्रके प्रति अपने प्रेमको स्पष्टत प्रकट नही कर पाती। बीमारीकी अवस्थामे अवश्य ही वह एक बार सबके सम्मुख भावावेशमे नरेन्द्रसे कहती है, "मै जब तक अच्छी न हो जाऊँ, बोलो, कि तबतक तुम कही न जाओगे—तुम चले गये तो मै शायद बचूँगी नही।" यह नियतिका व्यग है कि विजयाके इतने बडे आग्रहको भी नरेन्द्र नही समझ पाता। परिणामस्वरूप अनिच्छा रहते हुए भी वह परिस्थितियोके प्रभावसे दिन प्रति दिन विलासके अधिकाधिक निकट आती जाती है। कलकत्ते जाते हुए, स्टेशन पर जब नरेन्द्र उसके सदेशको क्रोधित होकर ठुकरा देता है तो इस समाचारको जानकर वह एकदम स्तब्ध रह जाती है। कालीपद देखता है कि उसकी दृष्टि जैसी ही निर्विकार, वैसी ही शून्य है।

विलासका प्रेम उसके मनमें प्रविष्ट नही होता। "ग्रामके गहरे अँधेरेमे एकाकी कमरेमे उसके संगी-विहीन प्राण जब व्यथासे व्याकुल हो उठते है, तब कल्पनामे नि.शब्द पद-सचार करके जो धीरे-धीरे उसके बगलमे आ बैठता है, वह विलास नही और एक व्यक्ति है।" विजया यद्यपि भलीभाँति समझती है कि विलासके सम्मुख, ससार-यात्राके दुर्गम पथमे, इस हृदयमे रहनेवाले व्यक्तिका मूल्य बहुत कम है—वह जैसा अपटु है, वैसा ही निरुपाय भी—तथापि अपने मनसे वह उसे निकालनेमे असमर्थ है। नरेन्द्रके प्रति प्रेम उसके अस्तित्वका आधार हो गया है। इसी-लिए विलासके साथ विवाहकी भूमिका-स्वरूप, आशीर्वादके स्वर्ण-वलयको हथकड़ियोके समान, वह अवश हाथोमे पहनती है। पर उस मूर्छितप्राय निरुपाय नारीके हृदयकी गभीर वेदनाको कोई नही समझ पाता।

और जब एक दिन नरेन्द्र-द्वारा दिये गये अपने मृत पिताके पत्रोंसे उसे इस बातका पता चलता है कि उनकी हार्दिक इच्छा यही थी कि विजयाका विवाह नरेन्द्रके साथ हो, तो उसके मनका सघर्ष अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है। अपने ऋणी नरेन्द्रको दान देनेकी बातसे उसके मनको कष्ट पहुँचता है, परन्तु वस्तुत. तो नरेन्द्र ही उसका स्वामी है। जब उसे इस बातका ज्ञान होता है, तो रासविहारीकी कूटनीतिके चक्रमे पडकर नरेन्द्रके प्रति किये गये अपने व्यवहारको याद कर उसका मन सन्तापसे भर उठता है, परन्तु अब तो बाहर निकलनेका भी कोई मार्ग नही रहता।

इसी बीचमे एक गलतफहमी उसके उखडे हुए, उदासीन हृदयको नरेन्द्र-से दूर कर देती है। वह एक बार नरेन्द्रको दयालकी अविवाहित भाजं नलिनीके साथ देखकर शकित हो उठी थी, परतु जब वह यह सुनती कि रोज़ शामको नरेन्द्र कलकत्तेसे नलिनीको पढानेके लिए आया करता तो उसका सन्देह और भी दृढ हो जाता है। फिर एक बार जब वह दयालके घर नरेन्द्र और नलिनीको अत्यन्त घनिष्ट भावसे पास-पास बैठा देखती है तो उसके हृदयमे नरेन्द्रके प्रति सारा प्रेम एकबार ही मुरझा जाता है नलिनीके प्रति ईर्ष्याकी आग उसके मनमे भडक उठती है। नरेन्द्रकी ओर

तो वह देखती तक नही। उसके बाद यह पूछने पर, "मुझे शायद पहचान भी न सकी ?" वह शान्त अवज्ञाके साथ उत्तर देती है, "पहचान सकनेसे ही क्या पहचान करना जरूरी हो जाता है ?"

पर इसके बाद कथानक फिर एक बार मोड लेता है और विजयाको ज्ञात होता है कि नरेन्द्र केवल उसीसे प्रेम करता है। यह जानकर उसका मन निर्मल हो उठता है, परन्तु अब तो उसके बाहर निकलनेके सारे मार्ग अवरुद्ध है। वह नरेन्द्र तक पहुँचे किस प्रकार ? इस विकट परिस्थिति मे उसके स्नेहकी दृढता सचमुच दर्शनीय है। वह भग्न कण्ठसे कहती है, "नही नही, मरणके अतिरिक्त अब और कोई मार्ग नही है।" पर प्रेमका निर्बल-से-निर्बल सूत्र भी बडी कठिनाईसे टूटता है। नलिनी एव दयालकी चतुराईसे एक बडे नाटकीय वातावरणमे विजया और नरेन्द्रका विवाह हो जाता है, और इस प्रकार विजयाके प्रेमका और उपन्यासके कथानकका बडे सन्तोषजनक एव सुखद रूपमे अन्त होता है।

विजयाके नैसर्गिक प्रेमको नरेन्द्रका प्रतिद्वन्द्वी विलास, कुछ दुर्बल क्षणोको छोडकर, कभी प्राप्त न कर सका। यह सोचते हुए भी कि कुछ दिनोके बाद ही विलास उसका पति होने जा रहा है, विजया उसे अपने निकट न ला सकी। कुछ दिनोके लिए अवश्य, जब खिन्नता तथा उदासी-के वातावरणमे वह नरेन्द्रकी ओरसे विमुख हो गई थी, उसका विवश मन विलासकी ओर आकर्षित हुआ था। पर शीघ्र ही उसकी भूलका निराकरण हुआ तथा उसकी नैसर्गिक वृत्तियाँ पूर्ववत् हो गईं। यदि हम ध्यानपूर्वक देखे तो 'परिणीता' से लेकर 'गृहदाह' तक प्रेमकी प्रतिद्वंद्विताकी भावना एक निश्चित ढगसे विकसित होती हुई दिखाई देती है। 'परिणीता' की ललिताकी ओर शेखर तथा गिरीश आकर्षित है, पर प्रतिदान-स्वरूप ललिता केवल शेखरको ही अपना हृदय देती है। अत उसके मनमे किसी प्रकारका सघर्ष नही। 'दत्ता' मे विजयाको प्राप्त करनेके इच्छुक दो है—नरेन्द्र तथा विलास। यद्यपि विजया समग्र भावसे नरेन्द्रको ही चाहती है, परन्तु कुछ कालके लिए उसका झुकाव विलासकी ओर भी होता है। उसके मनमें

संघर्षकी भावना अपेक्षाकृत कुछ अधिक तीव्र हो जाती है। 'गृहदाह' के कथानककी मूल संवेदना उक्त दोनो उपन्यासोकी मूल सवेदनासे एकदम मिलती-जुलती है—ब्राह्म तथा हिंदू, एव धनी तथा निर्धनीका वही प्रेममूलक सघर्ष इसमे भी विद्यमान है, परन्तु अपने जीवनके उत्तरार्द्ध तक आते-आते, नारीके एकनिष्ठ प्रेममे शरत्का विश्वास कुछ डिग उठा था। 'गृहदाह' मे भी अचलाके दो प्रेमी हैं—महिम और सुरेश। पर यहाँ अचला-का हृदय दोनोकी ओर समान भावसे आकर्षित है। उपन्यासके अन्त तक शायद लेखक स्वय नही निश्चित कर सका कि अचला महिमको अधिक चाहती है अथवा सुरेशको। मनोविज्ञानके प्रभाव तथा अवस्था एव अनुभवमे वृद्धिके साथ-साथ, लेखककी नारीमे रहस्यात्मकताकी मात्रा बढती गई है, इसका स्पष्ट आभास हमे उपर्युक्त विवेचनसे मिलता है।

जैसा कहा जा चुका है, 'दत्ता' मे केवल दो नारी-चरित्र हैं—विजया तथा नलिनी। जहाँ विजया पूरे उपन्यासमे छाई रहती है, वहाँ नलिनीका कथानकमे स्थानीय महत्त्व है। इसीलिए उसके चरित्रके अध्ययनकी सामग्री हमे अधिक नही मिलती। नलिनी विजयाके यहाँ एक कर्मचारी दयालकी सुशिक्षिता एव रूपवान भाजी है। अवस्थामे विजयासे वह कुछ ही बडी है। नरेन्द्रके प्रति उसकी आत्मीयता अत्यन्त सहज भावसे हो जाती है। पर उसका नरेन्द्रके साथ केवल मैत्रीका सबन्ध है। हृदयकी वह निष्कपट तथा सरल जान पड़ती है। इसीलिए उसकी हार्दिक इच्छा है कि नरेन्द्र और विजया परस्पर एक सूत्रमे बँध जाँय, और अपने इस निश्चयको वह अनेक विघ्न-बाधाओके रहते हुए भी कार्य-रूपमे परिणत कर डालती है। उसके मनमे सेक्सकी विकृतियाँ नही हैं, इसीलिए उसका व्यक्तित्व इतना उदार, इतना सरल तथा इतना विनोद-प्रिय है। उसका जितना चरित्र उपन्यासमे अंकित है, वह नितात पारदर्शक तथा समन्वित है। दो बिछुडे हुए हृदयोको मिलानेका पुण्य उसकी प्रकृतिको स्पृहणीय बना देता है।

गृहदाह

०

विचार एव विधान—दोनो ही दृष्टियोसे 'गृहदाह' शरत्‌बाबूकी अत्यन्त प्रौढ कृति है। लेखककी नारी-चरित्र सवन्धी विचार-भूमिमें उसका विशिष्ट स्थान है। 'परिणीता' और 'दत्ता' मे अकित प्रेमकी प्रतिद्वद्विता एव रागात्मक सघर्ष अपनी चरम सीमापर 'गृहदाह'में पहुँचा है। उपन्यासके शीर्षकसे ही उसके सारे वातावरणकी एक झलक हमारी आँखोके सामने आ जाती है। किसीके जलते हुए घरकी सवेदनासे प्रेरित होकर शरत्‌ने इसकी रचना की होगी। 'गृहदाह' के पात्रोका विकास प्रारभसे ही शका और सशयके वातावरणमे होता है। उनके अभिशप्त व्यक्तित्व मानसिक अस्थिरता एव दुर्बलताके प्रतीक है। इसीलिए उपन्यासके कथानकमे पाठक एक क्षणके लिए भी जी भरकर साँस नही ले पाता। उसका मन सहमा-सहमा-सा रहता है। पग-पगपर उसे किसी आनेवाली आकस्मिक दुर्घटनाका आभास मिलता है। इन्ही कारणोसे 'गृहदाह' को यदि आदिसे लेकर अत तक एक सिसकती हुई ट्रैजडी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

यह बात निश्चित है कि 'गृहदाह' की घटनाओकी यथाक्रम योजना विना उसे आद्योपान्त पढे हुए समझ लेना सभव नही। यहाँपर बहुत सक्षेपमे हम उसकी मूल-कथाकी कुछ चर्चा करेगे। महिम और सुरेश अभिन्न मित्र है। महिम निर्धन, परतु प्रकृतिका अत्यन्त दृढ है। इसके विपरीत सुरेश एक धनाढ्य गृहका लडका है, पर अनेक गुणोके होते हुए भी उसका स्वभाव अपेक्षाकृत अस्थिर है। इन दोनो ही युवकोका अपना निकटका कोई सबन्धी नही है। महिम एक अचला नामकी ब्राह्म युवतीसे प्रेम करता है, तथा उससे विवाह करना चाहता है, किन्तु ब्रह्म-समाजका कट्टर

विरोधी होनेके कारण सुरेश ऐसा करनेसे महिमको रोकता है। इस विवाहमें अवरोध डालनेके लिए वह स्वय अचलाके पिताके पास जाता है। पर वहाँ पहुँचकर अचलाके शील-सौंदर्य पर वह भी कम मुग्ध नही होता। उसके पिताका कई हजारका ऋण वह शीघ्र चुका देता है। सुरेशका धन-वैभव तथा उसके गुणोको देखकर केदारबाबू अचलाका विवाह उसीसे करना चाहते हैं।

यहीसे अचलाके हृदयमें रागात्मक सघर्षका प्रारम्भ हो जाता है। पर विवाह वह महिमसे ही करती है। पति-गृह पहुँचनेपर अचलाकी भेंट मृणालसे होती है, जिसका विवाह पहले महिमके साथ होनेवाला था। यहाँ आकर उपन्यासके सभी पात्रोपर संशय एव शकाकी एक ऐसी छाया पड़ती है, जिससे वे अन्त तक नही उबर पाते। अचला मृणालके कारण महिम पर सदेह करती है, और महिम सुरेशके कारण अचलापर सन्देह करता है। इस प्रकार पारस्परिक विश्वासके अभावके कारण, पति तथा पत्नी-दोनोमें-से कोई भी एक दूसरेसे सन्तुष्ट नही रह पाता। इसी बीच नव-विवाहित युग्मके यहाँ सुरेश जा पहुँचता है। उसके आगमनसे कलहके वातावरणमें और भी कटुता उत्पन्न हो जाती है। अन्तत महिमसे अप्रसन्न होकर अचला सुरेशके साथ वापस अपने पिताके यहाँ कलकत्ते चली आती है।

गाँवमे अकेला महिम बीमार पडता है। सुरेश उसे अपने यहाँ लिवा लाता है। सबकी सम्मिलित परिचर्याके फलस्वरूप महिम स्वस्थ होता है, और जल-वायु परिवर्त्तनके लिए सुरेश और अचलाके साथ जबलपुरके लिए प्रस्थान करता है। रास्तेमे रातके समय सुरेशके मनके असुर जागृत होते हैं, और वह अचलाको धोखा देकर उसे जनाने डिब्बेसे इलाहाबादके पहले ही मुगलसरायपर उतार लेता है। सोता हुआ बेचारा महिम ट्रेनमें चला जाता है। इस प्रकार पतिसे अलग किये जानेपर पहले तो अचला सुरेशसे बहुत अप्रसन्न होती है; पर अन्तमे कलहके शान्त होनेपर वह छद्म नाम धारणकर सुरेशके साथ बडे राजसी ठाठ-बाटके साथ डेहरीमें रहने लगती है।

तभी इधर-उधर घूमता हुआ महिम वहाँ पहुँचता है। उससे साक्षात्कार होनेपर लज्जा और ग्लानिसे सुरेश तथा अचला दोनो गड जाते हैं। पर कोई कुछ कहता नही। एक दिन पासके गाँवमे प्लेगकी परिचर्याके लिए गये हुए सुरेशकी मृत्यु हो जाती है। उसकी बीमारीका समाचार जानकर महिम और अचला भी वही पहुँच गये थे। सुरेशकी अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त कर महिम और अचला वापस डेहरी आते हैं। विना किसी विशेप वार्त्तालापके निरुपाय अचलाको छोडकर महिम वहाँसे चला जाता है। और इस प्रकार 'गृहदाह' का कार्य पूर्ण होता है। इसके उपरान्त मृणालके आग्रह के फलस्वरूप महिमने अचलाको फिर स्वीकार किया या नही, इस बातका कोई आभास लेखक हमे नही देता। शायद इससे आगेकी कथाको वह स्वय न जानता हो, शायद नियति-चक्रसे घायल अचलाके दुर्भाग्य पर वह और प्रकाश न डालना चाहता हो। जो भी हो, शका और सदेह, सशय और अविश्वासकी चरम परिणति दारुण यत्रणामे हो जाती है, जिसकी कथा पढकर कठोर-से-कठोर हृदयवाला व्यक्ति भी एक बार सिहर उठता है। यह है इन मानवीय मनोविकारोके रगमच 'गृहदाह' की मूल रूप-रेखा।

'गृहदाह' के विस्तृत कथा-भागमे केवल दो प्रमुख नारीपात्र हमारे सामने आते हैं—अचला और मृणाल। वीणापाणिका उपन्यासमे स्थानीय महत्त्व है, तथा शेप बुआजी और हरियाकी माँ पार्श्व-चरित्र हैं। शरत्के नारी-पात्रोमे शायद अचलाका चरित्र ही सबसे अधिक रहस्यमय एव उलझा हुआ है। 'चरित्रहीन' की किरणमयी तथा 'शेप प्रश्न' की कमलके चरित्र भी जटिल हैं, परन्तु उनकी जटिलता केवल इस कारण है कि उनकी मान्यताएँ और धारणाएँ प्राचीन परम्पराके विरुद्ध हैं, उनके व्यक्तित्वमें विद्रोहका भाव अधिक है। इसलिए उनकी जटिलता सापेक्षिक दृष्टिकोण से है। पर अचलाका चरित्र तो अपने आपमे ही वडी अँधेरी गहराइयोको लिये हुए है। उसका चचल एव अस्थिर मन मनोविज्ञानके वडे-से-वडे पण्डितोंके निकट अध्ययनकी वस्तु है। अचलाके इस गहन चरित्रका विश्लेषण हम सर्वप्रथम करेगे।

अचलाके व्यक्तित्वका सबसे बडा विरोधाभास यह है कि व्यावहारिक सयम तथा मानसिक असयम दोनो साथ ही साथ उसके स्वभावमे स्थित हैं। उसके मानसिक असयमकी विवेचना हम आगे चलकर करेगे, यहाँ उसके व्यावहारिक सयमकी कुछ चर्चा आवश्यक है, परन्तु उसकी यह सयत प्रकृति जितनी उसके विवाह-पूर्व जीवनमे द्रष्टव्य है, उतनी उसके विवाहके बादके जीवनमे नही। उपन्यासके प्रारम्भिक परिच्छेदोमे इस 'सयतवादिनी तरुणी' के 'शान्त और दृढ प्रतिवाद' उसके 'शान्त मृदु कण्ठ'से सुनकर सहसा चकित रह जाना पडता है। महिमके सबन्धमे नवागत सुरेशके बडे-से-बडे आक्षेपो-को वह चुपचाप सुन लेती है। तब सुरेश सोचता है, 'यह लडकी शिक्षामे, ज्ञानमे, उमरमे,—सभव है सभी विषयोमे उसकी अपेक्षा छोटी है, फिर भी उसने इन कुछ ही क्षणोकी बातचीतमे उसे जो इस कदर पराजित कर दिया, सो सिर्फ असाधारण सयमके बलपर ही। इसीलिए वह इतनी शान्त होकर भी इतनी दृढ, इतना जानकर भी इतनी नीरव है .. ...एक क्षणके लिए भी चचल होकर, बहस करके, कलह करके, अपनेको छोटा नही किया। बराबर अपनेको दमन किया है।' स्वल्पभाषिणी होनेसे उसकी धीरता और भी बढ जाती है। क्रोधका उसकी प्रकृतिमे अधिक स्थान नही, वह प्रारम्भसे ही क्षमाशील दिखाई देती है। एक दिन उसको और उसके पिताको सुरेशने जो बडे तीव्र स्वरमे कठोर बाते सुनाई थी, उनके लिए वह उसे हृदयसे क्षमा कर देती है। कलकत्तेमे आये हुए महिमकी बीमारीका समाचार सुनकर वह जरा भी चचल नही होती। बडे स्थिर चित्तसे वह सुरेशके घर जाकर अपने पतिकी परिचर्या करती है, परन्तु जैसा, कहा जा चुका है, अचलाकी यह व्यावहारिक स्थिरता उसके जीवनके पूर्वार्द्ध मे ही है। विवाहके बादके मानसिक सघर्षके समय तो वह बहुत चिडचिडी हो जाती है, बात-बात पर खीज उठती है। वैसे उसे अपने पितापर विशेष श्रद्धा नही है, पर जब सुरेश उनके सबन्धमे वृद्ध रामचरणसे कुछ चर्चा करता है तो वह अप्रत्याशित रूपसे क्रुद्ध हो जाती है। इसी प्रकार सुरेशकी बीमारीमे परिचर्याके लिए कभी वह आती

है, तथा कभी नही आती । वस्तुत पति-परित्यागके बादसे उसके मनकी वृत्तियाँ उसके वशमे नही रह जाती ।

ब्राह्म होते हुए भी धर्म-सहिष्णुताका अचला परित्याग नही करती। यत्र-तत्र उसकी वाक्पटुता और व्यावहारिकताका भी हमे आभास मिलता है। उसके चरित्रके ये गुण उसे एक भद्र महिला ठहराते हैं। वृद्ध एव अनुभवी रामबाबू भी सोचते है, 'वह वास्तवमे भद्र महिला है। अपनी किसी भी सहूलियतकी खातिर वह हरगिज झूठ नही बोल सकती।' वैसे अचलाकी पितृभक्ति कम नही है, पर केदारबाबूकी मानसिक दुर्बलताओसे परिचित होनेपर, वह उनपर अश्रद्धा करने लगती है। इस प्रकार जीवनके बाह्य और ऊपरी उपकरणोको लेकर अचलाकी भद्रताके सबन्धमे कोई सन्देह नही किया जा सकता। पर जब हम उसके मनस्तत्त्वकी सूक्ष्म परीक्षा करते है तो वहाँ उसकी कमज़ोरियोका ही अधिकार दिखाई देता है। अचलाके मनको यदि मानसिक दौर्बल्यके प्रतीक मनोविकारोका रगस्थल कहा जाय तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। पर यह निर्विवाद है कि उसके मनकी भद्रताने, चाहे वह कितनी ही कम क्यो न हो, उसके जीवनको अधिकाधिक निर्वल एव अशक्त वना दिया है। इस भद्रताके कारण, अथवा इस भद्रताके 'आचरण' के कारण ही, वह सुरेश और महिम दोनोमे-से किसीको भी सन्तुष्ट न कर सकी ऐसा कहना आशिक रूपसे अवश्य ही सत्य है। उसकी मानसिक अस्थिरताके और भी कई कारण है, पर उनमे-से एक यह भी है।

अचलाके हृदयमे परस्परविरोधी भावोकी स्थिति वडे आश्चर्य-जनक रूपसे है। एक ओर मनकी वह इतनी अस्थिर और चचल है, पर दूसरी ओर उसके व्यक्तित्वकी दृढता भी दर्शनीय है। अपने पिता एव सुरेशकी इच्छाके विरुद्ध वह महिमको उसके प्लेग-ग्रस्त मित्रके घर जानेसे आग्रहपूर्वक रोकती है। इस सवन्धमे सुरेशके यह पूछनेपर "इसमे अव किसी तरहका परिवर्त्तन सभव नही ?" वह स्पष्ट एव निर्भीक स्वरमे सिर हिलाकर सक्षिप्त उत्तर देती है, "नहीं"। इस दृढताकी पृष्ठभूमिमे कही-कही उसका

हठ भी वर्त्तमान है। पर इसमे कोई सन्देह नही कि अचलाके चरित्रकी यह दृढता उसके लिए स्वाभाविक नही है। जब किसी मानसिक सघर्षसे वह बहुत पीडित हो उठती है, तब भावावेगमे शीघ्र ही वह अविचलित होकर किसी भी निष्कर्षपर पहुँच जाती है। इस प्रकार उसके मनकी अस्थिरता ही उसके चरित्रमे यत्र-तत्र मिलनेवाली दृढताका मूल-स्रोत है। महिम और सुरेशको लेकर जब उसका रागात्मक द्वन्द्व अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है तो वह महिमको बुलाकर उसके दाहिने हाथमे अपनी अँगूठी पहना देती है। वह कहती है, "शरमानेके लिए अब मेरे पास समय नही है ....अब मुझसे सोचा नही जाता। अब तुम्हें जो कुछ करना हो, करना।" किन्तु पति-परित्यागके उपरान्त उसने जो लज्जा, ग्लानि एव अपार मानसिक सतापके भारको सिरपर उठाकर अपनी सहनशीलता दिखाई है, वह अनुपम है।

विषम परिस्थितियोमे अपनेको उनके अनुकूल बना लेनेकी क्षमता अचलामे है। कथानकके प्रारम्भमे सुरेशसे असन्तुष्ट होते हुए भी पिताकी आवश्यकताको देखकर वह उसका ऋण स्वीकार कर लेती है। पितृ-गृहमे नितान्त अभिजात्य वातावरणमे पलनेके उपरान्त जब वह महिमके साथ अपनी ससुरालके टूटे-फूटे मकानमे पहुँचती है तो वह किसी-न-किसी प्रकार अपनेको वहाँकी ग्रामीणताके अनुकूल बना लेती है। अचलाके चरित्रमे बुद्धिका पर्याप्त विकास हो चुका है। सुरेश और मृणालका विवाह कर वह अपनेको दोनोसे सबधित गलतफहमियोसे मुक्त करना चाहती है। सुरेश-से वह कहती है, "आपके समक्ष मै असख्य ऋणोसे ऋणी हूँ। इसके सिवा मै आपकी हिताकाक्षिणी भी हूँ। आपको मै स्वस्थ स्वाभाविक गृहस्थके रूपमे देखना चाहती हूँ। एक दिन आप व्याह करनेको तैयार थे, आज मेरा विशेष अनुरोध है कि आप इसे स्वीकार करे।" अचलाके इस प्रस्तावसे स्पष्ट है कि वह किस प्रकार एक ही तीरमे दो निशाने मारना चाहती है। इसमे कोई सन्देह नही कि यदि सुरेश इस प्रस्तावको स्वीकार कर लेता तो कदाचित् 'गृहदाह' के कथानककी गतिविधि ही बदल जाती। उस

दशामे न स्वय अचला मृणालके कारण महिम पर सन्देह कर सकती, और न महिम ही सुरेशके कारण अचलापर सन्देह कर पाता।

उपन्यासमे अचला मुख्य रूपसे महिम, सुरेश तथा मृणालसे सबन्धित है। उसके चरित्रका विकास इन्ही तीनो व्यक्तियोके सपर्कके कारण होता है। महिमके लिए उसके हृदयमे नैसर्गिक प्रेम है। सुरेशके विवाह सबधी प्रथम प्रस्तावको वह स्पष्ट रूपसे अस्वीकृत कर देती है, क्योकि अनन्य भावसे वह केवल महिमको ही चाहती है तथा उसीके हाथमे विवाहके प्रस्ताव-स्वरूप वह अपनी अँगूठी पहनाती है। ईर्ष्याग्रस्त सुरेश जब महिमको अपने साथ एक मित्रको देखनेके लिए प्लेगके क्षेत्रमे ले जाना चाहता है, तो वह दृढतापूर्वक इसका विरोध करती है। जबलपुर जाते समय ट्रेनमे उसे महिमकी ही चिन्ता रहती है, सुरेशकी नही। और जब सुरेश उसे छलपूर्वक महिमसे अलग कर देता है तो वह अत्यन्त विकल हो जाती है। यहाँतक कि वह सुरेशके ऊपर उसे मारने तकका आक्षेप लगा देती है, किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि महिमकी उदासीनताने उसे उसके प्रति विमुख कर दिया है। गाँवसे तो वह महिमसे असन्तुष्ट होकर चली आई थी, फिर कभी न जानेके लिए। उसके मस्तिष्कमे बार-बार यह विचार आता है कि वह महिमसे प्रेम नही करती और एक बार महिमके सम्मुख ही इस तथ्यको वह प्रकट भी कर देती है। महिम और अचला वस्तुत. एक दूसरेको प्यार करते हुए भी क्रमशः सुरेश और मृणालके कारण एक दूसरेके निकट नही आ पाते। महिम यदि अचलाके प्रस्तावको मानकर उसे किसी पश्चिमके शहर ले जाता, जहाँ सुरेश और मृणाल दोनो उससे दूर रहते, तो उनके प्रेम-का ऐसा दु खद अन्त न होता। वस्तुत महिम और अचलाके बीच सुरेश ही ऐसी ऊँची दीवार है, जिसके कारण वे एक-दूसरेसे मिल नही पाते। सुरेशकी मृत्युके उपरान्त अचला महिमका हाथ पकडकर कहती है, "अब मैं कमजोर नही हूँ, तुम्हारा हाथ पकडकर जितनी दूर कहो, जा सकूँगी।" पर तब तक तो महिम और अचला एक दूसरेसे इतनी दूर हो गये है कि एकदम निकट रहते हुए भी वे परस्पर नही मिल सकते। यद्यपि यह

सच है कि 'इस लडकीको केन्द्र करके उसके (महिम के) जीवनके ऊपरसे जो तूफ़ान वह गया है, वह प्रलयकी तरह असीम है, उसकी कोई उपमा नही।'

महिमके प्रति नैसर्गिक प्रेम रखती हुई भी, अचला सुरेशकी ओर कम आकर्षित नही है। पिताकी इच्छा होनेपर भी यद्यपि वह पहले सुरेश द्वारा किये गये विवाहके प्रस्तावको अस्वीकृत कर देती है, पर बादमें कुछ तो महिमकी उदासीनताके कारण और कुछ सुरेशकी प्रकृतिके कारण, वह सुरेशसे भी अपनेको अलग नही कर पाती। एक बार वह जब सुरेशके साथ विवाहके लिए प्रस्तुत हो जाती है तो केवल विवश होकर ही। वस्तुत. अचलाके प्रथम यौवनकी प्रथम उमगोका एकमात्र अधिकारी महिम ही है। प्रारम्भमें वह महिमसे प्रेम करती है और सुरेशके प्रति श्रद्धालु है। सुरेशसे बीचमें असन्तुष्ट हो जानेपर भी वह उसकी दया एव निर्भीकतापर गर्व करती है। महिमकी पत्नी बन जानेपर भी अचलाके अवचेतनमे सुरेशके प्रति प्रेम बराबर छिपा रहता है। ज्यो-ज्यो वह उसे असत्य एव मिथ्या समझने-का प्रयत्न करती है, त्यो-त्यो वह और भी प्रबल होता जाता है। सुरेशके बार-बार यह पूछनेपर कि महिमके साथ वह दुखी तो नही है, एक बार उसके मुँहसे निकल ही पडता है—"मैं क्या पत्थर हूँ सुरेश बाबू ?" इस प्रकार वह बता देती है कि इस सबधमें उसकी सहनशीलता असाधारण नही है। इसके उपरान्त जब छलपूर्वक सुरेश अचलाको महिमसे अलग कर देता है, तब वह निश्चित रूपसे सुरेशपर अश्रद्धा करने लगती है। पर अब तक समयके झँकोरोमें उसका सुरेशके प्रति प्रेम इतना पुष्ट हो चुका है कि वह उसे छोड नही पाती। डेहरीमें रहते समय उसकी सेक्स सबधी शारीरिक एव मानसिक अतृप्ति उसे उसकी इच्छाके विरुद्ध, सुरेशके प्रति अधिकाधिक निकट लाती है। कथानकके अततक पहुँचते-पहुँचते उसका सुरेशके लिए प्रेम दयामें परिणत हो जाता है। सुरेशका परित्याग वह किसी भी समय नही कर पाती, किंतु इसमें कोई सदेह नही कि अचला 'बडी—बहुत बडी' तभीतक है, जबतक वह महिमसे सबधित है। महिमको छोड देनेसे कदाचित्

उसकी सारी महिमा चली जाती है। सुरेश तो उसके हृदयकी शायद सबसे बडी दुर्बलता है।

अचलाका मृणालसे सबध ईर्ष्यामूलक है। बार-बार मजाकमे कहनेपर अचला मृणालको सचमुच ही सौत समझ लेती है। पहली बार भेट होने पर वह मृणालपर सपत्नी भावसे सदेह करती है। यद्यपि वह मनको समझाती है, "इसमे वास्तवमे मज़ाकके सिवा और कुछ भी नही, जी खराब करनेकी कोई ऐसी बात नही,—मेरा मन ही अपवित्र है" पर इससे उसका सशय दूर नही होता। अतत. वह इसी निर्णयपर पहुँचती है, 'इतने दिनो तक एक गृहस्थीमे रहकर कोई पुरुष इस स्त्रीको बगैर प्रेम किये कैसे छोड सकता है?' किंतु इतना होनेपर भी मृणालका सरल स्वभाव उसे मुग्ध किये बिना नही रहता।

ऊपर हमने अचलाके मनको विभिन्न मनोविकारोका शाश्वत रगस्थल कहा है। उसके चरित्रके बाह्य उपकरणोकी परीक्षा करनेके उपरात अब हम बहुत सक्षेपमे उसके मनस्तत्त्वका सूक्ष्म अन्वीक्षण करेगे। कुछ तो अपने अस्थिर हृदय और कुछ परिस्थितियोके प्रभावसे अचलाका प्रेम सुरेश और महिम दोनोकी ओर ही खिचता हुआ दिखाई देता है। इस सबधमे एक मत यह भी हो सकता है कि अचला कदाचित् इतनी सीधी, इतनी भली है कि अपने दो प्रेमियोमेंसे वह किसीको असतुष्ट नही करना चाहती। इस नीतिके फलस्वरूप गलतफहमीका जन्म होता है, और यह गलतफहमी, यह पारस्परिक विश्वासका अभाव ही मानव-जीवनकी भयानकतम ट्रैजडी-का मूल स्रोत है। अस्तु, अचलाके मनमे आदिसे लेकर अततक एक रागात्मक सघर्ष विद्यमान रहता है। इस सबधमे वह महिमको अपनी सफाई भी देना चाहती है, पर अपनी हठवादिताके कारण वह उसे सुनना नही चाहता। इससे अचलाका अत करण और भी शुद्ध नही हो पाता। अपने जलते हुए घरमे जानेसे वह सुरेशको भी रोकती है और महिमको भी। महिम नही मानता पर सुरेश रह जाता है। और यह घटना ही मानो प्रतीक रूपसे 'गृहदाह' की मूल सवेदना हो जाती है।

अचलाके मनका प्रेममूलक सघर्ष उसके व्यक्तित्वमे घोर अशातिको जन्म देता है। सुरेशके घरमे महिमकी परिचर्या करते समय उसे स्पष्ट दिखाई देता है कि 'कोई कही उसे उठते-बैठतेमे कॉटा-सा चुभा रहा है।' जबलपुर जाते समय उसकी चित्त-वृत्तियाँ और भी अस्थिर हो जाती है। ट्रेनमे अपने कटु व्यवहारके लिए क्षमा माँगती हुई वह वीणापाणिसे कहती है, 'मेरा मन खराब रहता हे।' अचलाके मुखसे निकला हुआ यह छोटा-सा वाक्य उसकी मानसिक यत्रणाका यथार्थ परिचायक है। वह अनुभव करती है 'मानो गाढ अधकारने उसके आदि-अतको पूर्ण-रूपसे निगल लिया है। प्रकाशका चेहरा,—आनदका मुँह अब वह कभी देखेगी ही नही, इससे इस जीवनमे अब उसे मुक्ति मिलेगी ही नही।' गहरी पीडासे दुखी होनेपर उसकी भगवानमे आस्था भी कुछ डिगने लगती है, जिसने उसके यौवनके प्रथम आनदको असत्यसे इस प्रकार विकृत कर दिया है। वृद्ध रामबाबूको स्पष्ट दिखाई देता है कि 'इसके मनमे कोई एक भयानक वेदना भट्ठीकी आगकी तरह दिन-रात जल रही है।'

अचलाके मनमे ईर्ष्या, क्रोध और गर्वकी भावना भी यथास्थान उपस्थित है। इन सबका मिला-जुला स्वरूप हमे उस समय दिखाई देता है जब वह सुरेशके मुखसे मृणालके सतीत्वकी प्रशसा सुनकर कहती है, "ससारमे सिर्फ मृणाल ही एकमात्र सती नही, सुरेश बाबू, ऐसी भी सती मौजूद है, जो मन-ही-मन एक बार किसीको पति-रूपमे वर लेती है तो फिर हजारो लाखो प्रलोभन दिखानेपर भी उन्हे डिगाया नही जा सकता।" किंतु अपने सबधमे अचलाकी यह गर्वोक्ति सच नही उतरती और उसे अपने यौवनका सबसे मादक समय डेहरीमे रहकर असत्य एव लज्जाकी छायामे बिताना पडता है। यह सच है कि अचलाको अपनी भूलोका पश्चात्ताप है, उसे आत्मग्लानि भी है, किंतु उसका चरित्र इतना सशक्त नही कि वह असत्‌को छोड़कर सत्‌की ओर बढ सके। अपने रुग्ण पतिकी परिचर्या करके एक बार उसका अत करण नितात शुद्ध और 'गगाजलकी भाँति निर्मल और पवित्र' हो जाता है, किंतु इतने पर भी उसके मनकी विकृति उसे पतनकी

ओर ही ले जाती है। जब महिम उसे डेहरीमे सुरेशके साथ देखता है, उस समय तो वह अपनी मृत्युकी कामना करती है, पर इसके बाद भी वह सही रास्तेपर नही आ पाती। वस्तुत अचलाके प्रेममे त्यागसे अधिक भोग है। मरणासन्न सुरेश महिमसे ठीक ही कहता है, "उसका प्रेम तुम्हारी गरीबीके साथ ऐसी उलझनमे पड गया कि,—खैर जाने दो। ऐसी सुदर चीजको मैने मिट्टीमे मिला दिया,—न तो खुद पा सका न दूसरेको पाने दिया।"

अचलाके वैवाहिक जीवनको लेकर काफी विचार-विमर्श किया जा सकता है। अपनी पति-भक्तिपर उसे झूठा विश्वास है और यही उसके पतनका मूल कारण है। एक-आध बार वह परिस्थितियोके चक्रसे निकलनेका यत्न भी करती है, परतु तब सुरेश उसका पीछा नही छोडता। पर इसमे कोई सदेह नही कि उसका पति-प्रेम इतना सबल नही है कि वह उसे सुरेशके आकर्पणसे मुक्त कर सके। वह स्वय सोचती है कि 'उसका विवाहित जीवन पतिके साथ एक तरहसे विरोधमेंसे ही गुजरा है।' पहले केवल उसका मन व्यभिचारी था, बादमे उसका शरीर भी वैसा ही हो गया। इसीलिए वृद्ध रामचरण तथा वीणापाणिके सरल तथा निष्कपट व्यवहारकी तुलनामे असत्य एव लज्जाकी छायामे पलनेवाली अचलाकी जीवनचर्या और भी भयानक, अशात दिखाई देने लगती है।

सुरेश अचलाको एक स्थानपर 'गणिका' कहता है। क्या सचमुच ही वह मानसिक रूपसे गणिका नही है? उसकी व्यभिचार-बुद्धिने ही उसे इतना दुर्वल, इतना दयनीय बना दिया है। वस्तुत मनोविज्ञानकी दुहाई देकर साहित्य एव समाजके आदर्शोको खडित नही किया जा सकता, क्योकि मनुष्य मूलत पशु है और इसीलिए उसकी सहज वृत्तियाँ (instincts) पाशविक अधिक है। प्रेमकी अस्थिरता सभवत इसी प्रकारकी सहजवृत्ति है जो मनुष्यको अपनी आदिम प्रकृतिमे मिली है। मनोविज्ञानके सिद्धातोके अनुसार जब व्यक्ति किसी एक पदार्थपर ८–१० सेकेडसे अधिक अपना ध्यान एक बारमे नही जमा सकता तो ऐसी परिस्थितियोमे एकनिष्ठ

प्रेमकी सत्तापर अविश्वास करना स्वाभाविक ही है। पर यहाँ हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस प्रकारकी मनोवृत्ति मानव-समाजके लिए कोई वहुत स्पृहणीय एव गर्व करनेकी वस्तु नही है। अपनी आदिम प्रकृतिमे मनुष्य वडा कठोर और वर्वर है, वह मूलत. पशु ही है। किंतु परिष्कारके द्वारा हम हैवानसे इसान वनते हैं। इस परिष्कारके अभावमे 'आहार, निद्रा, भय' आदि से सयुक्त मनुष्य और पशुमे अतर ही क्या है? पशु किसी वस्तु अथवा व्यक्तिके साथ अपना अपेक्षाकृत स्थायी रागात्मक सवध नही जोड सकता। पर इस सहज-वृत्तिसे ऊपर उठकर मनुष्यमे भावनाका भी समावेश है। अत. मनोविज्ञानके आधारपर प्रेमकी अस्थिरताको मानव-जीवनका सत्य नही माना जा सकता। ऐसा जान पडता है कि मनोविज्ञान-का सत्य एक है, और समाजका सत्य दूसरा।

अचलाके व्यक्तित्वमे एकनिष्ठ प्रेमका अभाव है। मनकी अस्थिरता उसके चरित्रकी प्रमुख समस्या है। इस समस्याके मूलमे कई कारण है, जिनमे-से दो प्रमुख हैं। एक तो उसकी प्रकृति, उसका मनोविज्ञान असा-धारण रूपसे अस्थिर प्रकृतिका है। दूसरे वह अपनी इस दुर्वलताको सामा-जिक नैतिकताके नियत्रणमे भी नही रखना चाहती। जीवन-मरणमें सिर्फ एक ही को अनन्य गति समझकर चिंता करने लायक उसका सीमावद्ध मन नही है। वह मन एक पतिके जीवनकालमे ही दूसरेको पति कहनेमे अपरावके भारसे चाहे कितना ही पीडित क्यो न हो, लज्जा और अपमान-की ज्वालासे चाहे कितना ही क्यो न जल रहा हो, परतु धर्म और परलोक-की गदा उसे धराशायी करनेका भय नही दिखा सकी। ब्राह्म-समाजकी स्वच्छद प्रवृत्तियाँ उसकी रागात्मक अस्थिरताको और भी प्रश्रय देती है। इस सामाजिक नियत्रणके अभावमे तो शायद ससारके सारे स्त्री-पुरुषोका मनोविज्ञान व्यभिचारी हो जाता, और इसीके कारण अचलाके व्यक्तित्व-मे अन्नदा जीजीका वह सतीत्व, वह एकनिष्ठ प्रेम नही है, जिसके कारण शरत् कभी नारीके कलकपर विश्वास नही कर सके तथा नारी जातिको कभी छोटा करके नही देख सके। पर इसमे कोई सदेह नही कि प्रेमकी इस

अस्थिरतामे व्यक्तिके मानसिक सस्थानका वहुत बडा हाथ है, और यह निश्चित है कि अचलाका मानसिक सस्थान दृढ एव सबल न होकर अपेक्षाकृत अस्थिर एव निर्बल है। इसीलिए आदि-से-अततक वह स्वय अपनी भावनाओको नही पहचान पाती। मानसिक विकारोका कोलाहल उसके व्यक्तित्वमे इतना अधिक है कि वह अपनी आत्माकी आवाज नही सुन सकती। तभी उसका हर कदम गलत रास्तेपर पडता हुआ दिखाई देता है। अचलाके चरित्रका अध्ययन हमे आशु बाबूके प्रसिद्ध वाक्यका स्मरण दिला देता है, 'स्रोतके खिचावसे कौन कब पास आ जाता है और कौन कब दूर चला जाता है, इसका कुछ भी हिसाब कोई नही जानता।' इस दिशामे 'शेष-प्रश्न' की कमल और 'गृहदाह' की अचला काफी मिलती-जुलती हैं। पर उनमे एक सुस्पष्ट अतर है। अपनी बौद्धिकताके कारण जहाँ कमलको इतना ध्यान रहता है कि किस समय वह किसे प्यार कर रही है, वहाँ अपनी भावात्मकतामे अचला शायद अततक स्वय ही यह नही समझ पाती कि वह महिमको अधिक प्यार करती है या सुरेशको।

अचलाकी व्यभिचार-बुद्धिका एक कारण उसकी अत्यधिक भद्रता भी हो सकती है। वह एकाएक यह नही जान पाती कि किस प्रकार सुरेशको निराश कर वह महिमके पास चली जाय। वह सुरेशसे कहती है, "तुमने मेरा कुछ भी क्यो न किया हो, पर मै अपने लिए तुम्हे मरने नही दे सकती।" यहाँतक कि बीमार सुरेशको घरतक लानेके लिए एक डोली मिलनेपर वह अपना सर्वस्वतक देनेको तैयार है। वस्तुत अचलाकी आत्मा एकदम मर ही नही गई है, पतनोन्मुख होते हुए भी वह ऊपर उठनेकी कोशिश करती है। और भलाई-बुराईके बीच यह कश-म-कश ही 'गृहदाह' की ट्रैजडीका मूल कारण है।

अचलाकी उक्त भद्रता सुरेशको किसी हदतक उसे गलतफहमीमें डालती है, उसे अपनी ओर आकर्षित करती है। इसीलिए सुरेश उसका पीछा नही छोडता। अचलाको पानेके लिए सुरेशके मनका यह धैर्य भी अचला-के चारित्रिक पतनका एक कारण माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त

अपने पतिको लेकर मृणालके प्रति अचलाकी ईर्ष्याका उल्लेख भी इस प्रसगमे आवश्यक है।

अचलाकी मानसिक दुर्बलताका विश्लेषण करते समय हमें इस बातका ध्यान रखना पडेगा कि उसके चरित्रकी अस्थिरताको बढानेमे महिमकी उदासीनताका भी हाथ है। उपन्यासकारके शब्दोमे, 'महिमके प्रति अचलाकी सबसे बढकर खीज यह थी कि स्त्री होकर भी वह एक दिनके लिए भी पतिकी दु ख-दुश्चितामे हिस्सा नही बँटा सकी थी।' वस्तुत अचलाके चरित्रका पूर्वार्द्ध अर्थात् विवाह होने तकका समय तो महिमको ही अर्पित है। इसके बाद अपनी ससुराल पहुँचनेसे लेकर कथानकके अततक उसके मनमे निरतर सघर्ष व्याप्त रहता है। इस उत्तरार्द्धमे महिमकी अपेक्षा उसका हृदय सुरेशकी ओर ही अधिक झुका दिखाई देता है।

अचलाके चरित्रके इतने विश्लेषणसे स्पष्ट है कि उसकी चारित्रिक गहनता किसी भी व्याख्यासे कुछ कम नही की जा सकती। सुरेशके अनुसार वह 'एक आश्चर्यजनक चीज़' है। उसकी 'बात और चितवनका व्यवधान' उसे सदैव 'दुर्बोध्य' बनाये रखता है। उसकी दुर्बोध्यता इतनी अधिक है कि अपने प्यारको वह शायद स्वय भी नही समझ पाती। उसका मन इतना जटिल है कि उसके अनुसार, स्वय अतर्यामी भी उसे नही समझ पाये। वह कहती है, "हे अतर्यामी, मेरे दुर्भाग्यसे तुम भी समझनेमे गलती कर गये। इस हृदयके अदर हमेशासे क्या हो रहा है, सो क्या तुम्हारी दृष्टिमे भी नही पडा ?" उक्त उद्धरणके पश्चात् इस विषयमे कुछ भी कहना अब अनावश्यक ही है।

'गृहदाह' मे अचलाके उपरात दूसरा प्रमुख चरित्र मृणालका है। जैसा हम अभी देखेगे, उसके व्यक्तित्वकी गति-विधि ठीक अचलाकी विपरीत दिशामे है। अचलाके चरित्रके प्रमुख गुण है—व्यावहारिक सयम एव मानसिक असयम। मृणालके स्वभावकी विशेषता है व्यावहारिक असयम एव मानसिक सयम। इसके अतिरिक्त अचला जहाँ ब्राह्मसमाजी है, वहाँ मृणाल कट्टर हिंदू है। एक पति-सेवाको विशेप महत्त्व नही देती,

उसे धार्मिक दृष्टिकोणसे नही देखती, तो दूसरी पति-सेवाको ही अपना जीवन-सर्वस्व मानती है। एक प्रकारसे अचला और मृणालके चरित्रोमे प्राकृतिक विरोध है। जिस क्षण अचलाको यह ज्ञात होता है कि मृणाल महिमको बहुत प्यार करती थी और अब भी करती है, उसी क्षण उसका मन महिमकी ओरसे फिर जाता है। इस तरहसे उनका प्रेम भी एक स्थानपर केन्द्रित नही हो पाता। अचला और मृणालकी प्रकृतिमे इस विरोधके कारण ही उन दोनोकी चारित्रिक सवेदनाएँ और भी तीव्र हो उठी हैं।

मृणालके चरित्रकी मूल सवेदना है उसकी अटल पति-भक्ति। यह पतिभक्ति किन परिस्थितियोसे घिरी हुई है, यह जान लेना भी आवश्यक है। जहाँ मृणाल विवाह करना चाहती थी वहाँ तो उसका विवाह हुआ नही, और इसके साथ-साथ अपने प्रथम यौवनमे उसे मिला साठ सालका वृद्ध पति। इन विषमताओके बीच भी मृणालकी पतिभक्ति अविचलित रही, यह देखकर सहृदय पाठकका मस्तक श्रद्धासे नत हो जाता है। अपने स्वामीका मजाक बनाती हुई भी वह उनका पूरा-पूरा ध्यान रखती है। नियतिसे उसे जो कुछ मिला है वह उसीमे सतुष्ट है। अचलासे वह कहती है, "यह सिर्फ इसी जन्मका नही, भाभी, जन्म-जन्मान्तरका सबध है। मैं जिनकी चिरकालकी दासी हूँ, उन्हीके हाथ भगवान्ने मुझे सौप दिया है। आदमीके चाहने न चाहनेसे क्या आता-जाता है?" इस विश्वासके कारण ही वह अपने पतिपर किसी प्रकारका सदेह नही करती, और अचलाको भी इसी बातका उपदेश देती है। पतिकी मृत्युके उपरात भी उसकी उनके प्रति श्रद्धामे कमी नही आती। बडे शात भावसे वह बताती है, "वे बूढे आदमी थे, दुनियामे वे गरीब थे, रूप और गुण भी उनमे साधारण पॉच जनोसे ज्यादा नही था, पर वे ही मेरे लिए इहलोक थे और वे ही परलोक।"

मृणालके व्यक्तित्वमे विनोदप्रियता असाधारण रूपसे है। महिमको पानेमे असफलताकी भावना वह इसी विनोदमे व्यक्त करती है। इसके अतिरिक्त उसकी गार्हस्थिक जीवनकी बेबसी भी इसी मार्गसे बाहर निकलती है। नवविवाहित अचलाका मुँह देखकर वह महिमसे कहती है

"ना, तुम्ही जीतमे रहे दादा! मुझसे व्याह करके ठगा जाते।" वह किसी समय महिमकी पत्नी होना चाहती थी, इस बातको वह वडी सरलतासे व्यक्त कर देती है। उसकी हँसीकी छटासे घर-भरमे उजाला हो जाता है। यहाँतक कि वह अपने पतिके सम्मुख भी हँसी-मजाक़ करनेसे नही चूकती। उनके सामने ही वह अचलासे कहती है, "ये ही मेरे मालिक हैं, दीदी। अच्छा, तुम्ही बताओ न वहन, इन वहत्तर-साली वूढेके साथ मैं अच्छी लगती हूँ? इस जनमका रूप-जोवन सब मिट्टी नही हो गया वहन?" इस प्रकार वह व्यगविनोदके सहारे ही अपने विवश जीवनमे सतोप और सुखका सचार किया करती है, परतु उसकी इस विनोदप्रियतामे उसके प्रथम यौवनकी निराशा छिपी हुई है।

मृणालकी प्रकृति एकदम गार्हस्थिक है। 'प्रतिकूलता मानो दुख देकर इस मूर्ख स्त्रीको जीवन-यात्राके मार्गमे थकाकर वैठा नही सकती। गँवई-गाँवकी इस मूर्ख स्त्रीका ऐसा भाव है कि हृदयके आनदके सिवा वाहरकी परिस्थितियोका मानो उसके लिए कोई अस्तित्व ही नही....यह वगैर पढी-लिखी गरीब ग्राम्य लक्ष्मी भी सब तरहके सासारिक दु.ख-दारिद्रयकी गोदमें दिनरात रहते हुए भी सारी वेदना-यत्रणाके ऊपर आरामसे उतरा रही है। न तो इसके शारीरिक थकान है और न मानसिक मलिनता।' रसोईके भँडारको वह गृहिणीके राज्यकी राजधानी मानती है। प्रारभसे अततक हम उसे 'कर्म-रत मौन' महिलाके रूपमे देखते है।

मृणाल अपने आचार-विचारमे बडी पक्की है। अपनी वृद्धा सासकी भावनाओका ध्यान रखते हुए वह अचलाके हाथका वनाया हुआ भोजन नही करती। पर उसमे धार्मिक कट्टरता नही है, इसीलिए अचलाके ब्रह्म-समाजी पिताकी सेवा करनेमे वह कुछ भी सकोच नही करती। विवाहको वह एक पवित्र धार्मिक सस्था मानती है, और उसका यह धर्म ओर यह आचार-विचार वितर्कसे परेकी चीज़ है।

व्यवहार-पटु होते हुए भी मृणाल अत्यत सरल है। अचलाका 'एकात अमूलक द्वेष उसे काँटेकी तरह चुभा करता था।' वस्तुत. मृणालका

हृदय बहुत उदार है। उसमे सबके लिए स्थान है। उसका स्नेह सार्वजनीन है। नितात अपरिचित व्यक्तियोसे वह बहुत शीघ्र घनिष्ट हो जाती है। सुरेशको भैया बनाते उसे देर नही लगती। जीवन-सग्राममे हारे हुए वृद्ध केदारबाबूको वह महीनो अपने यहाँ रखती है और उन्हे 'बापू' कह कर सबोधन करती है। उसे अपनी बुढिया सासका सदैव ध्यान रहता है। सबकी सेवा करना ही उसके जीवनका चरम ध्येय जान पडता है। अचलाके मनमे अपने प्रति ईर्ष्याका कुछ भी खयाल न करके वह सदा उसकी शुभाकाक्षिणी रहती है। वह हृदयसे चाहती है कि अचला और महिमका पारस्परिक मनमुटाव मिट जाय। इसके लिए वह पत्र लिखकर उसे बार-बार समझाती है, और सही रास्ता दिखानेकी कोशिश करती है।

मृणालने किसी समय महिमको पतिरूपमे चाहा था, किंतु उसमे असफल होनेपर उसके मनमे किसी कुठा अथवा विकृतिको जन्म नही मिला। वह सदैवकी भाँति सरल और विनोदप्रिय रहती है। महिमने उसके जीवनको बहुत प्रभावित किया है। उसकी दी हुई शिक्षाका सादर उल्लेख करती हुई वह केदारबाबूसे कहती हैं, "क्षमाका फल क्या सिर्फ अपराधीको ही मिलता है? जो क्षमा करता है उसे क्या कुछ भी नही मिलता, बाबूजी?" इस ईर्ष्या-द्वेष-हीन जीवनका स्मरण कर कोई भी व्यक्ति अपने मनको पवित्र कर सकता है।"

अपने उक्त सारे गुणोके फलस्वरूप, शरत्के प्रतिनिधि नारी-पात्रोकी प्रभविष्णुता मृणालको भी उत्तराधिकारमे मिली है। प्रथम भेटके समय अचला तो इसे किसी प्रकार छोडना ही नही चाहती। उसके अनुसार 'मृणाल जीजी' दूसरोको वशमे करनेवाला कुछ जादू जानती हैं। वृद्ध केदारबाबू दक्ष एव निपुण मृणालको 'अद्भुत और अपूर्व' कहकर सबोधित करते है। उसकी जीवन-चर्चासे वे इतने प्रभावित होते है कि स्वय ब्रह्मसमाजी होने पर भी वे सध्या-पूजा करनेकी सोचते है। उसीके व्यक्तित्वके प्रभावसे वे अचला, सुरेश, पशु-पक्षी, कीट-पतग, जो कोई जहाँ भी हो, सबको क्षमा कर देते

है। पर इतना सब होते हुए भी मृणाल कभी अपनी प्रशसा नही सुनना चाहती।

'गृहदाह' के कथानकमे राक्षसी अथवा वीणापाणिका स्थानीय महत्त्व है। वह आचार-शील एव पति-गर्विता रमणी है। अचलासे वह कहती है, "हम सब सेवाके काममे दासी हैं तो क्या सभी काममे दासी हैं? हुकम देनेके समय तो हम ही लोग मालकिन हैं।" अपने गुरु-जनोकी सेवा और मर्यादाका उसे पूरा ध्यान रहता है। वह बड़ी चतुरतासे अचलाके मनोभावोको समझ लेती है। इस पथ-भ्रष्ट रमणीकी वह हृदयसे हिताकाक्षिणी है।

उपन्यासके अन्य नारी-पात्र पार्श्व-चरित्र-मात्र हैं। स्नेहमय सुरेशकी बुआजी और हरियाकी माँ का यत्र-तत्र उल्लेख भर है। वस्तुत. इतने बडे कथानकमे भी अकेले अचलाकी चारित्रिक सवेदना अकित करनेमे उपन्यास-कारको कठिनाईका अनुभव हुआ होगा। इस रहस्यमयी रमणीके गहन व्यक्तित्वके कारण ही, मृणालको छोडकर, 'गृहदाह' मे किसी अन्य नारी पात्रका चरित्र अधिक न उभर सका, और ऐसा होना नितान्त स्वाभाविक ही नही वरन् आवश्यक भी है, अन्यथा कई चरित्रोमे उलझकर उपन्यासके मूल चरित्रकी सवेदना कुछ फीकी पड जाती।

ब्राह्मणकी बेटी

[वामुनेर मेये]

वामुनेर मेये' शरत्के रचना-कालके उत्तरार्द्धमे प्रणीत एक लघु उपन्यास है। अपने सक्षिप्त कलेवरमे इसका कथानक अत्यत शक्तिशाली है। यह लेखककी उन रचनाओके अतर्गत आता है, जिसमे उसने व्यक्तिगत जीवनके घात-प्रतिघातो, मानसिक सघर्षो तथा रागात्मक गहराइयोको कुछ दूर रखकर समाजके जघन्य, कुत्सित और वीभत्स अगोकी अत्यत यथार्थवादी परीक्षा की है। समाजके सडे-गले ढाँचेको लेखकने इस प्रकारके कथानकोमे बडी ईमानदारीके साथ उभारा है। 'पल्ली समाज'मे शरत् बाबूने गाँवोकी कलह तथा ईर्ष्या-द्वेषका अकन किया था, पर 'वामुनेर मेये'को हम समाजके व्यभिचारोका चित्रपट कह सकते है।

नारी-चरित्रके अध्ययनकी दृष्टिसे भी 'वामुनेर मेये'का कुछ कम महत्त्व नही है। स्त्रीका जीवन एक क्षणकी असावधानीसे, किचित् दुर्बलतासे कितनी आसानीके साथ सदैवके लिए कलकित हो जाता है, यही कदाचित् इस उपन्यासकी मुख्य सवेदना है। कालीतारा और ज्ञानदा अपनी कमजोरीके कारण ही समाजकी दृष्टिमे तिरस्कृत और पतित हो जाती है। उन्हे सहानुभूति, दया अथवा करुणा नही मिलती, वरन् मिलता है कोप और निष्कासन। 'वामुनेर मेये'के एक अध्ययनसे स्पष्ट हो जाता है कि नारीके चारित्रिक पतनमे उसकी व्यभिचार-बुद्धिकी अपेक्षा उस समाजके फौलादी पजेका अधिक हाथ है, जिसने उसे उसकी प्रकृतिके विरुद्ध जकड रखा है।

हिंदी-ग्रथ-रत्नाकरसे प्रकाशित 'ब्राह्मणकी बेटी'के प्राक्कथनमे श्री नाथूराम प्रेमी लिखते है, "युग-प्रवर्त्तक महात्मा गाधीने गुजराती-साहित्य-

सम्मेलनके गत अधिवेशनमे सभापतिकी हैसियतसे कहा था—'साहित्यके लिए जब आप कलम उठाइए तो यही सोचकर उठाइए कि स्त्रियाँ माताएँ है। इस विचारसे जब आप लिखेगे तो आपकी कलमसे स्त्रीके बारेमें जो कुछ निकलेगा, वह उतना ही सुदर और फलप्रद होगा, जितने कि सुहावने आकाशसे बरसनेवाले बादल, जो पृथ्वीरूप स्त्रीको उपजाऊ बनाते है।'

"मालूम होता है कि स्वनामधन्य शरत्‌बाबूने महात्माजीके इस अनुरोधको अक्षरश माना है और उन्होने अपनी रचनाओमे स्त्री-पात्रोको इसी प्रकारकी भावनाओसे चित्रित किया है। उनके हृदयमे स्त्रियोंके प्रति बहुत ही अधिक आदर-भाव है। उनकी लिखी हुई सारी रचनाओको आप पढ जाइए, उनमे न तो कही आपको स्त्रियोंके शरीर-सौदर्यका वर्णन मिलेगा और न अन्य किसी तरहकी अश्लीलता। एकबार उन्होने स्वय 'बगवाणी'में लिखा था, 'आलिगन तो दूरकी बात है, चुम्बन भी मै अपनी रचनाओमे कही न लिख सका।' वास्तवमे शरच्चद्र कुछ उस ढगके साहित्यकारोमे है, जिन्हे अग्रेजीमे 'प्यूरिटन' कहते हैं। उनके अधिकाश नायक-नायिका सर्वदा ही यौन-मिलनसे दूर रहे है, उनका प्रेम बहुत ही सयत और बहुत ही त्यागमय चित्रित हुआ है। वे सचमुच ही स्त्रियोमे मातृभावका ही विशेष-रूपसे दर्शन करते है, और बाह्य सौदर्यकी अपेक्षा उनके भीतरी सौदर्यको ही महत्त्व देते है। इसीलिए शरत् बाबूकी कलमसे जो कुछ निकला है, वह बहुत ही सुदर और फलप्रद है।

"शरत् बाबू मातृ-जातिके प्रति समाजके अत्याचारोको सहन नही कर सकते, परतु, फिर भी, वे सुधारक नही है; वे सुधारकसे बहुत ऊँचे है। वे कलाकार है। सुधारक केवल मनुष्यकी बुद्धिको अपील करता है, परतु कलाकार उसके अतर्तव्य निगूढ प्रदेशोतकको हिला देता है। सुधारकका लक्ष्य मस्तक है, जब कि कलाकारका हृदय।"

ऊपरके लबे उद्धरणसे स्पष्ट हो जाता है कि बहुत कुछ 'प्यूरिटन' होने पर भी शरत्‌मे रोमासकी कमी नही है, और एक सुधारकके कर्त्तव्यका

निर्वाह करते हुए भी वे अपनी प्रकृत कलासे कही दूर नही हटे है। 'वामुनेर मेये' उनकी इस कलाकी सामाजिकताका अच्छा उदाहरण है।

'वामुनेर मेये'की कथा अत्यत सक्षिप्त और सुलझी हुई है। निरीह और भोले-भाले डॉ० प्रियनाथकी पुत्री सध्या अपने बाल्य-सहचर अरुणके स्नेह-पाशमे वँधी है। पर उसे अपने वशकी मर्यादाका वहुत अधिक ध्यान है। इसीलिए चाहते हुए भी वह नीची जातिके ब्राह्मण अरुणके साथ विवाह नही कर सकती। पुत्रीकी वयमे वृद्धिके साथ प्रियनाथकी पत्नी जगद्धात्रीकी चिता वढती जाती है। गाँवके जमीदार गोलोक चटर्जी सध्याके नानाकी उम्रके होते हुए भी उसके साथ विवाहका प्रस्ताव रखते है, जिसे वह अस्वीकृत कर देती है। अतत ब्राह्मणकी वेटी सध्या कुलीनताकी वेदीपर वलि देनेके लिए प्रस्तुत हो जाती है। उसका विवाह एक ४५ वर्षके वरके साथ होना निश्चित होता है। पर यहाँ भी उसका दुर्भाग्य (अथवा सौभाग्य?) उसका पोछा नही छोडता। विवाह-मडपमे उपस्थित होकर गोलोक चटर्जी एकाएक यह सिद्ध कर देते है कि सध्याके पिता डॉक्टर प्रियनाथ ब्राह्मण-पुत्र न होकर एक नाईकी सतान है। इस आकस्मिक दुर्घटनासे बचनेके लिए सध्या अरुणके घर जाकर प्रार्थना करती है कि वह वरके सूने आसनको ग्रहण करे। अरुण सहसा कुछ निश्चित नही कर पाता, और वह निराश घर लौट आती है। वादमे जब अरुण स्वय सध्यासे विवाहका प्रस्ताव करता है तो वह अपने सरल-हृदय पिताके साथ वृन्दावन जानेके लिए प्रस्तुत है। बडे सयम और शातिके साथ वह कहती है, "उस दिन, मै वडी उतावली हो गई थी अरुण भइया, पर आज मेरा भी मन स्थिर हो गया है। स्त्रियोके लिए व्याह करनेके सिवा दुनियामे और कोई काम है या नही, यही जाननेके लिए मै वावूजीके साथ जा रही हूँ।" ब्राह्मणकी वेटीके व्यक्तित्वमे इस निष्काम वृत्तिके आविर्भावके साथ-साथ उपन्यासका कथानक समाप्त हो जाता है।

'वामुनेर मेये'मे कथाका प्रवाह और चरित्र-चित्रण एक-दूसरेके साथ सगुफित होकर वडी कुशलताके साथ आगे वढते है। दोनोमे-से कोई भी

प्रधान अथवा गौण नही है। उपन्यास यदि एक ओर समाजके व्यभिचारोका लेखा-जोखा है तो दूसरी ओर उसमे गोलोक चटर्जी, डॉक्टर प्रियनाथ, मृत्युजय घटक, रासी ब्राह्मनी, सध्या और कालीताराके चरित्र भी बडी सजीवताके साथ अकित किये गये है।

उपन्यासके नारी पात्रोमे सध्या, रासमणि, जगद्धात्री, कालीतारा और ज्ञानदा प्रमुख है। इनके चित्रोका निर्माण बहुत ही सूक्ष्म रेखाओमे बहुत ही सावधानीसे हुआ हे। उनकी व्यजनात्मकता पाठकके निकट अविस्मरणीय है। सध्या उपन्यासकी नायिका है। उसके व्यक्तित्वकी विशिष्टता इस बातमे हे कि वह एक साधारण युवतीके समान वासनाके आवेगसे प्रशासित नही होती, वरन् उसमे स्थिरता और सयमका ही आधिक्य है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि वह वशके मिथ्या गौरवमे जकडी हुई है। प्रेमके सामान्य मानवीय धरातलपर वह नही आ पाती। इसके अतिरिक्त वह अपनी माँकी इतनी आज्ञाकारिणी है कि उनकी इच्छाके विरुद्ध वह अपने हृदयके रागात्मक आदोलनको सशक्त होकर उभरने नही देती। फिर पिताके प्रति भी उसका कुछ उत्तरदायित्व है। वह भलीभाँति जानती है कि उसके निरीह बाबूजीकी देखभाल उसके बिना कोई नही कर सकता। इसलिए भी वह अरुणके प्रति अपने प्रणयको परिणयमे परिवर्त्तित नही कर पाती। पर इन सबके ऊपर, उसके हृदयमे कुछ ऐसी निष्कामता, ऐसी शाति है, जिसके कारण उसके व्यक्तित्वमे मासका विद्रोह प्रबल नही हो सका है।

सध्याकी पितृभक्ति सचमुच ही असाधारण है। यौवनके आवेगमय क्षणोमे भी वह अपने सन्यासी-सदृश पिताका ध्यान निरतर रखती है। 'सध्याका पिता प्रियनाथ डॉक्टर एक अद्‌भुत पात्र है—बहुत ही सरल, भोला-भाला और स्वप्नसचालित।' जगद्धात्री अपने पतिसे इसी कारण बहुत रुष्ट रहती है कि वह कभी घरमे नही बैठते और घरका धन परोपकार-मे व्यय किये डालते है। ऐसी अवस्थामे सध्याका अपने पिताके प्रति सशक्त प्रेम इस निरीह प्राणीके लिए रक्षाके कवचका काम करता है।

अपने बाबूजीके विषयमे कोई अपमानजनक बात वह किसीके मुँहसे नही सुन सकती। इसके लिए वह रासी ब्राह्मनी और गोलोक चटर्जीको भी तीखी बाते कहनेमे नही डरती। उपन्यासकारके शब्दोमे, "अपने इस निरीह पिताको दुनियाके सब तरहके आघातो, उपद्रवो और उपहास-परिहासोसे बचानेके लिए मानो वह अपने दस हाथोको बढाकर ओटमे कर लेना चाहती है।" पिताके सुख-सतोषके लिए वह झूठ बोलनेमे भी नही हिचकिचाती। जगद्धात्रीके अनुसार, "पर उनके लिए तो तू अपने प्राण दिये देती है तू अच्छी तरह जानती है कि उनकी दवासे कुछ भी नही होता, फिर भी, तू जान देने बैठी है; और किसीकी दवा न खायेगी—कही उन्हे शर्मिन्दा न होना पडे।" इस प्रकार सध्या वस्तुत 'बाप सुहागिन' है। वृन्दावन जाते समय वह उनसे कहती है, "पर मै तो तुम्हे अकेला नही रहने दूँगी बाबूजी, मै तुम्हारे साथ चलूँगी।" और अतमे वह सब कुछ छोड-छाडकर, प्रेमकी सहज भावनासे भी ऊपर उठकर, निरीह पिताके साथ वृन्दावनकी यात्राके लिए चल देती है। उसका सारा माया-मोह उन्हीपर केन्द्रित हो जाता है।

सध्याका व्यक्तित्व अत्यत निर्मल होनेके कारण उसमे आत्माभिमान और स्पष्टवादिता जैसे गुणोका बडा स्वाभाविक मिश्रण हुआ है। रासमणि जैसी कलह-पटु स्त्रीको वह अपनी माँकी 'मानी हुई मौसी' कहकर, उसका तिरस्कार करती है। यहाँतक कि गाँवके जमीदार गोलोक चटर्जीको भी मुँहतोड उत्तर देनेमे वह नही डरती। कठोर शब्दोमे उनसे वह कहती है, "पसद क्यो न आओगे बाबा ? बाँस और रस्सीके रथपर सवार होकर इधर ही से तो निकलोगे, मै माला गूँथके तैयार खडी रहूँगी तब!" (इस एक वाक्यके तीखेपनका बदला लेनेके लिए ही तो गोलोक चटर्जीने बादमे विवाह-मडपसे सध्याके पतिको बिना ब्याह किये ही उठवा लिया था।) और अपने आत्माभिमानके कारण ही वह अपने मुँहमाँगे वर अरुण-द्वारा रखा हुआ विवाह-प्रस्ताव अस्वीकृत कर देती है।

सध्याके चरित्रका विश्लेषण करते समय एक बातका ध्यान हमे विशेष-रूपसे रखना पडेगा, और वह यह कि अपने व्यक्तित्वमे तीव्र होते हुए भी

यह नवयुवती किरणमयी, अभया अथवा कमलके समान प्राचीन परपराओ-का तिरस्कार नही करती। माँ-द्वारा वताई हुई धार्मिक रूढियोका वह चुप-चाप पालन करती है। इस सबधमे वह उनकी पूर्णरूपसे आज्ञाकारिणी है। समाजमे प्रचलित मान्यताओके अनुरूप ही उसके मनमे मिथ्या वश-गौरव वसा हुआ हे। अपने प्रणय-पात्र अरुणको प्राप्त करनेके लिए भी वह इन प्राचीन परिपाटियोके वधनसे मुक्त नही होना चाहती। प्रथम प्रेमकी निराशा उसे स्वीकार हे, पर वश-मर्यादाका वह उल्लघन नही कर सकती। वह अरुणसे कहती है, "आभाससे, इशारेसे, तुम्हे कितनी वार जताया कि ऐसा हरगिज नही हो सकता। फिर भी, तुम्हारी भिक्षाकी जवर्दस्ती किसी भी तरह खतम नही होना चाहती थी। वावूजी राजी हो सकते है, माँ भी भूल सकती है; पर, मै तो नही भूल सकती कि मै कितने वडे ब्राह्मणकी लडकी हूँ।" वशके झूठे गौरवकी रक्षाके लिए अपने प्रेमका उत्सर्ग करने-वाली शरत्‌की यह नायिका अपने वर्गमे कदाचित् अकेली है।

व्यक्तित्वकी दृढतामे सध्या, किरणमयी अथवा अभयाके समान ही है। परदेश जानेके लिए उद्यत अरुणको जव जगद्धात्री अपने पास वुलाकर सम-झाना-वुझाना चाहती है तो वडे कठोर शब्दोमे सध्या कहती है, "नही, तुम इस मकानमे उन्हे हरगिज नही वुला सकती. . . हमारे साथ उनका क्या सवध है जो तुम कहने जाओगी? इस मकानमे अगर तुमने उन्हे वुलाया माँ, तो मै तुम्हारी ही कसम खाकर कहती हूँ, उस तालावमे जाकर डूब मरूँगी।" यह उसके भीतरी प्रणयका अभिमानके रूपमे प्रकट हुआ विस्फोट है। इसका प्रमुख कारण है उसकी स्थिर बुद्धि और आत्म-संयम। इसके अतिरिक्त इन पक्तियोसे यह भी स्पष्ट है कि कुल-मर्यादाकी वेदीपर अपने आपको उत्सर्ग करके भी वह अपने प्रेमीको सम्मान-रक्षाके लिए कितनी व्यग्र है। उसे उसकी मर्यादा-रक्षाकी इतनी अधिक चिता हुई कि उसने स्वय अरुणके पास जाकर कह दिया, 'अब तुम मेरे घर न आना'। इन सबके साथ-साथ अपने माता-पिताकी हित-चिता भी सध्याके उक्त वाक्यसे भली-भाँति प्रकट होती है। अस्तु, अनेक दुर्बलताओके बावजूद सध्याके

व्यक्तित्वको दृढ और अटल कहकर अभिहित किया जा सकता है, इसमे कोई सदेह नही। पर इस दृढता और अटलताके क्षेत्रमे दयाका भी पूरा-पूरा साम्राज्य है। दूलेकी विधवा स्त्री और लडकीको पहले वह अपने घरमें शरण देती है। पर बादमे लोगोके आपत्ति करनेपर वह उन्हे अरुणके यहाँ रख देती है। वैसे भी वह निर्धन व्यक्तियोको अपने पिताकी भाँति ही दवा बाँटती है, और उनकी आर्थिक सहायता भी करती है। पर जैसा कहा जा चुका है, समाजके विधि-विधानोके सम्मुख उसकी दयाको भी झुकना पडता है। किसीको असतुष्ट करके या किसीसे लड-झगडके वह अपनी दयाको कार्य-रूपमे नही परिणत करना चाहती।

'उपन्यासमे सध्या और अरुणका प्रेम बहुत ही सूक्ष्म रेखाओके सहारे बहुत ही कुशलताके साथ चित्रित हुआ है।' वह बहुत ही गूढ और मर्मस्पर्शी है। सध्याके मुँहसे वह उसी समय प्रकट होता है, जब उसकी माता अरुणको बुला देनेके लिए अपने पतिसे आग्रह करती है। इस स्थलपर उसके प्रेममे आत्म-नियत्रण दर्शनीय है। आगे भी जब अरुण स्नेह-विकल होकर पूछता है, "प्रायश्चित्त करनेसे क्या इसका कोई उपाय हो सकता है?" तब वह कहती है, "एक दिन जिस आत्माभिमानके कारण तुम स्वय प्रायश्चित्त करनेके लिए राजी नही हुए थे, आज उसे ही विसर्जन कर दो, यह मैं कभी न कहूँगी। तुम कुछ भी करो, पर अब यहाँ मत रहो।" इस प्रेममे कितना सयम है, कितना आत्मोत्सर्ग है! और अतमे तो उसका यह सयम और आत्म-दमन पराकाष्ठापर पहुँच जाता है, जब अरुण बहुत-कुछ सोच-विचारके साथ उसके साथ विवाह कर लेनेके प्रस्तावपर राजी हो जाता है। कुछ समय पहले यद्यपि सध्याने स्वय ही यह प्रस्ताव किया था, फिर भी वह इस मुँहमाँगी मुरादसे मुँह फेरकर अपने पिताके साथ वृन्दावन चली जाती है।

सध्याके हृदयमे आरभसे ही रागात्मक सघर्ष दिखाई देता है। एक ओर है जाति, धर्म और वश-मर्यादाका भय, तथा दूसरी ओर है उसका अरुण-के प्रति नैसर्गिक प्रेम! लडने-झगडनेकी प्रवृत्ति न होनेके कारण प्रारभमे सध्याके प्रेमके ऊपर उसकी सामाजिक आस्थाओकी विजय होती दिखाई

देती है। अरुणसे बात करनेके लिए माँके क्रुद्ध होनेपर वह अरुणसे कहती है, "अब तुम क्यो इस घरमे आते हो अरुण भइया ? क्या तुम हम लोगोका सर्वनाश किये विना न छोडोगे" ? यहाँ उसका प्रेम जाति और धर्मकी मर्य्यादाके सम्मुख दब जाता है, उसकी प्रवृत्तियाँ स्वत. ही इनके विरुद्ध नही उठती। पर बादमे जब उसे ज्ञात होता है कि वह ब्राह्मणकी बेटी नही है तो उसका दमित प्रेम पूरे वेगके साथ उभर उठता है। अरुणके पास जाकर वह कहती है, "अरुण भइया, मैं ब्याहके पाटेपरसे भाग आई हूँ, तुम्हे ले चलनेके लिए। आज मुझे न लज्जा रही है, न भय—मान-अपमानका भी ध्यान नही रहा, तुम्हारे सिवा आज दुनियामे मेरा कोई नही है, तुम चलो .... सिर्फ तुम मुझे प्यार करते हो—सिर्फ तुम्ही मेरी हमेशाकी इज्जत बचा सकते हो; बचाओ !" यहाँ वश-जातिकी मर्यादाके विरुद्ध सध्याका प्रेम विजित होता दिखाई देता है। किंतु यह नियतिका व्यग है कि प्रेमकी इस प्रबल धारको उचित समयपर प्रश्रय न मिल सका। अरुण एकाएक सध्याके उक्त प्रस्तावको स्वीकृत नही कर पाता और इस प्रकार उसका प्रथम यौवनका प्रेम बिना पूर्ण रूपसे विकसित हुए ही समाप्त हो जाता है। अब उसके मनमे रागात्मक सघर्ष शेष नही रहता, वरन् उसके स्थान पर एक अपूर्व शातिमय निष्काम वृत्तिका उदय होता है। उसका वृन्दावन जाना मानो प्रतीकरूपसे विभिन्न कोलाहलोसे हटकर चिर शातिकी खोजमे जाना सूचित करता है। वासनाओके उन्नयनके साथ ही साथ उसका मन भी निर्मल हो गया है। मान्यता देनेपर भी समाजके जिन विधि-विधानोने उसे नीचे दिखाया, वह उनसे एकदम ऊपर उठ जाती है। प्रियनाथसे वह कहती है, "चलो बाबूजी, हमलोग यहाँसे जरा जल्दी निकल चले।"

गठन-कौशलकी दृष्टिसे 'बामुनेर मेये'मे बुढिया रासमणिका चरित्र सबसे अधिक सफल कहा जा सकता है। उसका व्यक्तित्व जितना सजीव होकर उभरा है, उतना किसी औरका नही। इस कलहप्रिय वृद्धाका चरित्र नारी-समाजके उस वर्गके अतर्गत आता है, जिस वर्गकी स्त्रियोंके वचन और कर्ममे अतर है, जो बाह्य आडबरो और थोथे विधि-विधानोका पालन ही

धर्माचरण समझती है तथा जिनका मस्तिष्क विकृतियोसे शासित होने पर भी दूसरोकी बुराई देखनेमे कभी नही चूकता। इस 'रासी ब्राह्मनी'का मन स्वार्थपरता, षड्यत्रपरायणता और प्रीतिहीन तथा अनुभूतिहीन धर्मनिष्ठाका स्थायी घर है। कहाँ तो वह झूठमूठ ही एक अछूत लडकीसे छू जानेपर नातिनीको नहलाती है और 'धर्म धर्म'की पुकार मचा देती है और कहाँ ज्ञानदाको गर्भपात करनेकी प्रेरणा देनेमे और गोलोक-जैसे दुष्ट व्यक्तिको बदनामीसे बचानेके लिए निरीह प्रियनाथको भी ज्ञानदाके साथ अनुचित सबध रखनेवाला कहनेमे नही हिचकिचाती। इस तरह जो धर्म केवल वाहरी आचार-विचारको ही सब कुछ समझना सिखाता है वही उसके चरित्रका प्रमुख अग है।

अपने व्यक्तित्वके अनुकूल ही रासमणिकी वाणी अत्यत कटु है। 'हरामजादी' जैसी गाली तो उसके नित्य-सभाषणका अग है। कटु-वाणीके साथ-साथ कलह-कौशलमे भी वह अत्यत निपुण है। अपने स्वरको अवसरानुकूल अनिर्वचनीय कौशल्यके साथ ऊँचे सप्तकसे एकदम खादके निखादपर उतार लेनेमे वह अपनी सानी नही रखती। प्रकृतिकी वह इतनी क्रोधी है—तामसी है कि जगद्धात्री-द्वारा अरुणके लिए यह कहे जानेपर, "बेचारेके माँ-वाप कोई नही है, देखनेसे दया आ जाती है", वह उच्च स्वरमे कहती है, "ऐसी दयाके मुँहपर तू आग न लगा दे!" अरुणसे तो वह इतनी अधिक क्रुद्ध है कि झाडू मारकर उस छोकरेका मुँह सीधा करनेके लिए वह सदैव प्रस्तुत है।

किसीकी भी हो और किसी भी कारणसे हो, दूसरेकी दुर्गतिके इतिहाससे रासमणिका क्रुद्ध हृदय भी प्रफुल्लित हो जाता है। परछिद्रान्वेपी होना उसके चरित्रका प्रमुख गुण है। गाँव-भरके सारे कुल-कलकोका लेखा-जोखा सदैव उसकी जिह्वापर रहता है, जिन्हे उद्धृत करनेमे वह कभी पीछे नही हटती। पर इतना होनेपर भी स्वय पापको प्रश्रय देनेमे वह कुछ भी सकोचका अनुभव नही करती। ज्ञानदाको गलत रास्तेपर चलानेमे वह जीभरके प्रयत्न करती है, प्रियनाथके चरित्रपर मिथ्या आरोप लगाती

है, और यह सब वह करती है केवल गोलोक ऐसे नारकीय व्यक्तिके प्रति सहानुभूति रखनेके कारण।

रासी वाह्मनीकी स्वार्थपरताका उल्लेख होना भी यहाँ आवश्यक है। एक लौकी मिलनेकी वात सुनकर वह सड़कपर घटो खडी रह सकती है। गोलोक-द्वारा सध्यासे विवाह किये जानेके प्रस्तावको जगद्धात्रीको सुनाकर वह एक सोनेकी गोट वनवाना चाहती है। इस विवाहकी वात चलानेमे भी उसका बडा हाथ है। सच तो यह है कि अपनी या अपने किसी गोलोक ऐसे हितैषीकी स्वार्थसिद्धिके लिए वह कैसे ही र्गाहत कार्य करनेमे नही हिचकिचा सकती।

इस प्रकार हम देखते है कि वाणीकी कटु, वाहरी छूतछातमे विश्वास रखनेवाली पर मनकी अत्यत मलीन, स्त्री-शिक्षाकी विरोधी, सदैव असत्को प्रश्रय देनेवाली रासी वाह्मनी उन कर्कश व्यक्तियोका प्रतिनिधित्व करती है, जो समाजमे सदव प्रगति और प्रकाशका विरोध करके उसे पतनके गड्ढेमें ही रखना चाहते है जहाँ सामाजिक वुराइयोंके अनेक कीटाणु पलते हैं और प्रश्रय पाते है। रासमणिका चरित्र सहसा ही हमे 'रामेर सुमति'की वुढिया दिगवरीका स्मरण दिला देता है; पर यह निश्चित है कि एक स्वस्थ समाजके निर्माणमे रासमणि जितना घातक हो सकती है, उतना दिगवरी नही। दिगबरीका प्रभाव-क्षेत्र वहुत सीमित है, पर रासमणिके कार्यकलाप पूरे समाजके वातावरणको विपाक्त कर सकते है।

सध्याकी माँ जगद्धात्रीका चरित्र वहुत सावारण-सा है। पतिकी अत्यधिक परोपकार-वृत्तिसे परेशान यह गृहिणी जाति-मर्यादा तथा कुलके वधनोमे वुरी तरह जकडी हुई है। एक ओर तो वह इतनी गिरी हुई भी नही कि अपनी युवती कन्याका विवाह वृद्ध गोलोकसे कर दे, दूसरी ओर उसमे इतना साहस भी नही कि वह रासी ब्राह्मनी-जैसे अवाछनीय व्यक्तियोका तिरस्कार कर सके। उसमे दया है, मोह-माया भी है, पर समाजके भयसे वह उसे व्यक्त नही कर पाती। उसके मनमे छल-कपट नही है। अपनी सारी बाते वह दूसरोको वता सकती है। परतु कही-कही किसी अप्रिय

विषयको दबाकर वह एक साधारण कुशल गृहस्थिन होनेका भी परिचय देती है।

अपने पति प्रियनाथके अत्यधिक सरल व्यवहारके कारण वह उनसे बहुत असतुष्ट है। अपनी अवशताके लिए वह बार-बार खीज उठती है। एक बार नही, अनेक बार वह अपने पतिके लिए इस प्रकार कहती है "सध्या, या तो वे कही चले जायँ, या फिर मै ही कही चली जाऊँ।" वस्तुत उसकी यह असहिष्णुता स्वभावज न होकर सकारण है। वैसे वह सध्याके प्रति बहुत स्नेहशील है, पर अपने पिताका पक्ष लेते देखकर वह उससे भी क्रुद्ध हो जाती है।

जगद्धात्रीके मनकी निर्मलता समाजके अनेक बधनो और दबावोके कारण उसके व्यक्तित्वमे उभर नही पाती। वह अरुणके प्रति मनमे बहुत ममता रखती है, पर छूतछातमे विश्वास रखनेके फलस्वरूप वह उसे अपने घरमे अधिक नही आने देती। उसके गाँव छोड़कर जानेके समाचारको सुनकर वह विकल हो जाती है। अपने पतिसे वह कहती है, "तुम एक बार उसे यहाँ बुला ला सकते हो ? कहना, तुम्हारी चाचीने अभी तुरत बुलाया है, बहुत जरूरी काम है।" ऐसे स्थलोपर हमे उसका सामान्य मानवीय हृदय अपने निर्मल रूपमे दिखाई देता है।

वश-मर्यादाका जगद्धात्रीको बहुत अधिक ध्यान है। अपनी सास द्वारा समाजकी विरुद्ध आलोचना सुनकर वह कहती है, "तबकी बात तो मै जानती नही माँ, पर अब न कोई इतने व्याह ही करता है और न वैसे अत्याचार ही होते है। और, अगर मान भी लिया जाय कि कुछ लोग उस समय अन्याय करते थे, तो इससे क्या कोई वशकी इज्जत छोड देगा माँ ? मेरे जीते जी तो ऐसा नही होनेका।" इस 'वशकी इज्जत'के पीछे ही, घर छोडकर वृन्दावन जाते हुए अपने पति और पुत्रीको वह नही रोक सकी वस्तुत बाह्य आचार-विचारमे आस्था रखनेवाली एक स्त्रीके लिए यह जानना वज्रपातके ही सदृश है कि उसका ब्राह्मण समझा जानेवाला पति

एक नाईकी सतान है। ऐसे अवसरपर जगद्धात्रीका नितात मूक हो जाना कुछ अस्वाभाविक नही कहा जा सकता।

सध्याकी दादी कालीतारा हमारे समक्ष प्राचीन प्रथाओसे पीडित, समाजकी अँधेरी परपराओ और रूढियोके एक शिकारके रूपमे आती है। इस अवस्थामे उसे एक संन्यासिनीके रूपमे चित्रित करके उपन्यासकारने मानव-मनोविज्ञानका वडा सफल निर्वाह किया है। समाजके मिथ्याचारोके विरुद्ध कालीताराका जो शात विद्रोह है वह एकदम स्वाभाविक है। किसी नारीको यदि जीवन भर अपने पतिके दर्शन न हो, और कोई एक अपरिचित नीच जातिका व्यक्ति उसे अपनी स्त्री बताकर धोखेसे उसका सर्वस्व नष्ट कर दे तो इससे अधिक उसके लिए भाग्यकी विडवना और क्या हो सकती है। निर्दोष होकर कालीताराको जो मन ही मन घुट कर वेदना सहनी पडी है, वह अपरिसीम है। इसीके फलस्वरूप उसका दृष्टिकोण अत्यत सहानुभूतिमय है। वह सध्या और अरुणके विवाहके पक्षमे है, क्योकि उसके अनुसार अरुणकी जाति भगवान्‌के वरसे अमर हो चुकी है। वह मिथ्या वशाभिमानकी समर्थक नही है। जगद्धात्रीसे वह कहती है, "यह जो कुलकी इज्जत है, यह कितना वडा पाप है, कितनी वडी धोखेकी टट्टी है, यह अगर तुम्हे मालूम हो जाता तो अपनी लडकीको तुम इस तरह वलि न चढा मकती। जाति और कुल यदि सत्य है, तो क्या दो आदमियोके सारे जीवनका सुख-दु ख ही झूठ है बेटी ?" उक्त उद्धरणसे कालीताराके जीवनकी सारी अनुभूति और विचार-प्रियतापर प्रकाश पडता है। उसका प्रत्येक कथन युक्ति-युक्त तथा मननपूर्ण है। सध्याकी माँको समझाती हुई वह आगे कहती है, "झूठको इज्जत देकर जितना ऊँचा वनाये रखोगी, उतनी ही ग्लानि, उतनी ही कीचड, उतना ही अनाचार इकट्ठा होता रहेगा। और हो भी यही रहा है।" उसका यह निष्कर्ष जितना ही युक्ति-सगत है उतना ही मानवीय (humane) भी। कालीताराको ही कदाचित् अपना वक्ता वनाते हुए उपन्यासकार अंतत. कहता है, "मनुष्य-मनुष्यमे यह जो भेद-भावकी चहार-दीवारी है, यह मनुष्यने ही अपने हाथसे

बनाई है, यह भगवान्‌का नियम हरगिज नही है। उनके प्रकट मिलनके सिहद्वारपर मनुष्य जितने ही काँटोपर काँटे इकट्‌ठा करता जाता है, गुप्त ग ह्वरमे उसके अत्याचारोके घेरेमे उतने ही अधिक छिद्र होते रहते है। तब उनमे-से होकर समाजमे पाप और गदगी ही छिपे-छिपे घुसती रहती है।"

इस प्रकार कालीताराकी विचार-शैली बहुत ही सुलझी हुई और सवेदन-शील है। उसका स्पष्ट मत है, "कोई बात बहुत दिनोसे चली आ रही है, सिर्फ इसीसे वह अच्छी नही हो जाती।" कालीताराका यह कथन अनायास ही 'शेष प्रश्न'की कमलका स्मरण दिला देता है, जो कहती है, "वस्तु अतीत होती है कालके धर्मसे, पर उसे अच्छा होना पडता है अपने गुणोके धर्मसे।" यहाँ समाजकी प्रचलित एव प्रतिष्ठित मान्यताओके विरुद्ध कलाकारका विद्रोह अत्यत सुदृढ होते हुए भी उचित रूपसे सयमित है। वस्तुत काली-तारा प्राचीना होनेपर भी प्रगतिशील है, और इसीलिए उसका चरित्र 'बामुनेर मेये'के घोर अधकारमय वातावरणमे निर्मल दीप-ज्योतिके समान है, जो हमे दृष्टि-दान करती है।

उपन्यासमे ज्ञानदाका चरित्र एकदम औसत दर्जेका है। वह एक साधारण भारतीय महिलाके समान सरल, लज्जाशील एव स्नेहमयी है। पर चारित्रिक दृढताका अभाव उसके व्यक्तित्वकी सबसे बडी कमी है। वह धर्मभीरु है, पापसे डरती है, किंतु दृढताके साथ उनका सामना नही कर पाती। गोलोककी वासनाका शिकार वह बडी आसानीसे बन जाती है। यह ठीक है कि उसके एक ओर प्राकृतिक कमजोरियाँ है और दूसरी ओर वैधव्यकी प्रभावशालिनी परिस्थितियाँ, पर इनसे ऊपर उठनेपर ही उसका चरित्र निखर सकता था। और फिर गोलोक ऐसे दुष्टात्मा व्यक्तिके सम्मुख बिक जानेके कारण उसका कलक और भी गहरा हो जाता है। पर इतने पर भी, वह पाठककी सहानुभूतिकी पात्री रहती है, घृणाकी नही।

श्री नाथूराम प्रेमीके अनुसार, "इस उपन्यासमे जाति और कुलके अभिमानका खोखलापन ऐसी खूबीसे प्रकट हुआ है कि देखते ही बनता है और तब हर्षचरित-टीकाका यह श्लोक बरबस याद आ जाता है—

'अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुले च कामिनीमूले का जाति-परिकल्पना॥'

अर्थात् ससार अनादि है—अगणित पीढियोंसे चला आ रहा है, काम-वासना दुर्निवार है—रोकी नही जा सकती, और फिर कुल स्त्रीमूलक है—वासना-दुर्वल स्त्रियाँ ही कुलीनता-अकुलीनताकी जड हैं; ऐसी दशामे जाति-कुलकी कल्पना ही क्या हो सकती है? कौन कह सकता है कि हमारे कुलमे अनादिकालसे किसी स्त्रीने व्यभिचार नही किया—हमारा कुल वैसा ही पवित्र वना हुआ है तथा हमारा कुल और जातिका अभिमान मिथ्या नही है?" 'वामुनेर मेये'का मूल सदेश कदाचित् यही है।

लेन देन

[देना-पाउना]

●

'लेनदेन' शरत् बाबूके रचनाकालके उत्तरार्द्धमे रचित एक अपेक्षाकृत वडा उपन्यास है, परतु यह नि सकोच रूपसे कहा जा सकता है कि आकारके अनुरूप इस उपन्यासमे रससृष्टि सभव नही हो सकी। लेखक वगालके 'पल्ली-समाज'के चित्रणमे इतना व्यस्त रहा है कि उसे सहज मानवीय भावनाओको स्पर्श करनेका वहुत कम अवकाश मिल सका। विभिन्न पात्र-पात्रियोंके मनमे एक, दूसरेके प्रति क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका मनोवैज्ञानिक अकन 'लेनदेन'मे वहुत कम हुआ है। 'पल्ली समाज'के समान ही 'देना-पाउना'का वातावरण ग्रामीण कलह, ईर्ष्या, पारस्परिक षड्यन्त्र और स्वार्थपरतामे वोझिल हो उठा है। मनकी निर्मल और निर्विकार वृत्तियोका उसमे कोई स्थान नही। पर जिस प्रकार 'पल्ली समाज'की तामसिक एव अधकारमय कथा-भूमिपर रमा और रमेशका तरल रागात्मक सबध कुछ क्षणोके लिए हमारे मनको मोहाच्छादित कर लेता है, उस प्रकारसे 'देना-पाउना'के जीवानद और षोडशी हमारे हृदयमे कोमल भावनाओका सचार नही करते। मोटे तौरपर उक्त दोनो उपन्यासोंके कथा-विधानमे यही प्रमुख अतर है। एक ओर भी प्रकारका अतर इन दोनो कथाओमे है और वह यह कि 'पल्ली समाज'मे रमेशका पुरुष रमाकी नारीकी अपेक्षा अधिक सशक्त है। परतु 'देना-पाउना'मे षोडशीकी नारी जीवानदके पुरुषकी अपेक्षा अधिक शक्तिमान् है।

'देना-पाउना'की मूल कथा सक्षेपमे इस प्रकार कही जा सकती है। षोडशी—जिसका पूर्व नाम अलका है—चडीगढकी चंडी माताकी भैरवी

है। गाँवके अत्याचार-ग्रस्त व्यक्तियोको सहायता देती हुई वह अत्यत पवित्रताके साथ अपना जीवन-यापन करती है। एक दिन अचानक ही गाँवका व्यभिचारी, कामुक और अत्याचारी जमीदार जीवानद चडीगढ आता है। ऋणके रुपयोके वहाने वह षोडशीको अपने निर्जन निवास-स्थानमे वुलवा लेता है। क्रोधके आवेगमे भैरवी उसके पास जाती है और किसी प्रकार अपने नम्र व्यवहारसे सतीत्वकी रक्षा करती है। जीवानदको देखते ही वह पहचान लेती है कि इसी व्यक्तिने कुछ रुपयोके लोभमे उसकी माँको सतुष्ट करके उससे विवाह किया था, परतु उसके वाद उसे आज ही अपने इस प्रथम पतिके दर्शन हुए। षोडशीने यह भेद गुप्त रखा, यहाँ तक कि जीवानदको भी नही वताया।

इसके उपरात उपन्यासमे ग्रामीण कलह और ईर्ष्या-द्वेषके चित्र हैं। गाँववालोकी षडयत्रपरायणतासे ऊवकर जीवानदके सतोषके लिए षोडशी चडीगढ छोडकर चल देती है। इसी वीच वह जीवानदपर यह भी प्रकट कर देती है कि वस्तुत वही उसका पति है। इस भेदके ज्ञात होनेपर जीवानद उसे प्राप्त करना चाहता है। पर जितना ही वह उसके निकट आना चाहता है उतना ही वह उससे दूर भागती है। अतत जव पीडा-द्वारा जीवानदका हृदय पूर्णत परिशुद्ध हो जाता है तो षोडशी उसे अपने साथ ले जानेके लिए आती है। और इस प्रकार निष्काम भावनाओकी छायाओमे दो हृदयोका सम्मिलन होता है। जीवानद और षोडशी चडीगढ छोडकर चल देते हैं।

इस लवे उपन्यासके कथानकमे तीन प्रमुख नारी पात्रोका अवतरण हुआ है—षोडशी, हेम तथा हेमकी माँ। उपन्यासकी नायिका एव प्रधान पात्री होनेके कारण षोडशीके चरित्रका ही विश्लेषण हम सर्वप्रथम करेगे। एककौडीके शब्दोमे "न तो औरतकी-सी शक्ल है और न वैसा वर्ताव है। मानो हथियार वाँधे लडाई करनेको तैयार है। इसीसे तो लोग समझते हैं कि यही साक्षात् गढकी चडी है।" वहुत कुछ अतिशयोक्ति-पूर्ण होते हुए भी यह वर्णन षोडशीके चरित्रकी मूल सवेदना प्रकट कर देता है। शरत्‌के अन्य

नारी-पात्रोके समान वह अधिक भावुक नही है, उसमे पुरुषोचित दृढता एव कठोरता है। इसीलिए सब प्रकारके अन्यायोका सामना वह स्थिरता-पूर्वक करती है। आकस्मिक आपदाओमे यह साहसपूर्ण रमणी 'परिणाम-भयहीन पगली'की भाँति पहुँच जाती है।

पोडशीके तप पूत व्यक्तित्वका वर्णन करते हुए उपन्यासके प्रारभमे ही शरत् बाबू लिखते है, "स्त्रीका एक प्रकारका रूप है जिसे पुरुष, यौवनके उस पार पहुँचे बिना, कभी देख नही सकता। वही अपूर्व नारी-रूप आज पोडशीकी तैलहीन उलझी हुई लटोमें, उपवाससे सूखी हुई उसकी कठोर देहमे, प्रकृतिको रोकनेके उसके रूखेपनमें—उसके अग-अगमे स्थित है।" यह इसी रूपका प्रभाव था कि नितात अवश अवस्थामे पाकर भी जीवानद सदृश अत्याचारी एव दुश्शील व्यक्ति षोडशीके तनका स्पर्श न कर सका, बादमे बिना जाने ही उसने उसके मनका स्पर्श कर लिया, यह दूसरी बात है। उसकी चारित्रिक दृढताके मूलमे उसकी पति-भक्ति अवस्थित है। जब तक वह जीवानदको पहचानती नही, वह अपने द्वितीय पतिकी क्षीण स्मृतिके ही सहारे अपने सतीत्वकी रक्षा करती है। उस समय वह जीवानदके वशमे होती हुई भी उससे स्पष्ट शब्दोमे कहती है,"आपका रुपया, आपका सुभीता, आपके ही पास रहे, मुझे जाने दीजिए पतिकी मुझे याद नही है सही, परतु वे है तो! मै आपसे सच कहती हूँ, आज तक मैने कोई भी बुरा काम नही किया है। कृपया मुझे छोड दीजिए।" सचमुच उसके कठोर मनके भीतर प्रवेश कर पाना बहुत दुरूह है, क्योकि अटल पति-भक्तिका कवच उसकी बाह्य आक्रमणोसे सदैव रक्षा करता रहता है।

पोडशीका मन यदि कठोर है, तो स्फटिक-सदृश निर्मल भी है, भले ही वह सबके लिए पारदर्शक न हो। जीवानदके प्राणोको अपने हाथमे पाकर भी वह उनका अत नही कर देती। विश्वासका हनन करना उसकी प्रवृत्ति नही है। जीवानदको, जब वह उसे पति-रूपमे पहचान भी न पाई थी, मॉर्फियाकी थोडी-सी ही मात्रा अधिक देनेमे वह उस अत्याचारीसे अपना प्रतिशोध ले सकती थी। परतु उसने ऐसा नही किया। फिर जीवानदको

पहचान लेनेपर उसने उन्हें मेजिस्ट्रेटके हाथोसे बचाया—अपने पिताके विरुद्ध यह बयान देकर कि "मै अपनी इच्छासे आई हूँ । किसीने मेरे शरीरको हाथसे छुआ तक नही ।" यहाँ भी वह अपने पति जीवानदसे, पूर्वकालमें उसके द्वारा तिरस्कृत होनेका बदला नही लेती । प्रथम यौवनकी भेटको अस्वीकार करनेवाले व्यक्तिकी भलाईके लिए उसकी तपस्विनी स्त्री-द्वारा सामाजिक मान-मर्य्यादाका उल्लघन करना, इस बातका स्पष्ट परिचायक है कि शरत्‌की नायिकाएँ प्राय अप्रत्याशित कार्य करके मानव-मनोविज्ञानकी जटिलताका परिचय देती है । पति-द्वारा निर्दोष होनेपर भी त्याग दिया जाना नारीके लिए सबसे महान् दु खकी बात है । पर ऐसे भी पतिकी परि-चर्याके लिए षोडशी सारे सामाजिक मानोसे ऊपर उठकर अनायास कटिबद्ध हो जाती है । षोडशीका विवाह जीवानदके उपरात एक दूसरे व्यक्तिसे हो चुका है, और फिर वह चडीकी भैरवी भी है । ये दोनो ही बाते ऐसी है जो उसे जीवानंदका स्पर्श तक करनेको वर्जित करती है । पर इतनेपर भी षोडशी इन दोनो विधानोका निषेध करके अपने दु शील पतिकी परिचर्या नितात निष्काम भावसे करती है ।

जैसा हमने पहले कहा है, षोडशी किसी भी प्रकारके अन्यायका तीखा प्रतिवाद करती है । जनार्दनरायसे, जो जैसे धनी है, वैसे ही भयकर है, एक किसानसे बेगार लेनेके मामलेमे षोडशीका झगडा हो गया था । यह बात राय महाशयको कभी नही भूलती और षोडशी भी उनसे कुछ डरते हुए भी उनका स्पष्ट तिरस्कार करती है । उनके बुला भेजनेपर वह गाँवके मुखियोकी पचायतमे नही जाती । यहाँतक कि वह अत्याचारी जीवानदको भी उसके बीमार होनेके कारण, जेल भिजवाना नही चाहती । इसके लिए वह फकीर साहब जैसे श्रद्धेय व्यक्तिका भी प्रस्ताव अस्वीकृत कर देती है । षोडशीके बारेमे निर्मलका यह मत काफी सच है कि 'यह जैसी गभीर है वैसी ही शिक्षिता है और वैसी ही निडर है ।' परतु जहाँ षोडशी अपने ग्रामवासियोके ऊपर होनेवाले विभिन्न अत्याचारोका घोर विरोध करती है, वही वह अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारको मौन होकर सहती

है। इस सबधमे उसका मत हे, "बदनामी अगर झूठी ही हो तो सहूँगी क्यो नही ? हेम, ससारमे झूठी बातोकी कमी नही है, परतु उसका प्रतिवा करनेमे जो झूठे कार्य किये जाते है, उन्हीका बोझ सहना कठिन है।" दूसरोका दुखित देखकर उसके मनका क्रोध उभर उठता हे, पर अपने लिए नही। हेम पोडशीकी तुलना उरा तलवारसे करती हे, जिसकी मियान धूल चढ जानेसे मलिन हो गई है, परतु असली चीजमे जरा भी मैल नही बैठा हे। 'वह जैसी सीधी है, वैसी ही कठिन है और वेसी ही असली भी है।'

यहाँ एक बातका ध्यान रखना आवश्यक है। यद्यपि पोडशी अपने ऊपर किये जानेवाले अत्याचारोका प्रतिवाद नही करती, पर वह उन अत्याचारियोके सम्मुख झुकती भी नही, जिससे कि वह इन दुष्कर्मोके लिए और प्रोत्साहित न हो उठे। नारी होकर वह यह दिखा देना चाहती हे कि वह किसी भी प्रकार पुरुषसे दुर्बल नही है। यहाँ उसका चरित्र शरत्की परपरागत नायिकाओसे भिन्न हो जाता है। वस्तुत पोडशीका व्यक्तित्व किरण और कमलके वर्गके अतर्गत आता है, जो कोरी गलदश्रु भावुकताका तिरस्कार करती हे। उनके चारोओर एक कठोरताका कवच है जिसमे प्रवेश पा सकना किसी उपेन्द्र, अजित अथवा जीवानदके लिए ही सभव है। किरण, अभया, पोडशी और कमल नारीके सशक्त वर्गका प्रतिनिधित्व करती हे। ऐसा जान पडता है कि इनमे-से पहली तीन नायिकाओके व्यक्तित्वसे श्रेष्ठतम परमाणुओको लेकर लेखकने अतिम नायिकाका सृजन किया है। अपने अदम्य साहसका परिचय देती हुई पोडशी निर्मलसे कहती हे, "मै अबला स्त्री, निरुपाय हूँ सही, परतु मेरा भैरवीका अधिकार तनिक भी शिथिल नही हुआ है। वे मर्द है, उनमे बल हे, परन्तु उस बलको जब तक वे सोलहो आने प्रमाणित न कर लेगे, तबतक मेरे हाथसे कुछ भी पानेका उन्हे अधिकार नही है—मिट्टीका एक ढेला तक नही। निर्मल बाबू, मै स्त्री हूँ, परतु उसीको जिन लोगोने ससारमे सबसे बडा अपराध मान रखा है उन्होने भूलकी है। इस भूलका उन्हे सशोधन करना पडेगा।" यहाँ पोडशीका व्यक्तित्व पुरुषसे दबा नही, वरन् वह उसे एक चुनौती

देता जान पडता है। इसीलिए वह माँ अधिक है, प्रिया कम! उसके गाँवके सारे व्यक्ति उसे दयामयी माँ ही कहते हैं। और वह भी सदैव उनकी दु:ख-गाथाओंको सुननेके लिए प्रस्तुत रहती है। उपन्यासकारके शब्दोंमे, 'षोडशीके संबंधमे गाँवके मुखियोंका मनोभाव कुछ भी क्यों न हो, ये दीन दरिद्र लोग जैसे उसकी भक्ति करते हैं वैसे ही उसको चाहते भी हैं।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि षोडशीके चरित्रका विशिष्ट तत्त्व उसके मनकी असाधारण दृढता है। जीवानंदसे वह कठोर शब्दोंमे कहती है, "झगडा करनेमे मुझे घृणा मालूम होती है। उसके लिए अभी मौका भी नही है—यह बात अपने अनुचरोंको समझा दीजिएगा।" और इधर सागरको वह सबके सामने ही आदेश देती है, "जमींदारके लोग कल यहाँ बलवा करना चाहते हैं, परंतु मैं यह नही चाहती। मेरी इच्छा नही है कि इस उत्सवके समय यहाँ किसी तरहका खून-खराबा हो, परंतु जरूरत पडी तो सब कुछ करना होगा। तुमलोग इन आदमियोंको पहचान लो, इनमे-से कोई भी कल मंदिरके आस-पास न आने पावे! एकाएक मारपीट नही करना, सिर्फ गरदनियाँ देकर निकाल देना।" सर्वसाधारणके बीच गाँवके मुखियोंके विरुद्ध इन शब्दोंको बोलनेवाली नारी कितनी सशक्त है, इसका अनुमान लगाना कठिन नही। वस्तुतः षोडशी यदि गुलाबकी तरह कोमल है तो चट्टानकी तरह दृढ भी है। देवीकी भक्तिमे समय व्यतीत करनेवाली यह नारी प्राण लेनेकी भी बात कर सकती है। पर "इस कठिन आवरणके नीचे रहस्यमयी कौतुकप्रिय नारी-प्रकृति दबी पडी है", इसे अस्वीकार नही किया जा सकता। उसके व्रत और उपवासकी हजारों तरहकी कठोर साधनासे भी उसकी हँसीका झरना अभी नही सूखा है, मानो राखके भीतर भी आगकी तरह वह जीवित है। उसकी दृढता एवं शांत तथा संयमित कठोरताको व्यक्त करनेके लिए केवल प्रफुल्लताका एक वाक्य ही पर्याप्त है—"बापरे! औरत तो है ही नही, मर्दका दादा है।" इसके आगे इस संबंधमें कुछ और कहना अनावश्यक ही है।

षोडशी चंडी माताकी भैरवी है, और अपने इस कार्यको वह अत्यंत

मनोयोगपूर्वक करती है। अनेक प्रकारकी कठिनाइयोमे भी देवी-पूजनको वह नही भूलती। जीवानदके यहाँ वदिनी रहनेपर 'सारी दुश्चिताओके भीतर और एक प्रकारकी चिताकी धारा षोडशीके अत करणमे लगातार बह रही थी, वह है उसकी चडी माता, जिनकी पूजा वह बचपनसे करती आई है।' उसकी गेरुआ रगकी धोती, उसके सुन्दर सुगठित खुले सिरके रूखे केश, उसकी उपवास-कठिन यौवन-सन्नद्ध देहकी सब प्रकारके बाहुल्यसे वर्जित विचित्र सुषमा, सबके ऊपर उसके नत-नेत्रोकी अपरिदृष्ट वेदनाका अनुरक्त इतिहास—उसके कठोर सौदर्यके ये सारे उपकरण मानो उसे चडी-पूजनसे ही प्राप्त हुए हैं। देवीकी पूजाके लिए सारे आवश्यकीय सयमका वह निर्वाह करती है। षोडशीके रूपमे वह अपनेको एक साधारण नारी-मात्र समझती है, पर चडीगढकी भैरवीके रूपमे, वह जानती है, 'कि इतनी बडी सम्मानित और गरीयसी नारी इस प्रदेशमे और कोई नही है।' इसीलिए अपना सम्मान नष्ट करने पर भी वह भैरवीका सम्मान यथाशक्य नष्ट नही होने देती। यहाँ तक कि देवीके पूजनके समय वह अपने प्रति कही हुई कठोर-से-कठोर बातोको नही सुनती।

चडीकी भैरवी जैसे सम्मानित पदपर प्रतिष्ठित होनेपर भी षोडशीको पदलोलुपता छू तक नही गई है। जैसा कहा जा चुका है, भैरवी वह इसलिए है क्योकि उसके हृदयमे देवीके प्रति नैसर्गिक भक्ति है, इसलिए नही कि उसे उस उच्च पदकी लालसा है। जीवानदसे स्पष्ट एव स्वाभाविक स्वरमे वह कहती है, "मै इस निर्णयके लिए झगडा नही करना चाहती कि वास्तवमे अभिभावक कौन है, आप लोग अगर ऐसा समझे कि मेरे चले जानेसे मदिरकी भलाई होगी, तो मै चली जाऊँगी एक दिन बिना कुछ समझे-बूझे ही मै भैरवी हुई थी और आज बिदा लेते समय भी मै इससे अधिक कुछ न सोचूंगी।" और अतत वह भैरवीके सारे उत्तरदायित्व एव कर्त्तव्यसे मुक्त होकर अत्यत शाति-पूर्वक गाँव छोडकर चल देती है।

यह एक विलक्षण तथ्य है कि षोडशीका चरित्र जितना ही कठोर है, उतना ही उसमे परोपकार बुद्धिका बाहुल्य है। विरोधी दलके सदस्य होने

पर भी भटके हुए निर्मलको अँधेरी रातमे वह हाथ पकड़कर घर तक पहुँच आती है। हेमके प्रार्थना करनेपर भी वह ऐसा कोई काम करनेको तैयार नही, जिसके कारण उसके और उसके पितामे मनोमालिन्य हो। उसे अपनी गरीब प्रजाका इतना अधिक ध्यान रहता है कि गांव छोड़कर जाते समय वह जीवानदसे यह प्रार्थना करती है कि वे इन दीन-दु.खियोका पूरा ध्यान रखे। अपने भैरवीके कार्य-कालमे वह मदिरमे आये हुए रोगग्रस्त या किसी भी अन्य अभावसे पीडित व्यक्तियोकी पूरी सहायता करती है। जब वे एकदम स्वस्थ हो जाते है तभी वह उन्हे वहाँसे जानेकी आज्ञा देती है। और जब उसे चडीगढकी गरीब प्रजाकी सेवासे विरत होना पडता है तो वह कुष्ठाश्रमकी दासी बनकर जाती है। इसके उपरात जब उसे एक बार फिर गाँव आना पडता है तो वह भी हेमके पिता जनार्दनरायके उपकारके लिए ही, जिन्होने सदैव उसे अपमानित करनेकी चेष्टा की थी।

षोडशीके मनमे अपनी मृत माँके लिए तो श्रद्धा है ही, अपने कुटिल पिताके लिए भी कम ममत्व नही है। उसके पिता तारादास जब उससे रुष्ट होकर सारे घरपर अधिकार कर लेते है, तो वह प्रत्युत्तरमे कुछ भी नही कहती, चुपचाप अपना सामान लेकर चली जाती है। और इसके बाद भी उसे यह पश्चात्ताप रहता है कि उसके कारण उसके पिताको व्यर्थ कष्ट उठाना पडा। आगे भी पिताके सुखकी चिन्ता उसे सदैव रहती है, यद्यपि तारादास अपनी पुत्रीको नीचा दिखानेमे कुछ भी कमी नही रखते।

षोडशीके चरित्रकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उसके पास व्यावहारिक बुद्धिका अभाव नही है, जो शरत्‌की अधिकाश भावुक नारियोके पास प्राय. नही होती। अपढ ग्रामीण व्यक्तियोको किसी कार्य-विशेषके लिए कैसे सगठित किया जाय, यह वह भलीभाँति जानती है। इसीलिए उसके एक इशारेपर चडीगढकी सारी प्रजा चलती है। जमीदार-द्वारा गाँवकी ज़मीनपर अनुचित रूपसे अधिकार किये जानेपर वह एक सभाका आयोजन करती है, और उन निरुपाय एव निरीह व्यक्तियोमे साहसका सचार करती हुई कहती है, "अगर यह बात सत्य है विपिन, तो अपने उन

पॉच-पाँच जवान बेटोसे कहना कि यह पुश्तैनी जायदाद उनकी बूढी मॉसे तिलभर भी कम नही है। ये दोनो ही समान रूपसे उनका पालन करती आई है।" पोडशीके इन शब्दोमे जो सभा-चातुर्य एव वाक्पटुता झलकती है, वह सहसा अतुलनीय है।

पोडशी और जीवानदका पारस्परिक सबध एक विचित्र प्रकारका है। पोडशी जीवानदकी स्त्री है, परतु त्यागी हुई। बादमे मिलनेपर जब वे एक, दूसरेको पहचानते है तो उनकी रागात्मिका वृत्तियॉ परस्पर सम्मिलनके लिए छटपटाती है। पर चाहते हुए भी वे एक-दूसरेके निकट नही आ-पाते क्योकि उनकी विचार-धाराएँ एव मान्यताएँ नितात भिन्न है। उपन्यासके अततक यह सघर्ष चलता रहता है, पर अततोगत्वा सारे सशक्त मनोविकारोके ऊपर प्रेमकी विजय होती है, और पोडशी जीवानदको अपने साथ लिवा ले जाती है। षोडशीको देखकर जीवानदकी रूखी ऑखे सजल हो उठती है। 'इस प्रकार आत्मसमर्पण करके जिसने उसका सारा हृदय जीत लिया है, उसकी ओर देखते ही अकस्मात् उसके पैरोके नीचेकी धरतीतक काँप उठती है।'

पोडशीने जबसे जीवानदको पहचाना है, तबसे वह उसका विरोध करती हुई भी उसके हित-अहितका सदैव ध्यान रखती है। प्रारभमे वह उसे जेल जानेसे रोकती है। फिर जब सागर उसे जीवानदके प्राणात करनेका प्रस्ताव बताकर चला जाता है तो उसके क्लेशका पार नही रहता। उसके अन्य 'सब क्लेश गोष्पदके तुल्य है और जहाँ आज सरदार उसे डालकर अदृश्य हो गया है वह दगा समुद्रके समान है।' गॉवके सारे षडयत्रोके बीच भी पोडशी जीवानदकी सुविधाका ध्यान रखती है, इसमे कोई सदेह नही। वैयक्तिक बातोके लिए वह जीवानदसे झगडा नही करती। यहॉ तक कि उसके सम्मुख वह अपने असतीत्वका कलक भी ओढ लेती है।

जीवानदके सम्मुख पोडशीके दुर्बल पडनेका मुख्य कारण उसका पूर्व-सबध ही है। उपन्यासकारके शब्दोमे 'जीवानदके मुँहसे यही 'अलका' नाम षोडशीके लिए सबसे बडी दुर्बलता है। उसे मालूम न होता था कि

तीन अक्षरोका यह छोटा-सा नाम उसके कहाँ जाकर चोट पहुँचाता हे।' परतु अपने पारस्परिक सबधोमे षोडशी जीवानदके सम्मुख भले ही झुक जाय, गाँवके झगडोको लेकर वह अपने मतपर सदैव अटल रहती है। ऐसे समय जीवानदको अप्रसन्न होकर कहना ही पडता है, "तुम कुछ नही कर सकती, तुम पत्थर हो।" इन गाँवकी समस्याओको लेकर ही जीवानद षोडशीको अपना सबसे बडा दुश्मन मानता हे। वस्तुत पति-पत्नीके बीच-की यह दूरी, जो हमे शरत्‌के उपन्यास 'पडितजी'मे भी मिलती है—अवश्य ही दूसरे कारणोसे, आज हमारे लिए आश्चर्यजनक है, पर तत्कालीन बगालमे यह साधारण बात थी।

षोडशीके चरित्रमे शरत्‌की परपरागत नायिकाओकी एक विशेषता प्रमुख रूपसे मिलती है, और वह है प्रभविष्णुता। पर यह सच है कि इतने गुणोका समाहार होनेके कारण ही उपन्यासकारने षोडशीका व्यक्तित्व हमारे सम्मुख इस रूपमे रक्खा हे। उसकी प्रभविष्णुता अस्वाभाविक नही है। निर्मलके शब्दोमे, "आप साधारण स्त्री है भी तो नही। इसके सिवा सब बातोमे चुप रहनेकी आपकी जिद भी अपूर्व ही है। वास्तवमे आपकी सभी बाते अनोखी है आपकी भक्ति किये बिना रहा नही जाता।" एकदम ऐसी ही भावना षोडशीकी विरोधिनी राय-गृहिणी भी व्यक्त करती है। उनके अनुसार वह 'पढने-लिखनेमे सरस्वती है। ऐसा शास्त्र नही जिसे न जानती हो' अथवा 'आपत्ति-विपत्तिमे गरीबोके लिए ऐसा माँ-बाप गाँवभरमे दूसरा नही है। जब जिस कामके लिए बुलाओ, हँसती हुई हाजिर है, नाही करना तो जानती ही नही।' इसके अतिरिक्त उनका स्पष्ट मत है कि 'षोडशी कभी किसीको धोखा नही देती और न झूठ ही बोलती है।' वस्तुत राय गृहिणीके हृदयमे षोडशीके लिए अत्यत कोमल कोना सुरक्षित है। वह उनकी श्रद्धाकी पात्री है। जीवानद ऐसा व्यक्ति उसके चरित्रकी दृढतासे प्रभावित होकर कहता है, "तुम तो असती नही हो।" ओर तो और उसके कट्टर विरोधी जनार्दनरायको भी यह स्वीकार करना पडता है कि 'षोडशी और कुछ भी करे, देवीकी सपत्ति वह नही चुरायेगी—

एक पैसा भी न लेगी।' षोडशीके लिए कहे गये उक्त सारे वाक्य उसके व्यक्तित्वकी प्रभविष्णुता एव अजेय निष्ठापर भलीभाँति प्रकाश डालते है।

षोडशी—तरह-तरहके कृच्छ्र तप करनेसे जिसका शरीर सूख गया है, जिसका रूप और यौवन कठिन तथा कांति-हीन हो गया है—ऐसी विदुषी सन्यासिनी षोडशी अपनी दृढता, पुरुषोचित आत्मनिर्भरता एव वाक्पटुतामे कदाचित् 'शेष प्रश्न'की कमलका पूर्व रूप है। उसकी सरल विनोदप्रियताको देखकर 'गृहदाह'की मृणालका स्मरण हो आता है। निर्मल बाबूसे वह अनायास ही कहती है, "मै इतनी भोली नही हूँ—मेरे सामने धोखा नही चलता।" षोडशीकी यही उक्ति मानो उसके चरित्रका मूल सूत्र है। शरत्के नारी-पात्रोके अध्येताओके लिए यह उसकी तरफसे चेतावनी है।

'देना पाउना'की दूसरी प्रमुख पात्री हेम है। एक धनिककी पुत्री एव बैरिस्टरकी पत्नी होनेपर भी उसके व्यक्तित्वमे बनाव-शृगारका विशेष आग्रह नही है। ठीक इसीके अनुरूप उसका मन भी है—अत्यत निर्मल एव शात। किसी भी प्रकारके उत्तेजनापूर्ण वातावरणमे वह सयत रह सकती है। षोडशीके अपराधोकी एक लबी सूची प्रस्तुत होनेपर भी वह उन्हे अपरीक्षित होनेके कारण अप्रमाणिक मानती है। सत्यके लिए उसके मनमे इतना आग्रह है कि जनार्दन रायको वह उनके सम्मुख ही मिथ्या भाषणके लिए तिरस्कृत करती है, और अन्तत वह सब स्वजनोके विरुद्ध होकर उनकी अनिच्छा एव क्रोधका ध्यान न करके अपने पुत्रकी मगल-कामनाके लिए देवीका पूजन षोडशीसे ही करवाती है, क्योकि वह जानती है कि भैरवी निर्दोष है।

हेमका चरित्र एक साधारण भारतीय नारीकी भाँति अकित किया गया है। जिस प्रकार वह गलतफहमियोका शिकार होती है उसी प्रकार उसके मनमे पश्चात्तापकी भावना भी जगती है। अपनी भूलोको स्वीकार करनेमे उसे कोई लज्जा नही। इसके साथ-ही-साथ उसकी बुद्धि भी पर्याप्त रूपसे विकसित है। अँधेरी रातमे उसके पतिका हाथ पकडकर उन्हे घरतक कौन पहुँचा गया है, यह समझनेमे उसे देर नही लगती।

षोडशीके लिए हेमके मनमे विशेष रूपसे ममता है। चडीगढमे वह जबतक रहती है, तब तक उसे अपनी इस सखीकी रक्षाका ध्यान रहता है। गाँवके बाहर जानेपर भी वह उसकी चिता रखती है। षोडशीको विपत्तिमे छोडकर वह नही जाना चाहती, और जब वह जाती भी है तो यह आग्रह करके—"इतनी बात आज कह दो बहिन कि अगर कभी अपने आदमीकी जरूरत पडे तो इस प्रवासी छोटी बहिनको याद करोगी।"

हेमकी माँ पूरे कथानकमे पार्श्व-चरित्र मात्र हैं। उनका व्यक्तित्व औसत दर्जेका होते हुए भी कोमल है। अपनी लडकी-दामादके लिए वह प्राणतक देनके लिए तैयार है। घरकी शाति-सुरक्षाके लिए भी वह सदैव व्याकुल रहती हैं। अकारण किसीकी निदा करना उन्हे अच्छा नही लगता। षोडशीकी भलाई न चाहनेपर भी वे उसकी बुराई नही सुन सकती। षोड़शी-के लिए वह निर्मलसे कहती है, "नही बेटा, झूठ क्यो कहूँ, उसके चेहरेकी याद आते ही मुझे न मालूम क्यो रुलाई आती हैं। न मालूम ये लोग मिलकर क्यो उसके पीछे पडे है।"

'देना पाउना'के नारी-समाजकी उक्त व्याख्या करनेके उपरात हम सक्षेपमे कह सकते हैं कि शरत् बाबू अपने इस उपन्यासमे चरित्राकनका वह मर्मस्पर्शी विधान नही दिखा सके जो उनकी अन्य कृतियोमे द्रष्टव्य है। षोडशीका चरित्र, अवश्य ही, मर्मस्पर्शी न होते हुए भी स्मरणीय है। अन्य परपरागत नायिकाओसे भिन्न, उसका व्यक्तित्व सभवत शरत्‌के नारी-चरित्रोमे सबसे सशक्त और कठोर है। अपनी इस भिन्नताके कारण ही उपन्यासकारके विस्तृत नारी-समाजमे उसका स्थान सुनिर्दिष्ट एव महत्त्व-पूर्ण है।

पथके दावेदार

[पथेर दावी]

●

सपूर्ण शरत्-साहित्यमे 'पथेर दावी' ('पथके दावेदार') का अपना विशिष्ट स्थान है। इसके महत्त्वका प्रमुख कारण है कि प्राय यही एक शरत् बाबूका ऐसा उपन्यास है, जिसमें उन्होने मानव-जीवनके रसमय भावावेगोके साथ राजनीतिक क्रातिका बडी कुशलतासे सगफन किया है। कथाकी पृष्ठभूमि निश्चित रूपसे राजनीतिक है। प्रत्येक स्थलपर कुछ न-कुछ राजनीतिक चर्चा पाठकको इसमे मिलेगी। पर इस पृष्ठभूमिपर उपन्यासकारने जो विभिन्न पात्र-पात्रियोके रागात्मक मनोभावोका अकन किया है, वह एक साथ ही हमारे मनकी उदात्त वृत्तियोको आकृष्ट कर लेता है। क्राति—राजनीतिक सत्ताको आमूल परिवर्त्तित करनेके दृढ निश्चय—का एक बोझिल वातावरण लिये हुए भी उपन्यास स्नेह और प्रेम-के परागसे सुगधित है। 'पथके दावेदार' के लगभग सभी पात्र-पात्री—यहाँतक कि वज्र सदृश कठोर सव्यसाची भी—एक ओर भारतवर्षको स्वाधीन करानेकी प्रतिज्ञाका आचरण करते है, और दूसरी ओर अपनी सहज मानव-सुलभ रागात्मिका वृत्तियोको अभिव्यक्ति देते है। क्राति और शातिकी इस अभिसधिमे कथाकी रसमयता अतुलनीय है। अपने राज-नीतिक विचारोके कारण यह पुस्तक एक बार जब्त कर ली गई थी, परन्तु अपनी मर्मस्पर्शी शक्तिके कारण इस उपन्यासने भारतवर्षके प्राय सभी शिक्षित सहृदयोके मनमे घर कर लिया है।

'पथेर दावी' की कथा बहुत सक्षपमे इस प्रकार है—एम० एस-सी० मे उत्तीर्ण होनेके पश्चात् अपनी वृद्ध और अत्यन्त निष्ठावान माँसे किसी

प्रकार आज्ञा लेकर जीविकोपार्जनके लिए अपूर्व रगून पहुँचता है। माँके समान ही अपूर्व भी परम धार्मिक एव आचरणशील है। वर्मा पहुँचकर सारे आचरणोका पालन करते हुए वह किसी प्रकार अपना जीवन-निर्वाह प्रारभ करता है, परन्तु उसका नौकर तिवारी ऊपरके कमरेमे रहनेवाली क्रिश्चियन लडकी भारती जोसेफसे झगडा कर बैठता है। अपूर्वको भी इस झगडेमे साझीदार होना पडता है। पर यह नियतिका व्यग्य है कि अपूर्व और भारतीका सबध, जो आपसमे झगडेसे प्रारभ होता है, धीरे-धीरे समय व्यतीत होनेपर दृढ मैत्रीका रूप धारण कर लेता हे।

भारती एक ऐसी गुप्त समितिकी मत्री बन जाती है, जिसकी स्थापना प्रसिद्ध क्रातिकारी सव्यसाचीने की है, और जिसकी सभानेत्री उसकी प्रेयसी सुमित्रा हे। इस समितिका उद्देश्य है भारतवर्षमे स्वाधीनता लाना। भारती अपूर्वको भी इस समितिका सदस्य बना लेती है। पर अपूर्व बहुत डरपोक है और अपनी नौकरीको बचानेके लिए इस गुप्त समितिका सारा भेद खोल देता है। इस अपराधका दड देनेके लिए अधिकार-समितिकी बैठक होती है, जिसमे सर्वसम्मतिसे अपूर्वको मृत्युदड दिया जाता है। पर सव्यसाची, यह सोचकर कि अपूर्वकी सारी कमजोरियोके बावजूद भारती उससे प्यार करती है, समितिके अन्य सदस्योके रुष्ट हो जानेपर भी अपूर्वको बचा लेता है। वर्माकी जिंदगीसे ऊबकर अपूर्व घर वापस चला जाता है।

इधर 'अधिकार-समिति' का सगठन शिथिल होने लगता है। सुमित्रा भारती और सव्यसाचीके स्नेह-सबधको गलत समझकर जावा जानेके लिए प्रस्तुत होती है। भारती समितिकी कार्यप्रणालीसे मतभेद प्रकट करती है। नवतारा पहले ही अपनी गृहस्थी बसाकर चल चुकी है। इसके अतिरिक्त समितिकी अन्य पूर्वी शाखाओमे भी उपद्रव प्रारभ हो जाते हैं। सव्यसाची इन सबको दबानेके लिए सिगापुर जानेको तैयार होते हैं। इसी बीच अपूर्व भी रगून आ जाता है। बेहाला-उस्ताद शशि, अपूर्व, भारती और सुमित्रासे घोर तूफानी रातमे ही बिदा लेकर सव्यसाची चल देते हैं।

सहसा एक गहरी साँस लेकर शशि बोल उठा—'बुरे दिनोंके साथी हे मित्र, तुम्हे नमस्कार !'

भारती उसी तरह पाषाण-प्रतिमाकी तरह अँधेरेमे खडी रही। शशिकी बात न तो उसे सुनाई ही दी और न वह यही जान सकी कि ठीक उसीकी तरह एक दूसरी नारीकी भी आँखोमे आँसूकी धार बह रही है।"

'पथेर दावी' के इस बडे सजल कथानकमे पाँच नारी पात्रोका चरित्रा-कन हुआ है—भारती, सुमित्रा, नवतारा, अपूर्वकी माँ और भारतीकी महरी। इन पाँच नारी-पात्रोमे-से भारती और सुमित्राके चरित्र प्रमुख हैं। नवतारा और अपूर्वकी माँ पार्श्व-चरित्र-मात्र हैं। भारतीकी महरीका यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। उपन्यासकी प्रमुख सवेदना है भारतीका व्यक्तित्व, ओर उसीको अकित करनेमे शरत् बाबूने सर्वाधिक कुशलता दिखाई है। 'पथेर दावी' जैसे भारतीकी ही कथा है—उसके विभिन्न रूपोमे—अपूर्वकी प्रेयसी, सव्यसाचीकी बहिन, सुमित्राकी सहायिका और अतत 'अधि-कार-समिति' की सयोजिकाके रूपमे भारती ही सदैव हमारी आँखोके सम्मुख रहती है।

भारती सबसे पहले हमे एक नम्र, लज्जाशील और सुशील युवतीके रूपमे अपने पिताके दुर्व्यवहारके लिए अपूर्वसे क्षमा माँगती हुई दिखाई देती है। उसकी यही मूर्त्ति पाठकके हृदयमे जैसे बस जाती है, और वह भी विभिन्न एव बदलती हुई परिस्थितियोमे अपने इन चारित्रिक गुणोको सदैव सुरक्षित रखती है। उपन्यासका प्रारभिक अग भारती और अपूर्वके विभिन्न पारस्परिक सबधोको ही चित्रित करता है। वस्तुत इन दोनो प्रेमियोके बीच सक्राति काल दो अवसरोपर उपस्थित होता है। पहली बार भारतीके हृदयमे अपूर्व और अपने पिताको लेकर द्वन्द्व खडा होता है, और दूसरी बार अपूर्व तथा 'अधिकार-समिति' एव सव्यसाचीके प्रति अपने उत्तर-दायित्वको लेकर। दोनो बार अतत उसकी अतश्चेतनामे अवस्थित उसका अपूर्वके प्रति प्रेम ही विजयी होता है, परन्तु इस सघर्षमयी परि-स्थितियोमे भी भारती अपना कर्त्तव्य बडी कुशलतापूर्वक निभाती है।

वह पिताका साथ देते हुए भी अपूर्वको कष्ट नही देना चाहती। उसके विरुद्ध झूठी गवाही देनेके कारण उसे जो रुपया दड-स्वरूप देना पडा था, उसे वह गुप्त रूपसे उसके कमरेमें डाल देती है। इस प्रकार उसे दोनो ही ओरसे कष्ट उठाना पडता है—पिताका साथ देनेके लिए मिथ्या भाषणके फलस्वरूप उत्पन्न हुआ मानसिक कष्ट, और अपूर्वको गुप्त रूपसे रुपये देनेका आर्थिक कष्ट। यहाँ स्मरणीय है कि भारतीकी आर्थिक स्थिति वहुत अच्छी नही है।

अपूर्वके लिए भारतीकी आत्मीयता एक स्थायी निधि है। अपने आपको पुलिसके खतरेमे डालकर भी वह अपूर्वके सूने कमरेकी रक्षा करती है। उस समय उसके मनमे भयकी स्थिति नही रहती। इसके वाद तो अपूर्वका सामान जिस ढंगसे भारती सजाती है, वह एक स्वजन-द्वारा ही सभव है। यहाँ शरत् जन्म-जन्मान्तरके प्रेमको अत्यत दृढतापूर्वक मान्यता देते दिखाई देते हैं। अपूर्वकी प्रत्येक कठिनाईको भारती सुलझाती हुई चलती है—एक स्थिरवुद्धि गृहिणीकी भाँति। 'इस लडकीकी प्रखर वुद्धि और सव तरफ अद्भुत तीक्ष्ण दृष्टि रखनेकी शक्ति' वस्तुत. इतनी सहज, सरल और आकर्षक है कि उपन्यासके इस स्थलपर आकर वहुतसे सहृदय नवयुवक पाठक यदि अपूर्वकी इस स्थितिसे ईर्ष्या करने लगे तो आश्चर्यकी कोई वात नही।

भारतीके चरित्रकी सवसे वड़ी विशेषता है उसकी अहेतुक दया। मोह-ममता अपने अत्यधिक निखरे हुए स्वरूपमे उसके मनमे उसी प्रकार सहज और स्वाभाविक है, जिस प्रकार रक्त और मास उसके शरीरमे सहज है। चेचक निकलनेपर तिवारीकी परिचर्या भारती जिस तरह करती है, उस तरह केवल एक आत्मीय ही कर सकता है। फिर तिवारीसे उसका कोई विशेष सवध भी नही। एक निपट अनजान पडोसीके नौकरकी भयकर और सक्रामक रोगमे इस प्रकार सेवा-शुश्रूषा केवल वही कर सकते है, जिनके मनमे सभी भूतप्राणियोके लिए दयाका भाव वर्त्तमान हो। भारतीके व्यक्तित्वका यह पहलू हमे अनायास ही तथागतकी अहिसा, जीव-

मैत्री और करुणाकी महिमाका स्मरण दिला देता है। अपूर्वके लिए उसने जो कुछ किया, उसके सबधमे तो यह भी कहा जा सकता है कि जिस पुरुष-ने उसके प्रथम यौवनकी मादकतामे हिस्सा बँटाया, उसके लिए वह जो कुछ भी करे, थोडा है। परन्तु भीषण रोगग्रस्त तिवारी और रगूनके तमाम निम्नजातीय कुली-मजदूरोकी उसने जो सहायता की, वह निष्काम भावसे प्रेरित होकर ही। फिर सबसे बडी बात यह है कि अपने इन पुण्य-कृत्योको भी वह निज स्वार्थ-प्रेरित ही मानती है। यहाँ हमे उसके चरित्रकी उच्चा-शयता स्पष्ट रूपसे दिखाई देती है। अपूर्वसे वह कहती है, (इस गदी बस्तीमें) 'हम सब अपनी ही गरजसे आते है अपूर्व बाबू, इस बातका अनुभव करना ही हमारी अधिकार-समितिकी सबसे बडी साधना है।'

वस्तुत भारती उन सब चीजोसे घृणा करती है, जिन्हे हम जीवनकी कुरूपताएँ कहते है। किसी भी प्रकारकी नृशसता, निर्दयता उसे सह्य नही। जीवनमे जो कुछ भी अश्लील है, असत् है, उसे वह अपने निकट नही आने देना चाहती। उसके इस चारित्रिक गुणका मूल्य तब और बढ जाता है, जब हम देखते है कि वह गलदश्रु भावुकतासे दूर हटकर व्यावहारिक दृष्टि-कोण भी अपनाती है। एक ओर वह पतित और शराबी कुली-मजदूरोको यह कहकर सगठित करती है—'यह सब तुम लोग क्यो बर्दाश्त करते हो? एक बार साथ खडे होकर कहो, यह अत्याचार अब नही सहेगे। फिर देखे, कैसे तुम्हारे बदनपर हाथ उठाते है। सिर्फ एक बार—एक बार अपनी सच्ची ताकतको देखना सीख जाओ, और तुम लोगोसे हमे कुछ नही चाहिए।' परन्तु दूसरी ओर वह इस बातका भी ध्यान रखती है कि कही प्रतिशोधके आवेशमे ये नीच जातिके अशिक्षित लोग कोई सामूहिक हानि न कर बैठे। एक मिस्त्रीके मुँहसे यह सुनकर कि वह एकमात्र पुरजा ढीला करके सारा कारखाना तहस-नहस कर सकता है, भारती डरकर कहती है—'नही-नही, दुलाल, ऐसा करनेकी जरूरत नही। ऐसा मत करना। इससे तुम्ही लोगोका नुकसान है! शायद बहुत-से आदमी मारे जायँ—शायद—नही नही, ऐसी बात सपनेमे भी न सोचना। इससे

बढकर और पाप नही।' इन शब्दोके पीछे भारतीके हृदयके जो सस्कार है, वे नितात स्पष्ट है। वह स्वय सदैव सत्यके मार्गपर चलती है और सबको उसी मार्गपर चलनेकी सलाह देती है। भारतीकी जिस परोपकार-बुद्धिकी ओर हमने अभी सकेत किया, उसका व्यावहारिक रूप हमे तब दिखाई देता है, जब हम रगूनकी उक्त निम्न श्रेणीके व्यक्तियोकी दुर्दशाका अनुमान लगा लेते है। जिन व्यक्तियोको भलाईकी सबसे अधिक आवश्यकता है, वे कृतघ्न होते हुए भी, भारतीसे भलाईकी आशा रख सकते है, इस बातको जानकर अपूर्वको भले ही कुछ विस्मय हुआ हो, परन्तु भारतीके मानसिक सस्थानको समझनेवाले पाठकके लिए यह कुछ भी विस्मयकी वस्तु नही।

जैसा हम पहले कह चुके है, निर्दयता या नृशसताके किसी भी कार्यक्रम-से भारती सहमत नही। यहाँ उसके हृदयपर परम वैष्णव शरत्की मान्यताओका कितना गहरा प्रभाव है, यह बतानेकी आवश्यकता नही। यह कोमल मन उसे उपन्यासकारकी परपरागत नायिकाओसे विरासतके रूपमे मिला है। अपनी इस कोमलताकी रक्षाके लिए, वह 'अधिकार-समिति' छोडने तकको प्रस्तुत हो जाती है, क्योकि उसके सदस्य 'बडे भयकर और निर्दयी है।' यहाँतक कि अपने सबसे अधिक श्रद्धेय—सव्य-साचीसे भी वह निर्भीकतापूर्वक मतभेद प्रकट करती है। डॉक्टर कहते है—'तुम्हारी तरफ देखनेसे ही मालूम होता है कि इन सब कामोके लिए तुम नही हो, तुम्हे इस काममे खीच लाना अच्छा नही हुआ।' इसके उत्तरमे भारतीका सजल और स्निग्ध आग्रह है—'इसमे तुम भी मत रहो भैया।' आगे चलकर एक लबे कथोपकथनमे वह सव्यसाचीसे आग्रह करती है—'भगवान्-के इतने बडे सत्यपर पहुँचनेके लिए इस निष्ठुर मार्गके सिवा और कोई मार्ग खुला ही नही है, यह मै किसी तरह भी नही सोच सकती निष्ठुरताके इस बार-बार चले हुए मार्गसे तुम अब मत चलो। वह द्वार शायद आज भी बद होगा, लोगोके लिए उसे तुम खोल दो, जिससे हम लोग इस ससारमे सभीसे प्रेम करते हुए उस मार्गका अनुसरण करके चलते रहे।' इन सबल

शब्दोके पीछे भारतीके मनकी अहिसा-वृत्ति स्पष्ट बोल रही है। ज़िदगीमे जो कुछ भी हत्याके रक्तसे सना हुआ है, वह सब उसके लिए त्याज्य है, घृण्य है। इसका यह अर्थ कदापि नही कि भारती भीरु है अथवा अपने आपको खतरेमे नही डालना चाहती। वस्तुत उसका मानसिक सस्थान ही ऐसा है, जिसमे असत्के लिए कोई स्थान नही। उसका यह दृढ विश्वास है कि अततोगत्वा हिंसाकी कभी विजय नही होती। अपनी इस आस्थाको वडी शक्तिके साथ वह इस प्रकार व्यक्त करती है—'भैया, तुम्हारा चुना हुआ यह खून-खराबीका रास्ता किसी भी तरह ठीक नही। अतीतकी चाहे जितनी नजीरे तुम दिखाओ, मानस-जीवनमे यह विधान हरगिज सत्य नही हो सकता कि जो अतीत है, जो बीत चुका है, हमेशा सिर्फ वही छाती ठोककर अनागतको नियत्रित करेगा। तुम्हारा मार्ग ठीक नही है यह, फिर भी तुम्हारी इस सब कुछ विसर्जन कर देनेवाली देशकी सेवाको ही मै सिर-माथे लेती हूँ।' यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि ऐसे स्थलोपर, भारतीके सम्मुख डॉक्टर जैसे शक्तिशाली व्यक्तित्वको भी दबना पडता है, और वह केवल उसकी दृढ निष्ठा एव निष्काम स्नेहके कारण।

भारती सुमित्राके लिए मनमे असीम श्रद्धा रखती है। मगर जिस दिनसे उसने सुमित्राको विकराल रूपमे देखा, उसी दिनसे उसकी भक्ति भयमे परिणत हो गई है। अततोगत्वा अधिकार-समितिकी सहारक प्रवृत्ति देखकर वह उससे भी अपना सबध तोड लेती है। अत्यन्त व्यग्र होकर वह डॉक्टरसे कहती है—'माफ करो भैया, तुम्हारे इस खून-खराबीके कामे मै अब नही रहनेकी। तुम्हारी गुप्त समितिका काम अब मुझसे नही हो सकता।' भारतीकी इस कोमल चित्तवृत्तिके साथ-साथ मानवताके प्रति उसकी असीम श्रद्धा घनिष्ठ भावसे निबद्ध है। वह मनुष्यको सबसे महान् मानती है, उससे ऊपर कुछ भी नही। इसीलिए डॉक्टर आदमीको जब जानवर कहकर सबोधित करते है, तो वह इसका तीव्र विरोध करती है। उसका कहना है—'कारखानोके मजदूर-मिस्त्रियोकी हालत तो मै अपनी आँखोसे देख आई हूँ। उनका पाप, उनकी कुशिक्षा, उनकी पशु-जैसी अवस्था—

इनमेसे किसीका भी रच-मात्र प्रतिकार अगर जिन्दगी भरमे कर सकी, तो उससे वढकर सार्थकता और क्या हो सकती है !' मानवताके भविष्यमे अत्यधिक आशावादी होते हुए वह आगे कहती है—'आदमीकी सारी-की-मारी खोज अभी खत्म नही हो गई है। एकके मगलके लिए दूसरेका अमगल करना ही होगा, इसे मै किसी भी तरह चरम सत्य नही मान सकती—तुम्हारे कहनेपर भी नही।'

भारतीका हृदय अत्यन्त कोमल, उदार एव मानवताका प्रेमी है। उसके हृदयमे राष्ट्रियता घर कर गई है, परन्तु उसकी इस राष्ट्रियताके वावजूद उसके मनमे किसी जाति या मतके प्रति विद्वेपकी भावना नही है। राष्ट्रियताके ऊपर भी मानवताका आदर्श उसके लिए अधिक ग्राह्य है। इसीलिए सारी जातिके विरुद्ध किसीका भी विद्वेप उसे अत्यन्त व्यथित कर देता है। जव सव्यसाची सारी अँगरेज जातिकी अत्यन्त कटु शब्दोमे निंदा करने लगते है, तो भारतीके लिए यह असह्य हो उठता है। उसके विशाल हृदयमे इस प्रकारकी सकीर्णताओ और सकुचित वृत्तियोके लिए कोई स्थान नही। उसके निकट 'देश' से भी बढकर 'मनुष्य' है, और उसीके शब्दोमे 'मनुष्यके साथ मनुष्य क्या किसी भी तरह मित्रता नही कर सकता ?' एक ओर वह अँगरेज शोपकोको भारतसे निकालना चाहती है, पर दूसरी ओर वह इस विदेशी जाति-द्वारा किये गये उपकारोको भुला भी नही देती। इस प्रकार भारतीका निरपेक्ष एव निष्पक्ष विचारक-रूप सचमुच ही महिमा-मय हो उठता है। सव्यसाचीके सम्मुख उसे चेतावनी-सी देती हुई वह कहती है—'हृदयमे इतना विद्वेष भरकर तुम अँगरेजोका नुकसान शायद कर भी सको, पर उससे भारतवासियोका कल्याण नही होगा, यह निश्चय समझ लेना।' भारतीके इस प्रकारके मानसिक सस्थानमे किसी भी असत् प्रवृत्तिका एकाएक प्रवेश नही हो सकता, यह हमे स्पष्ट दिखाई देता है। 'अधिकार-समिति' के षड्यत्रकी भापमे उसका दम घुटने लगता है, यह वह स्वय वताती है। सेक्रेटरी होते हुए भी उसकी कार्य-पद्धतिपर उसे ज़रा भी श्रद्धा नही। वह स्पष्ट कहती है—'यह एक दिनके लिए भी मैने कभी नही

सोचा था कि तुम्हारी अधिकार-समितिका मार्ग इतना बडा पापका मार्ग है . । मैं निश्चय जानती हूँ, तुम्हारे इस दयाहीन, निष्ठुर, ध्वसके मार्गसे कल्याण हरगिज नही हो सकता। मेरा जो स्नेहका मार्ग है, मेरा जो करुणाका मार्ग है, मेरा जो धर्म-विश्वासका मार्ग है—वही मार्ग मेरे लिए श्रेय है, वही मार्ग मेरे लिए सत्य है।' इन शब्दोमे, ऐसा जान पडता है, मानो भारतीका सारा व्यक्तित्व उतर आया हो। प्रतिहिंसामे उसका विश्वास नही, हिसामे उसकी आस्था नही ! 'धर्म और शातिका मत्र' ही उसके निकट ग्राह्य है और उसकी प्रतिष्ठाकी उसे आशा भी है।

उक्त विश्लेषणसे स्पष्ट है कि भारतीका निष्कलुष व्यक्तित्व जीवन-के महान् आदर्शोसे प्रेरित है। वह उन सभी वस्तुओको चाहती है, जो अपनी प्रकृतिमे शुभ हैं । नैतिकताकी दृष्टिसे, क्रिश्चियन होते हुए भी वह परम वैष्णव है। यहाँ तक कि वह अपने अग्रज-सदृश सव्यसाचीके साथ भी रातमे अकेले रहते हुए सकोचका अनुभव करती है। शशि और नवतारा-के विवाहका वह विरोध करती है, क्योकि वह उसके सस्कारोके विपरीत है। इस प्रकार वह नर-नारीके पारस्परिक सबधको एक पवित्रता देना चाहती है, मुक्त भोगका रूप नही। भारतीय स स्कारो और सस्कृतिकी वह हामी है। उसका नैतिक धरातल बहुत ऊँचा है। सव्यसाचीसे वह कहती है—'नर-नारीका प्रेम क्या तुम्हारे समान सभीके लिए मजाकका विषय है भैया, जो ताशकी हार-जीतके समान इसकी हार-जीतमे भी अट्टहास करनेके सिवा तुम्हे और कुछ नही सूझता ?' वस्तुत वह ऐसे सभी स्थलोपर सव्यसाचीका विरोध करती है, जहाँ उसके मानव-जीवनके महान् आदर्शोके विरुद्ध कोई बात कही जाती है। डॉक्टर द्वारा सत्यासत्य-की दी गई परिभाषा उसके निकट ग्राह्य नही। समस्त अँगरेज जातिके प्रति विद्वेष, सारी प्राचीन सस्कृतिका विरोध—ये कुछ ऐसी बातें है, जहाँ वह अपने श्रद्धेय 'भैया' से अलग अपना स्वतत्र मत रखती है। प्राचीनताके पक्षमे वह कहती है—'कोई एक सस्कार या रीति-नीति सिर्फ प्राचीन

होनेके कारण ही क्या निष्फल, वृथा और त्याज्य हो जाती है? तो मनुष्य बिना किसी संशयके दृढताके साथ खडा काहे पर रहेगा, भैया?'

भारतीका व्यक्तित्व अपने-आपमे अत्यन्त कोमल-सजल होते हुए भी पर्याप्त रूपसे बुद्धिवादी है। उसकी तर्कशैली अत्यन्त प्रखर एव सुलझी हुई है। अपने विचारोको वह एक निखरे हुए रूपमें श्रोताके सम्मुख रखती है और उसकी अभिव्यक्ति-प्रणाली इतनी मार्मिक है कि विरोधी पक्षको उसकी बाते बहुत ध्यानसे सुननी पडती है। तर्कोमे वह हठधर्मी कही नही होती, उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति उसके गहन चिंतनकी सूचक है। उसके इन्ही गुणोके कारण पारस्परिक विवादमे सव्यसाचीको भारतीसे स्थान-स्थानपर दबना पडता है। अपूर्वको अधिकार-समितिका उद्देश्य समझाते हुए वह कहती है—'हम सभी राहगीर है, पथिक है। मनुष्यको मनुष्यता-की राहपर चलनेके सब तरहके दावे या अधिकार मानते हुए हम समस्त बाधा-विघ्नोको रौदते हुए चलेगे। हमारे बाद जो लोग आयँगे, वे बिना किसी उपद्रवके चल सकें, उनकी अबाध गतिको कोई रोक न सके, यही हम लोगोका प्रण है। आयँगे आप हमारे दलमे?' भारतीके इन वाक्योमे वह शक्ति है, जो बडे-बडे नेताओके लबे और ऊबानेवाले भाषणोमे नही होती। यही नही, उसके सारे कथोपकथनोके पीछे कोई एक ऐसी आस्था बोलती है, जिसके कारण उसके श्रोताओको उसके सम्मुख झुकना पडता है। पतिके कर्त्तव्योके सबधमे वह अपूर्वसे कहती है—'आपकी निष्ठुरताके बदले जितना ही वह अपना कर्त्तव्य पालन करेगी, उतने ही आप उसकी दृष्टिमे छोटे होते जायँगे। और, स्त्रीकी दृष्टिमे अश्रद्धेय और हीन होनेसे बढकर दुर्भाग्य ससारमे और है ही नही, अपूर्व बाबू।' भारतीकी विश्लेषण-प्रियता और बौद्धिकताके और भी बहुतसे उदाहरण उपन्यासमे स्थान-स्थानपर मिल सकते है। वस्तुत उसका प्रत्येक कथन उसकी मानसिक प्रौढताका परिचायक है।

भारतीके व्यक्तित्वकी एक प्रमुख विशेषता है, उसकी सर्वतोमुखी सहिष्णुता। वह इस बातका निरतर ध्यान रखती है कि कही उसके किसी

कार्यसे कोई रुष्ट या असतुष्ट न हो जाय । तिवारीकी अत्यन्त स्नेह -भाजन होनेपर भी 'वह न तो उसके रसोईघरमे जाती थी और न कोई चीज हो छूती थी।' सबको प्रसन्न देखना ही उसका जीवनमे एकमात्र उद्देश्य जान पडता है । इसीलिए दूसरोकी सुविधाके लिए वह सदैव चितित रहती है । अपूर्वकी तो छोटी-से-छोटी बातका उसे ध्यान है । जीवनके अनेक छोटे-बडे कष्टोके प्रति सहिष्णु होकर भारतीने जो आदर्श गृहिणीत्व प्राप्त किया है, उसका अदाज हमे तभी लग सकता है, जब हम उसकी माता-पिताकी मृत्युके उपरात असहाय अवस्थाकी मनोयोगपूर्वक कल्पना करे । उपन्यासकारने उसके इस जीवनपर विशेष प्रकाश नही डाला है, पाठकोकी बोधगम्यतापर छोड दिया है । परन्तु उसकी सहनशीलताका आभास हमे उसके व्यक्तित्व-के प्राय सभी रूपोमे मिलता है ।

अधिकतर लोग दूसरोकी विचारधाराके प्रति अनुदार होते है, किंतु भारती इस क्षेत्रमे भी उदार एव सहिष्णु है । वह सबके मतोका आदर करती है, भले ही वह उनका विरोध करती हो । प्राचीनतम परपराओसे लेकर नवीनतम आचारोका वह अध्ययन करती है । और बडी ही सहृदयता-पूर्वक वह उनपर अपना मत देती है । सव्यसाची-द्वारा देशके राजनीतिज्ञो-पर लगाये गये आक्षेपोका वह दृढतापूर्वक उत्तर देती है । यही नही, वह बडे स्पष्ट शब्दोमे यह भी कह देती है—'मत और मार्ग अलग होनेसे किसी-पर व्यग्य कसना शोभा नही देता ।'

भारतीके चरित्रके उपर्युक्त विश्लेपणसे स्पष्ट है कि नारी-जीवनकी अत्यन्त उदात्त भावनाओका समाहार उसके व्यक्तित्वमे हुआ है । तीखी-से-तीखी बौद्धिकता एव सरल-से-सरल मनोवेग दोनो ही उसके जीवनमे समान रूपसे सहज है । पर इसे चाहे नियतिका व्यग्य कहिये या प्रणयकी अद्भुत शक्ति कि इतने महिमामय व्यक्तित्वका स्नेह अपूर्व जैसे सरल एव निरीह (या मुग्ध ?) प्राणीपर केन्द्रित हुआ, किंतु इन दोनो हृदयोके मिलनका प्रमुख कारण सभवत दोनोकी निश्छलता है ।

भारती अपूर्वको उसकी सारी अच्छाइयो तथा बुराइयोके साथ प्यार करती हे। कथाके प्रारभमे शरत् बाबूने भारतीका अपूर्वके प्रति जो विचित्र एव अस्थिर आचरण दिखाया है, वह मनोविज्ञानके गूढ तत्त्वोपर आधारित हे। कही अपूर्वके सम्मुख भारती अपना आत्माभिमान प्रदर्शित करती है और कही आत्मसमर्पण, परन्तु उसके कही-कही विरोधी लगनेवाले व्यवहारोमे भी आत्मीयता सर्वत्र समान रूपसे दिखाई देती है। अपूर्वके छोटे-से-छोटे कार्योको वह स्वय करती हे या किसीसे करवा देती है, और इसीलिए प्रारभमे ही वह अपूर्वके विश्वासको अपना लेती हे। अपूर्व मानो उसके नियत्रणको चुपचाप स्वीकार कर लेता है, और भारती एक प्रकारसे उसकी स्थानीय रक्षक बन जाती है। कही-कही तो अपूर्वको स्पष्ट रूपसे भान होता है कि उसके लिए इतना सब कुछ माँ के सिवा और कोई नही करता। मगर जब कभी भारती खीझ उठती है तो अपूर्वको कहना पडता है कि उसको तो समझना ही मुश्किल हे, परन्तु इन सब बातोके बावजूद यह 'कडी लडकी' भारती अपूर्वसे प्रेम करने लगी है, इस तथ्यको वह स्वय जानती है। इसीलिए वह अपूर्वके सम्मुख विशेष सकोचका आचरण नही करती, यद्यपि अग्रज-सदृश सव्यसाचीके साथ अकेले रात्रि व्यतीत करनेमे उसे आपत्ति होती है।

धीरे-धीरे भारती अपूर्वकी सारी जिम्मेदारी अपने सिर ले लेती है। और इसे चाहे पूर्व सस्कारोका स्नेह कहिये या साहचर्यजनित मोह, जिसके कारण 'आपद-विपद्मे उसके लिए इतनी बडी नि सशय, निर्भर जगह इस प्रदेशमे और कही नही है', इस सत्यको स्वत सिद्धकी भाँति अपूर्वके हृदयने हमेशाके लिए स्वीकार कर लिया है, यद्यपि भारती स्वय इस स्नेह-सबधको विधाता-द्वारा दिया हुआ मानती है। अपूर्वसे वह कहती है—'भगवान् ही बोझ लाद दे, तो शिकायत किसके विरुद्ध की जाय, बताइये ? बुला लाये डॉक्टर बाबू, और अब झझट उठाना पड रहा है मुझे। मुझे तो डर हे कि जिन्दगी भर मुझको ही आपका बोझा न ढोना पडे ?' इतना ही नही, भारतीका दृढ विश्वास है कि ईसाईकी लडकी होने-

पर भी अपूर्वको कभी-न-कभी उसके हाथका बनाया हुआ खाना खाना पडेगा। वह अपने अतरतमकी इच्छाको व्यक्त करती है—"स्वभाव तो मेरा जायगा नही अपूर्व बाबू, कोई काम तो चाहिए ही। लेकिन आप जैसे अनाडीके ऊपर अगर सरदारी पा जाऊँ, तो और सब काम छोड-छाड दूँ।"

केवल एक स्थानपर भारती और अपूर्वके प्रेममे व्याघात पडता है। वह तब जब अपूर्व सव्यसाची और अधिकार-समितिकी बुराई करता हे और कुछ समय बाद अधिकार-समितिके गुप्त भेदोको उद्घाटित कर देता है। इस समय भारतीके सम्मुख दो रास्ते है या तो वह अपने प्रेमके सम्मुख देशसेवा एव कर्त्तव्यके सिद्धातोकी बलि दे, या वह अपने इन उच्च आदर्शोके लिए अपने प्रथम यौवनके रागात्मक उभारको असमय ही नष्ट कर दे, परन्तु वह इन दोनोके बीचसे एक ऐसा मध्यम मार्ग चुनती है, जो इन दोनो-मे अधिक कठिन एव अधिक महान् है'। वह अपने प्रेमकी भी रक्षा करना चाहती है, एव अपने सिद्धातोकी भी। और इन दोनोके लिए वह अपने प्रिय मिलन-जन्य सुखका त्याग करनेको प्रस्तुत हो जाती है। अपूर्वसे वह कहती है—'आपकी बात ही सच है, अधिकार-समितिमे आपके लिए स्थान नही होगा। भविष्यमे फिर कभी किसी भी बहाने मेरे पास आनेकी कोशिश न कीजिएगा।' इस समय कितने बडे आत्मोत्सर्गका पर्व भारतीके सम्मुख आ उपस्थित हुआ है, इसे सहृदय जन भली भाँति जान सकते है।

अधिकार-समितिके प्रति अपूर्वका द्रोह देखकर भारतीका मन ग्लानि-मे भर उठता है। उसे इस बातका क्षोभ होता है कि क्यो वह एक ऐसे दुर्बल व्यक्तिको अपना हृदय दे बैठी। प्रेमीके सम्मुख मानसिक दौर्बल्यकी यह कदाचित् तीव्रतम स्थिति होती है। पर भारतीको हम इस स्थितिमे भी अत्यन्त दृढ एव स्थिर पाते है।

सारी अच्छाइयो-बुराइयोके बावजूद भारती अपूर्वको प्यार करती है। नर-नारीके प्रेमकी महत्ताको वह भलीभाँति जानती है। इसीलिए जहाँ वह एक ओर अपने अपरिहार्य, दुर्दमनीय प्रेमके लिए पश्चात्ताप करती है—यह कहकर कि "मै किस अभागेके चरणोमे अपना सर्वस्व विसर्जन

किये बैठी हूँ", तथा अपूर्वको 'क्षुद्र, लोभी, सकीर्ण-हृदय तथा डरपोक' जैसे विशेपणोके साथ सयुक्त करती है, वही उसे अपने इस प्रणय-व्यवहारसे सतोप भी है। सव्यसाचीके सम्मुख प्रथम वार अत्यन्त स्पष्ट शब्दोमें इस प्रेम-सबधका प्रकाशन करते हुए वह कहती है—'अपूर्व वावू भी तो मुझसे प्रेम नही कर सके, मगर मै तो कर सकी हूँ . .भैया, इस विश्वविधानके प्रभु अगर कोई हो, तो उन्हे नारी-हृदयके इतने वडे प्रेमका ऋण चुकानेके लिए अपूर्व वावूको उसके हाथ सौपना ही पडेगा।' पर यहाँ ध्यान देनेकी वात यह है कि भारतीके इस प्रेमकी पृष्ठभूमिमे ऐद्रिकताका लेश भी नही है। वासनासे यह प्रेम उत्पन्न नही हुआ हे। यदि भारती अपूर्वको पा सकती, तो उसका जीवन धन्य हो जाता, किंतु यदि उनकी स्त्री होकर वह घर-गृहस्थी नही कर पाती, तो इसका मतलब यह नही कि उसका जीवन व्यर्थ हो गया। इस प्रकार भारतीका यह प्रणय मात्र परिणय-का सावन नही है, वरन् वह स्वय अपने-आपमे साध्य है। उसे किसी अन्य सार्थकताकी अपेक्षा नही। जैसा कि भारती स्वय एक स्थानपर कहती है, उसकी आतरिक इच्छा केवल अपूर्वको अपनी आँखोके सामने रखनेकी है। जहाँ उसकी इस व्यवस्थामे अपूर्व कुछ व्याघात उत्पन्न करना चाहता है, वही वह उसे जहर खानेकी धमकी देती है।

भारतीके मनमे सव्यसाचीके प्रति अटूट श्रद्धा है। परिचय देकर वह उन्हे छोटा नही करना चाहती। वह सव्यसाचीको अग्रज-सदृश सम्मान देती है, और सव्यसाची भी उसे 'वहना' जैसे दुलारसे भरे हुए सबोधनका पात्र वनाते हैं। वहिनके समान ही वह सदैव उनकी रक्षाके लिए चिंतित रहती है—प्राण देकर भी उन्हे बचा लेना चाहती है।

भारती और सव्यसाचीकी घनिष्टताको देखकर सुमित्राके मनमे शका उत्पन्न होती है, परन्तु जब वह इन दोनोंके निर्मल स्नेहका स्वरूप देखती है, तो उसे अपने विचारोके लिए पश्चात्ताप होता है। जव सव्यसाची सिंगापुर जानेके लिए प्रस्तुत हो जाते है, तो भारतीके मनमे शोकका सागर

उमड़ पड़ता है, वह सहसा रोने लगती है। भारती और सव्यसाचीका यह स्नेह-सबध सचमुच ही स्पृहणीय है। इन दोनो महिमामय व्यक्तित्वोके बीच भाई-बहिनका यह रिश्ता जिदगीकी वीरानगीमे सघन कुजके समान है। व्यर्थके ढोगोके विरुद्ध परन्तु आचरणशील, चट्टानसे भी अधिक दृढ, किंतु गुलाबसे अधिक कोमल, रागके सागरमे आकठ डूबी हुई, किंतु फिर भी निष्काम—ऐसी है 'पथेर दावी' की भारती, जिसका चरित्र बहुत ही उज्ज्वल है। कष्ट-सहिष्णुता एव धैर्य-शालीनता एव सरलताकी प्रतिमूर्त्ति भारती शरत्‌के नारी-समाजमे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

भारतीके उपरात दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र 'पथेर दावी' मे सुमित्राका है। इस विदुषी रमणीका चरित्र उपन्यासमे अपेक्षाकृत कम अकित हुआ है, पर है अत्यन्त प्रभावोत्पादक। उसका रूप आश्चर्यजनक है, कही भी कोई कमी नही। अपूर्व उसे देखते ही ताड जाता है कि नारीके द्वारा अगर किसी समितिका सचालन हो सकता है, तो वह यही होनी चाहिए। ऐसा जान पडता है, मानो शासन करनेके लिए ही उसका जन्म हुआ हो। उसके मुखसे निकला हुआ प्रथम वाक्य इस प्रकार है—'मनोहर बाबू, आप कोई कच्चे वकील नही है। आपका तर्क अगर असबद्ध हुआ, तो मै मीमासा नही कर सकूँगी।' अनुपम रूप-वर्णनकी पृष्ठिभूमिमे ये शब्द पाठकके मन-पर गहराईके साथ चोट करते है। वह समझ जाता है कि इस बार नारीका जो रूप उसके सम्मुख आ रहा है, वह साधारण नही है। उपन्यासकारके शब्दोमे—'उसके स्वल्प भाषणसे, उसके प्रखर सौन्दर्यके प्रत्येक पदक्षेपसे, उसके सयत गभीर वार्त्तालापसे, उसके अचचल आचरणकी गभीरतासे, इस दलमे रहते हुए भी उसके दूरत्वको सब भीतर-ही-भीतर अनुभव करते थे।'

सुमित्राके व्यक्तित्वका एक पहलू उपन्यासमे अपेक्षाकृत अधिक उभर-कर आया है और वह है उसकी निष्ठुरता। उसका इतिहास भारतीको बताते हुए डॉक्टर कहते है—'ससारमे ऐसा कोई काम नही, जो वह न कर सकती हो। इक्कीस सालके तमाम सस्कारोको जो एक दिनमे धो-पोछकर

साफ कर सकती है, उससे मैं डरता हूँ। लेकिन है बडी निष्ठुर।' जिस व्यक्तिको डॉक्टर 'निष्ठुर' कह सकते हैं, उसकी निष्ठुरता सिद्ध करनेके लिए किसी अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नही। सचमुच सुमित्राके अक्षत रूपने उसे सबकी पहुँचसे दूर—निष्ठुर और निर्मम बना रखा है। आगे चलकर सुमित्राके व्यक्तित्वका वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहता है—'सुमित्राको मित्रके रूपमे समझ लेनेका दु.साहस किसी भी स्त्रीके लिए सहज नही—भारती भी उससे प्रेम नही कर सकी, परन्तु यह मानकर कि सब विषयोमे वह असाधारण श्रेष्ठ है, उसने उसे अपने हृदयकी भक्ति अर्पित की थी, मगर उस दिन अपूर्वका चाहे जितना बडा अपराध क्यो न हो, नारी होकर इतनी आसानीसे उसकी हत्या करनेका आदेश देनेसे उसकी भक्ति असीम भयमे परिणत हो गई थी—बलिका पशु जैसे खून-सने खड्‌गके सामने डर जाता है, उसी तरह।' भारतीके ही समान 'पथेर दावी'के अनेक पाठकोकी प्रतिक्रिया सुमित्राके सबधमे इसी प्रकारकी हुई होगी, ऐसा सोचना नितात स्वाभाविक है।

सुमित्राकी कर्त्तव्यपरायणता एव निर्ममतापर विचार करते हुए भारती सोचती है, 'जिनके लिए अपने जीवनका मूल्य नही, राजद्वारमे कानूनन जिनके प्राण जब्त हो चुके हैं, वे इसपर कैसे निर्भर करते ?' उसके जन्म, उसकी शिक्षा, उसके कैशोर और यौवनका विचित्र इतिहास, उसकी अनासक्तिकी अनतिवर्तनीय दृढ ससक्ति, उसका कर्त्तव्य-ज्ञान, उसका पाषाण हृदय—इन सबमे भारतीको मानो एक तरहकी सगति दिखाई देने लगती है। उसे मालूम होता है, स्नेह और करुणाके नाम सुमित्रासे कुछ चाहने और भीख माँगनेके समान मजाक दुनियामे और कुछ नही।

निष्ठुरताके अतिरिक्त सुमित्राके व्यक्तित्वमें सर्वत्र एक गहरी रहस्य-मयताकी छाप है, जिसमेसे कही-कही उसका डॉक्टरके प्रति मौन प्रणय अवश्य झलक जाता है। उपन्यासकारके शब्दोमे—'ज्यादा बातचीत करनेकी उसकी प्रकृति ही नही। एक स्वाभाविक और शात गाभीर्यके साथ वह हमेशा सबसे व्यवधान रखकर चलती है।' यह कहनेकी आवश्य-

कता नही कि उसका यह व्यवधान रखकर चलना ही उसे इतना रहस्यमय बनाता है। किसीसे अधिक आँख मिलाकर बात करना उसे पसद नही। वादविवादोके बीच वह प्राय नीचेको निगाह किये, मूर्त्तिकी तरह स्थिर बैठी रहती है।

सुमित्राकी विचारधारा एकदम सुलझी हुई एव स्पष्ट है। वह जो कुछ कहती है, वह सब काफी सोच-समझकर। देश-सेवा उसके निकट जीवनका सबसे बडा आदर्श है। अपनी मित्रकी पत्नी नवताराको 'अधिकार-समिति' से वापस ले जानेके लिए आये हुए मनोहर बाबूसे वह कहती है—'स्त्री पतिके साथ नही रहना चाहती, देशकी सेवा करना चाहती है इसमे अन्यायकी तो कोई बात नही दिखाई देती!' आगे चलकर वह अपूर्वसे भी अत्यन्त स्पष्ट शब्दोमे कहती है—'देशसे बढकर मेरे लिए और कुछ भी नही है।'

किरणमयी और अभयाके समान सुमित्रा भी मूलत विद्रोहिणी है। नारीके ऊपर पुरुषके एकछत्र अधिकारका वह तीव्र विरोध करती है। सुमित्रा प्रेमकी स्वाभाविक गतिको अधिक श्रेयस्कर मानती है। नर-नारी-के मनका अनुराग अपने प्राकृतिक रूपमे बहे, यही उसकी धारणा है। अपूर्वसे वह कहती है—'समाज और वशके नामपर व्यक्तियोको अबतक बलि किया जाता रहा है, पर फल उसका अच्छा नही हुआ। आज वह नही चल सकता। प्रेमकी सबसे बडी आवश्यकता उत्तर-पुरुषके लिए न होती, तो ऐसे जबरदस्त स्नेहकी व्यवस्था उसके अदर टिक ही नही सकती थी। विवाहित जीवनके इस व्यर्थ मोहकी मायासे नारीको अलग होना ही पडेगा। उसे समझना ही होगा कि इसमे उसके लिए लज्जाकी बात है, गौरवकी नही।'

स्पष्ट है कि सुमित्राका चरित्र जहाँ एक ओर 'चरित्रहीन' की किरण-मयी और 'श्रीकात' की अभयाका अधिक व्यवस्थित, संयमित और विकसित तथा प्रौढ रूप है, वही वह आगे आनेवाली 'शेष प्रश्न' की कमलका पूर्व-रूप भी है। सुमित्राके कई वाक्य तो प्राय ज्यो-के-त्यो उठाकर लेखकने

कमलके मुखमें रख दिये है। इस प्रकारके दो वाक्य यहाँ उद्धृत किये जाते है—"किसी वातको बहुत दिनोसे वहुत-से आदमी कहते चले आये हो, तो इतने ही से वह सच्ची नही हो जाती" और "जिस समाजमे केवल 'पुत्रार्थे' ही भार्या ग्रहण करनेकी विधि है, नारी होनेके कारण उस विधिको तो मै श्रद्धाकी दृष्टिसे नही देख सकती।" ठीक यही भावनाएँ शव्दोके कुछ हेर-फेरके साथ 'शेष प्रश्न' की कमलने भी व्यक्त की है।

यहाँ स्मरणीय है कि उच्चकोटिकी विचारक एव तार्किक होते हुए भी सुमित्रा वादविवादके बीच कभी उत्तेजित नही होती। तीखी-से-तीखी बातोको भी वह अत्यन्त शातिपूर्वक सुनती है। मनोहरके वीभत्स व्यग्य-से उसके चेहरेपर चाचल्य नही दिखाई देता। वह केवल इतना ही कहती है—'मनोहर वाबू, हमारी समितिमे सयत भावसे वात करनेका नियम है।' उसकी सतत वर्त्तमान रहनेवाली शालीनतासे स्पष्ट जान पडता है कि वह इन साधारण जनोसे इतनी ऊँची है कि वहॉतक उनकी अवमानना नही पहुँच सकती।

सुमित्राके विद्रोहकी पृष्ठभूमिमे हमे दो वाते दिखाई देती है। एक तो उसका गत जीवन इतना अव्यवस्थित रहा है कि अब वह शातिके बारेमे कदाचित् ठीक तरहसे सोच ही नही सकती। उसका प्रथम यौवन जिस लज्जा और दुराचरणकी छायामे बीता है, उसकी यादने उसके मनमे जैसे विद्रोह भर दिया हो। दूसरा कारण कदाचित् उसका असमर्पित यौवन है। सुमित्राके शरीरसे फूट-फूटकर निकलनेवाला रूप अपने-आपमे सार्थक नही है। उसके यौवनकी अजलि अभीतक अस्वीकृत ही है। सव्य-साचीने उसके समर्पणको ग्रहण नही किया, प्रणयकी इस निराशाने भी उसके मनको विद्रोही बनाया है। अव तो वह समाजकी व्यवस्थामे आमूल परिवर्त्तन चाहती है। अपूर्वके आक्षेपोका उत्तर देते हुए वह कहती है—'अशाति और विद्रोहके मानी तो अकल्याण नही है, अपूर्व बाबू! जो रोगी है, कमजोर है, जिसके झुर्रियाँ पड रही है, वही तो अपनेको उत्कठित सावधानीके साथ बचाता रहता है कि किसी तरफसे उसे धक्का न लग

जाय । रात-दिन क्षण-क्षण इसी डरसे वह सूखकर काँटा होता जाता है, ज़रासे हिलने-डुलनेमे ही उसकी चुटकियोमें जान आ जाती है । और अगर समाजकी ऐसी ही हालत हो गई हो, तो हो जाने दीजिये, इस पार कि उस पार ।' इन पक्तियोमे वह अत्यन्त प्रवल, परन्तु सयमित ढगसे अपनी क्रातिप्रियताको व्यक्त कर देती है ।

'अधिकार-समिति' के प्रति सुमित्रा अपने सारे कर्त्तव्योको बडे मनोयोगसे पूरा करती है। अस्वस्थ होनेपर भी वह समितिके तत्त्वावधानमे होनेवाली बृहत् सभाका सचालन करती है। वस्तुत यह 'कर्त्तव्य कठोर अशेष-बुद्धि-शालिनी अधिकार-समितिकी भयशून्य तेजस्विनी सभानेत्री' अपनी रागात्मक वृत्तियोको दो स्थानोपर अभिव्यक्ति दे सकी है। इन दो साझीदारोमे एक सस्था है—अधिकार-समिति, जो उसकी देशप्रियतासे सवद्ध है, एव दूसरा व्यक्ति है—सव्यसाची । इन दोके अतिरिक्त कदाचित् किसी भी तीसरी वस्तुको सुमित्रा अपना नही सकी। उसके अतरके कोमलतम भाग केवल इन्ही दोके लिए सुरक्षित रह गये ।

हाड-मासके वने व्यक्तियोमे सुमित्रा केवल सव्यसाचीसे प्रेम कर सकी है। यह दूसरी वात है कि उसे अपने प्रेमका पूर्ण प्रतिदान न मिला हो। अपने मुकदमेसे छुटकारा पाकर भी सुमित्राने डॉक्टरको छुटकारा नही दिया था। इसके वाद वह विभिन्न और वदलती हुई परिस्थितियोमे भी डॉक्टरके प्रभावसे मुक्त न हो सकी। कई वार अधिकार-समितिके नियमोको लेकर उसका सव्यसाचीसे मतभेद हुआ, पर इसके वावजूद उसके अतरतमका प्रणय पूर्ववत् रहा। भारती और सव्यसाचीकी घनिष्टताने भी उसके प्रेममे ईर्ष्याका भाव भरा था, परन्तु इससे उसकी मौलिक वृत्तियोमे कोई अन्तर नही आया। सव्यसाचीकी हितचिंता उसके लिए सवसे ऊपर रही ।

परन्तु इतनेपर भी सुमित्राकी रागात्मिका वृत्ति अपूर्व रही है। डॉक्टरको देश-सेवाके कर्मठ जीवनसे इतना अवकाश ही न मिला कि वे सुमित्रासे कभी प्रेमकी दो वाते करके उसके मनको सात्वना दे सके। फिर भी यह कठोर

रमणी सव्यसाचीसे अपने बारेमे कुछ सुननेके लिए सदैव उत्सुक रहती है । और, पूरे कथा-भागमे जहाँ-कही सव्यसाचीने सुमित्राके सबधमें कुछ भी अपनावकी ओर इगित किया है, वही मानो उसका सारा नारी-जीवन धन्य हो उठा है, परन्तु ऐसे स्थल तो एक-आध ही है । भारतीसे सुमित्रा कहती है—'यही इनका यथार्थ स्वरूप है । दया नही, ममता नही, धर्म नही—इस पाषाण मूर्त्तिको मै पहचानती हूँ भारती !' इन पक्तियोमे उस कठोर रमणीका उपेक्षित प्रेम बोल रहा है, जो जाने या अनजाने अपनेसे भी कठोर पुरुषको अपना हृदय दे चुकी है । अंततोगत्वा सव्यसाची विघ्न-बाधाओंसे भरे सिंगापुरकी ओर चल देते है, और सुमित्रा उपायहीन वेदनासे भरा हुआ हृदय लेकर रह जाती है । वह डॉक्टरको जानेसे रोकती है, पर उसके सारे प्रयत्न निष्फल जाते है । वह शोकके मारे पागल-सी हो जाती है और उस पानी तथा तूफानके मौसममें उसकी वर्षोंसे सचित अश्रु-राशि झर-झर झरने लगती है । उस माया-ममताहीन हृदयसे उसे अपने लिए कुछ भी नही मिला । डॉक्टरसे वह श्रद्धा और प्रशसा अवश्य पा सकी, परन्तु प्रेमकी भूखी रमणीका इससे क्या सबध ! अपूर्वसे कभी डॉक्टरने कहा था—'परन्तु सुमित्रापर विश्वास कीजियेगा । विश्वास करनेकी इतनी बडी ऊँची जगह आपको और कही न मिलेगी, अपूर्व बाबू !' काश, इस तथ्यको जाननेके साथ, स्वय डॉक्टर ऐसा कर भी सकते !

सुमित्राका चरित्र असाधारण है । सव्यसाचीका कहना है—'ऐसी स्त्री आप ससारमे घूम आनेपर भी कही न पायेगे ।' इस कथनमे अतिशयोक्तिका कुछ अश होनेपर भी बहुत बडा सत्य है । सुमित्राका चरित्र एक ऐसी रमणीका है, जिसकी मानसिक ग्रथियॉ उसकी बिलकुल अपनी है ।

सुमित्राका व्यक्तित्व सामान्य मानवीय आदर्शोके आधारपर बहुत उज्ज्वल प्रतीत नही होता । भारतीके चरित्रके विरोधी होनेके कारण भी ऐसा सभव है । उसका चरित्र उपन्यासकी कथावस्तुको प्रभावित करते हुए भी अधिक अकित नही हुआ है । कदाचित् इसी कारण उसका व्यक्तित्व इतना रहस्यमय तथा प्रभावोत्पादक हो गया है ।

भारती और सुमित्राके प्रधान चरित्रोके अतिरिक्त उपन्यासमे दो पार्श्व-चरित्र है—नवतारा और अपूर्वकी माँ। नवताराका चरित्र बहुत ही अधूरा अकित हुआ है। उपन्यासके प्रारभिक परिच्छेदोसे हमे केवल इतना ही ज्ञात हो पाता है कि देश-सेवाकी भावनासे प्रेरित होकर, अपने दुराचारी पतिको छोडकर नवतारा 'अधिकार-समिति' की सदस्या बन गई है। उसकी प्रशसा करते हुए सुमित्रा बताती है—'नवताराके हृदय है, जीवन है, साहस है—और जो सबसे बढकर है, वह धर्मज्ञान भी है... जिसे आप सतीत्व कहते है, उसे कायम रखना उनके लिए सहज होगा या नही, सो वे ही जाने।' परतु अपने पैरोपर खडी होनेवाली, अपना दायित्व स्वय लेनेवाली इस नारीके बारेमे सुमित्राके उपर्युक्त कथनका पूर्वार्द्ध तो आगे चलकर असत्य ठहरता है और उत्तरार्द्धकी शका सच जान पडती है। इसके बाद बहुत दूरतक नवताराके बारेमे कुछ भी नही सुनाई पडता। फिर एकाएक ज्ञात होता है कि वह भोले-भाले कवि शशिको विवाहका झूठा आश्वासन देकर, उसकी बहुत-सी सपत्ति लेकर, किसी अन्य व्यक्तिके साथ भाग गई है। वस्तुत नवताराके चरित्रपर उपन्यासकारने शायद जान-बूझकर विशेष प्रकाश नही डाला है। वह पाठकके लिए एक पहेली-सी बन जाती है। जो भी हो, उसका चरित्र बहुत ओसत दर्जेका—शायद उससे भी कुछ नीचा है।

अपूर्वकी माँ प्राचीन परपराओमे आस्था रखनेवाली एव सभी रूढियो-का आचरण करनेवाली वृद्धा है, परन्तु वे अपने कठोर आचरणोसे दूसरो-को कष्ट नही देना चाहती। 'वे सिर्फ अपने ही आचार-विचारका, बिना किसी आडबरके, चुपचाप पालन किया करती है।' जो उनके मार्गपर नही चलता, उसकी वे बुराई भी नही करती। अधिकाश प्राचीनाओके समान असहिष्णु एव कलहप्रिय वे नही है। उनकी बातको माननेवाला केवल अपूर्व है। अपने इस पुत्रपर माँको गर्व भी है। करुणामयी बाहरी दृष्टिसे यद्यपि पुराने जमानेकी है, फिर भी वे अत्यन्त बुद्धिमती है। प्रत्येक परिस्थितिको भली प्रकार समझकर ही वे कार्य करती है। इसीलिए

अपने प्राणाधिक प्रिय पुत्र अपूर्वको, आवश्यकता समझकर वे विदेश भी भेज देती हैं। उनके सस्मरण भारतीको वताता हुआ अपूर्व कहता है-—'घर मे दो वहुएँ हैं, फिर भी माँको अपने हाथसे वनाकर खाना पडता है। पर ऐसी माँ है कि कभी किसी पर जोर-जवरदस्ती नही करती, किसीसे इसके लिए शिकायत भी नही करती। कहती है, मै भी तो अपने आचार-विचारको छोडकर अपने पतिकी रायमे अपनी राय नही मिला सकी, अब ये लोग भी मेरी रायमे राय नही मिलाती, तो इसमे शिकायत करना क्या ठीक है ? मेरी वुद्धि और मेरे सस्कारोको मानकर ही वहुओंको चलना होगा, इसके क्या मानी हैं ?' दो विभिन्न सस्कृतियोके सधि-स्थलमे एक वृद्धाकी इतनी शाति और सहिष्णुता सचमुच सराहनीय है। और, तभी भारती-जैसी विदुषी इस अनजानी महिलाके प्रति स्वत अपनी श्रद्धा अर्पित करती है।

अपूर्वको करुणामयीके स्नेहका अधिकाश प्राप्त है। वहुत दिनोतक उसका समाचार प्राप्त न होनेपर वे अपने सारे आचार-विचारोको भुलाकर विदेशके लिए चल देती हैं। और अपने पुत्रकी इस खोजमें ही उनका शरीरान्त हो जाता है।

भारतीकी महरीका उपन्यासमे यत्र-तत्र उल्लेख भी है। उसका जितना भी वर्णन हमे प्राप्त है, उसके अनुसार हम केवल यही कह सकते है कि वह पर्याप्त स्नेहशील है। दूसरेके दुख-दर्दमे वह सहायक होती है। अपने समुदायके स्वभावानुकूल ही वह वाचाल अधिक है। एक ही वातको विभिन्न प्रकारसे धारावाहिक रूपमे कहना उसका विशेप कौशल है।

नवविधान

'नव–विधान' शरत् बाबूके रचना-कालके उत्तरार्द्धमे प्रणीत एक लघु उपन्यास है। कथा-गठनकी दृष्टिसे यह लघु उपन्यास लेखककी श्रेष्ठ कृतियोमे गिना जा सकता है। यहाँ बहुत छोटे-से 'कैनवैस' मे शरत् बाबूने आधुनिक सतही जीवन-चर्याका सूक्ष्म विश्लेषण किया है, और बडी कुशलतासे तज्जन्य बुराइयोपर प्रकाश डाला है। यही नही, रचनात्मक दृष्टिकोणसे इस प्रकारकी बुराइयोको दूर करनेके लिए एक समानातर, परन्तु श्रेष्ठतर व्यवस्थाको भी लेखकने हमारे सामने रक्खा है। आजके जटिल सामाजिक जीवनमे इस 'नौवलेट' का सामयिक महत्त्व है। प्राचीन परिपाटीको यथासुविधा अपने अनुकूल बनाकर चलना अधिक अच्छा और व्यावहारिक है, अपेक्षाकृत उस परिपाटीका आमूल उच्छेदनकर विदेशी परपराओका सहारा लेनेके–यही कदाचित् 'नव-विधान' की कथावस्तुका मूल सूत्र है।

'नव-विधान' की मूल कथा सक्षेपमे इस प्रकार कही जा सकती है—शैलेश्वर अपने मित्र दिग्गज पडितके कहनेपर अपना तीसरा विवाह न करके अपनी प्रथम परित्यक्ता पत्नी उषाको अपने पास कलकत्ते बुला लेते है। उषाका त्याग शैलेश्वरके स्वर्गवासी पिता इसलिए कर चुके थे, क्योकि वह ग्रामीणा थी, एव आधुनिक रहन-सहनसे अनभिज्ञ थी। इस बार उषाने पतिगृह-मे आकर वहाँकी सारी उखडी व्यवस्था ठीक की, फिजूल खर्चको बद किया और शैलेश्वरको सुख देनेका प्रत्येक यत्न किया, परन्तु ऐसा बहुत दिनोतक न चल सका, क्योकि शैलेश्वरकी बहिन विभा, जो एक बैरिस्टरकी पत्नी और पाश्चात्य जीवन-चर्याकी अनुगामिनी थी, अपने भाईके घरमे भारतीय

परपराओका पुन.स्थापन न सह सकी। कुछ विभाकी असहिष्णुतासे और कुछ स्वामीकी उदासीनतासे, उपा वापस अपने भाईके घर चली गई।

उपाके घर छोडनेके बाद शैलेशका मन उखडा-उखडा रहने लगा, क्योकि ऊपरसे क्रोध करते हुए भी वे उपाको मन-ही-मन प्यार करने लगे थे। अतत. वे अपने एकमात्र पुत्र सोमेनको लेकर इलाहाबाद चले गये, और वहाँ धार्मिक रूढियोको अपनाकर जीवन व्यतीत करने लगे। वापस कलकत्ते आनेपर वे अपने गुरु और गुरुभाइयोको भी साथ लेते आये। अब वे सारे कर्त्तव्योसे उदासीन रहकर कोरी पूजामे व्यस्त रहने लगे। विभा और उसके पति भी उन्हें वैसा करनेसे रोक न सके, परन्तु तब स्नेहकी अदृश्य शक्तिने अपना कार्य किया, और उपाने वापस कलकत्ते आकर उखडी हुई गृहस्थीको एकबार फिरसे व्यवस्था दी। इस प्रकार पारिवारिक सौहार्दके उद्‌भवके साथ-साथ उपन्यासका अत हो जाता है।

वस्तुत 'नव-विधान' की कथा उपाके जीवनकी सवेदनासे ही अनुप्राणित है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे वह सदैव उपन्यासके घटना-क्रमको प्रभावित करती रहती है। वैसे उपन्यासमे कुल तीन नारी पात्र है—उपा, विभा और उमा। इनमे-से भी उपा और विभा तो प्रमुख पात्र है, एव उमा पार्श्व-चरित्र है। सबसे पहले हम उपाके चरित्रका विश्लेषण करेगे।

उषा जबतक सशरीर कथानकमे आकर उपस्थित नही हो जाती, तब तक हमे उसके बारेमे विचित्र बाते सुनाई पडती है। स्वय शैलेश्वर उसे 'पगली' कहते है, और उसके हितचितक दिग्गज पडितको डराते है कि 'अगर वह सचमुच ही आ गई तो फिर चाय पीनेकी आशा न रखना। वह गगाजल और गोबर डालकर लीपनेके साथ ही तुम लोगोको भी झाड़ूकी झडपसे साफ करके छोडेगी।' और बेचारा शैलेश्वर भी क्या करे ? उसे भी सदैव इसी प्रकारके समाचार मिलते रहते थे कि उसकी धर्मपत्नी भाइयोके परिवारमे जप-तप, पूजा-पाठ, गगाजल और गोबरके फेरमे रहकर जीवन बिता रही है, उसकी 'शुचिबाई'के पागलपनकी सीमा तक पहुँच जानेसे भाइयोके नाकमे दम है, इत्यादि। यहाँ तक कि शैलेश्वरका ममेरा भाई

भूतनाथ उषाको कलकत्ते लिवा लानेके प्रस्तावपर कहता है, "नहर काटकर घरमे मगर तो नही ला रहे हो ?" परन्तु जब उषा सचमुच हमारे सम्मुख आ जाती है तो हमे उसके प्रथम दर्शनमे ही ज्ञात हो जाता है कि न तो वह पगली है, और न नदीके मगरके साथ ही उसका कुछ सादृश्य है। उसके वारेमे सुनी-सुनाई सारी बाते निर्मूल और भ्रामक सिद्ध होती है।

वस्तुत उषा अपनी प्रकृतिमे मूलत गृहिणी है। आजकलकी अधिकाश पत्नियोकी भाँति वह घरमे अकेली ही नही रहना चाहती है। सबके साथ मिल-जुलकर जीवन व्यतीत करनेकी वह अभ्यस्त है। रूखी प्रकृतिकी विभासे वह कहती है, "मायकेमे भावजोके लडके-बाले मेरे ही हाथके पाले-पोसे हैं। कोई एक आदमी पास न रहनेसे मेरी जिदगी भार हो जाती है ननदजी !" घर-गृहस्थीके सारे आय-व्ययको अपनी आवश्यकतानुकूल बना लेना वह अच्छी तरह जानती है। यही नही नित्य प्रतिके सारे खर्चका ब्यौरे-वार हिसाव भी वह रखती है। अनावश्यक व्ययको रोकनेमे वह बहुत चतुर है। घरके ऋणका अधिकाश चुकानेपर भी वह पतिके एक महीनेके वेतनमे पूरा काम चला लेती है, जब कि उसके आनेके पहले एक महीनेका वेतन केवल पद्रह दिन ही चल पाता था। घरका 'वजट' बनानेमे उसकी बुद्धिमत्ता देखते ही बनती है। ऋणके भारसे दबे एव घबराये हुए शैलेश्वरको आश्वासन देती हुई वह कहती है, "गिरस्तीका खर्च चलानेके लिए कर्जा हो गया तो क्या उसे अदा न करना होगा ? मगर चिताकी बात क्या है ? इतनी मामूली रकम चुकाते मुझे कै दिन लगेगे ?" यहाँ हमे स्पष्ट दिखाई देता है कि उषाके चरित्रमे बुद्धिमत्ताके साथ-साथ आत्मविश्वासकी भी कोई कमी नही। अपनी योजनापर उसे सदैव विश्वास रहता है, और इसीलिए किसी भी कार्यमे असफलताजन्य निराशा उससे दूर रहती है।

उषाके मितव्ययी होनेका सबसे वडा प्रमाण-पत्र स्वय शैलेश्वर देते है। क्षेत्रमोहनको अपनी सारी आर्थिक समस्या बताते हुए वे कहते है, "मै तो जी गया भाई साहब ! किसीसे रुपया उधार लेने न जाना पडेगा अब ! जो तनख्वाह पाता हूँ वही मेरे लिए काफी है—यह गिरिस्तीकी अर्थ-समस्या

सुलझानेका सहज 'गुर' तुम्हारी सलहजका जाना हुआ था। उसीने अपव्ययकी जड उखाड फेंकने और उसे उजाड डालनेके लिए अपने समर्थ होनेका समाचार मुझे सुनाया है।" दलदल और कीचडमें-से किसीकी बाँह पकड़कर बाहर सूखी भूमिपर आ पहुँचनेका जो आनन्द होता है, कुछ उसीप्रकारका आनन्द, कुछ उसी प्रकारकी राहतका अनुभव शैलेश्वरको इन शब्दोके कहते समय हुआ होगा। 'उषाकी इस गार्हस्थिक कुशलतासे प्रभावित होकर क्षेत्रमोहन बाबू कहते है, "आपके समान गृहलक्ष्मीके हाथका किया सुघर काम देखकर मैं भी घर-गिरिस्तीका कुछ काम-काज सीख लेना चाहता हूँ . जी चाहता है कि अपनी छोटी बहनको आपके पास कुछ दिनोंके लिए छोड जाऊँ, जिसमें आपकी मंगलमयी निपुणता थोड़ी-सी भी वह अपने साथ ससुरालमे ले जा सके।" उषाका यह गृहलक्ष्मी रूप ही हमे सर्वत्र दिखाई देता है। पतिके फटे मोजे ठीक करती हुई, खाना बनाती हुई, पतिको खाना खिलाती हुई, आगतोका सत्कार करती हुई—सदैव वह भारतीय गृहिणीके आदर्शको हमारे सामने उपस्थित करती है। यहाँ तक कि शैलेशका घर छोडकर वापस भाईके यहाँ जानेके समय तक उसका मोह इस घरके लिए पूर्ववत् बना रहता है।' 'आज सबेरे ही शैलेश्वरने सुना कि दीवारमे गंदे हाथ पोछ देनेके लिए उषा अपने नये नौकरको फटकार रही है। मान लिया कि अभ्यास होनेके कारण उषासे अपने किसी काममे गलती नही होने पाती, लेकिन सर्वत्र सभी बातोंमे उसकी चौकस दृष्टि ऐसी बनी रहती है कि उसमे भी तनिक-सी शिथिलता शैलेश नही देख पाता!' इस प्रकार हम देखते है कि उषाके चरित्रकी मूल संवेदना उसकी गार्हस्थिकता है। सबसे पहले वह एक कुशल गृहिणी है, बादमे और कुछ। पाकशालासे लेकर अतिथि-गृह तकके अपने सारे कर्त्तव्योको वह अत्यत कुशलतापूर्वक निभाती है, त्रुटिके लिए कोई भी स्थान नही छोडती। घरमे आये हुए क्षेत्रमोहन बाबूसे वह बिना किसी लज्जा या झिझकके बात करती है, और इस प्रकार इस संदेहके लिए कोई स्थान नही छोडती कि वह दैनिक व्यवहारमे अपटु केवल

एक ग्रामीणा है। उसका प्रत्येक आचरण सभ्य नागरिक जीवनके अनुकूल है।

जहाँ तक उषाके धार्मिक जीवन एव आचरणपरायणताका प्रश्न है, हम स्पष्ट रूपसे कह सकते हैं कि उसकी मान्यताओमे साधारणत प्रचलित अधविश्वासो और रूढियोको बहुत कम स्थान मिला है। उसके आचार किसी दूसरेको कष्ट देनेके लिए नही है, यह बात तो निर्विवाद रूपसे सत्य है। जब अपने पतिगृहके लिए वह अपने आपको अनुपयुक्तपाती है, तो मात्र शैलेश्वरके सुखके लिए वह पूर्ववत् परित्यक्ताका जीवन व्यतीत करनेके लिए अपने भाईके घर चली जाती है। उसकी आचरणप्रियताका ही यह परिणाम है कि पतिसे दूर रहनेपर लोग उसे 'पगली' आदि कहते हुए भी उसके चरित्रपर कोई आक्षेप नही लगा सके। उसकी पवित्रता सर्वदा सर्वमान्य है, और जब हम इस बातपर विचार करते हैं कि दूसरोको आश्चर्यान्वित करनेवाला रूप जिसके पास हो, वह नारी कैशोर्यसे लेकर अपने यौवन तक पतिसे वर्षो तक अलग रहनेपर भी अपने चरित्रकी सर्वथा रक्षा कर सकी, तो इसका बहुत कुछ श्रेय हमे उसकी धार्मिक साधनाको ही देना पडता है, अवश्य ही उसके व्यक्तित्वकी दृढता भी उसके लिए इस क्षेत्रमे सहायक रही है।

उषाकी धार्मिक कट्टरतापर शैलेश्वरको इतना विश्वास है कि उसे गाँवसे बुलाते समय वह अपने मनमे यही सोचता है कि पहले तो वह यहाँ आनेको तैयार न होगी, और यदि वह आई भी तो 'मलेच्छी कारखाने' को देखकर दो ही दिनमे भाग जायेगी। परन्तु जैसा हम देखते है, शैलेश्वरके यह दोनो अनुमान ही असत्य निकलते हैं। उषा बिना किसी हिचकके कलकत्ते चली आती है, और जब वापस जाती भी है तो 'मलेच्छी कारखाने' से घबरा कर नही, वरन् यह देखकर कि उसकी उपस्थितिसे उसके स्वामी कष्टमे हैं। और इस बातका ध्यान ही उषा-जैसी पतिपरायणा स्त्रीको स्वत पतिसे दूर ले जाता है। वस्तुत उषा किसी भी धार्मिक मर्यादाका आँख बद करके पालन नही करती। उसकी आस्थाओका सयोग उसकी बौद्धिकतासे बराबर रहा है। वैसे उसकी तेजस्विताके प्रभावसे स्वय ही दूसरे लोग उसके कथनानुसार

चलने लगते है। विदेशी परपराओमे पला हुआ सोमेन अपने स्वजनोको प्रणाम करना सीख जाता है। क्षेत्रमोहन यह समझ जाते है कि उसके कमरेमे जूते पहनकर जाना ठीक नही। यहाँ तक कि शैलेश्वर भी उसके मतानुयायी होने लगते है। और जैसा हम देख चुके है इसका प्रमुख कारण यह है कि उसके आचारोमे कठमुल्लापन नही है। स्वय न खाते हुए भी शैलेश्वरके लिए वह गोश्त बना देती है। भक्ति-पूजनमें पूरा विश्वास रखते हुए भी वह शैलेश्वरके गुरु-भाइयोको घरसे भगा देती है, सोमेनके गलेकी तुलसीकी माला अपने हाथसे तोड डालती है, और उसकी चोटी कटवा देती है। उसके इस व्यवहारसे स्पष्ट जान पडता है कि जीवनमे धर्मको अत्यत उच्च स्थान देती हुई भी वह मिथ्या धार्मिक ढोगोके एकदम विरुद्ध है।

जिदगीके विभिन्न घात-प्रतिघातोको उषाने बडे सयम और धैर्यके साथ सहन करना सीखा है। शातिकी एक निश्चित भावना उसके मुख-मडलपर सदैव रहती है। व्यर्थ ही रूठी हुई विभाको मनानेके लिए वह शैलेश्वरको जबरन उसके घर भेजती है। अपनी ओरसे तो उसने कभी कोई ऐसी बात नही कही, जिससे कि लोग उससे असतुष्ट हो जाये। विभा जब कुछ कडवी बाते उषाको सुनाकर कहती है तो अस्फुट स्वरमे वह केवल इतना ही कह पाती है, "लेकिन ऐसा ख्याल तो कभी मेरे मनमे पैदा ही नही हुआ ननदजी।" यहाँ स्मरणीय है कि उषाके कलकत्ते आनेके दिनसे ही विभा अकारण उसके प्रति कटु है। और यह उषाकी सहनशीलता है कि इन कलह-सग्रामोमे उसके मुँहसे एक भी कडी बात नही निकली। इसी प्रकार शैलेश्वरके आक्षेपोका भी वह कभी उत्तर नही देती, प्रतिवाद नही करती। उपन्यासकारके शब्दोमे, 'उषाकी आवाजमे कभी किसी कारण उत्तेजनाका भाव नही प्रकट हो पाता था। शात भावसे बात कहनेका उसका स्वभाव है।' व्यावहारिक शातिके साथ-साथ एक विनयका भाव भी सर्वदा उसके वार्तालापमे व्यक्त होता रहता है। कलकत्ता छोड़कर जानेका निश्चय स्वामीके आगे रखनेकी भूमिका-स्वरूप वह कहती है, "कल रात भर सोचते रह कर अतको

मने जो निश्चय किया है, उसे फिर डिगाने या अन्यथा करनेके लिए कोई आज्ञा न दो, यही तुमसे मेरी प्रार्थना है।" और फिर जब शैलेश्वर उसके लौटनेकी बात पूछता है, तो भी उन्ही सौजन्यपूर्ण स्वरोमे उत्तर देती है, 'मुझे क्षमा करो, लौटना अब मेरे लिए सभव न गा। मैंने बहुत कुछ सोच-विचारकर देखा, यहाँ मेरा रहना हो नही सकता। यही मेरा निश्चय है।" इतना प्रतिकूल तथ्य व्यक्त करनेपर भी उसके मनमे कोई गाँठ नही, उसके स्वरमे कोई विरुद्धताका भाव नही। सब प्रकारकी विषम परिस्थितियोमे भी उसके मनकी शान्ति और उसकी वाणीका सयम कभी उससे विलग नही होते। व्यर्थके प्रश्न और व्यर्थके कौतूहल उसकी प्रकृतिके विपरीत है। उसका प्राय मौन रहना जहाँ एक ओर उसकी सहन-शीलताका सूचक है, वही उसके मानसिक सयमका भी परिचय देता है।

शरत्की अधिकाश नायिकाओकी भाति उषा मात्र भावुक ही नही है। उसके व्यक्तित्वकी बौद्धिक प्रवृत्तिया पर्याप्त रूपसे विकसित है। परिस्थितियोको देखकर उन्हे समझ लेना उसके चरित्रका प्रधान गुण है। क्षेत्रमोहन उषाकी तुलना ऐसे जहाज चलानेवाले कप्तानसे करते है जो 'पानीको देखते ही जान लेता है कि कितना गहरा है।' जब शैलेश्वरके एकमात्र पुत्र सोमेनको शिक्षा आदिके लिए उसकी बुआ विभाके घर भेजनेका प्रस्ताव उषाके सामने आता है तो वह बिना किसी तर्क-वितर्कके उत्तर देती है,"लडकेके भलेके लिए अगर इसका प्रयोजन जान पडे तो भेजना ही होगा।" वस्तुत उषाकी वाक्पटुताके समक्ष प्रतिपक्षीको एकबार सिर झुकाना ही पडता है। शैलेश्वरके यह कहनेपर "शास्त्रमे लिखा है कि सूँघना भी आधे भोजनके बराबर होता है," उषा किंचित् हँसीकी रेखा झलकाकर कहती है, "यह कहना तुम्हारे लिए उचित नही। जिस शास्त्रको तुम मानते नही, उसका प्रमाण और दुहाई देना तुम्हे नही सोहता"। इसी प्रकार वह स्थान-स्थानपर क्षेत्र-मोहन तथा विभाको अपने अचूक परतु शात वाक्योसे निरुत्तर कर देती है।

अपने चारित्रिक गुणोके कारण उषाके व्यक्तित्वमे आत्मविश्वासका होना स्वाभाविक ही है। किसी भी प्रतिकूल अवसरपर वह अपने इस

संतुलनको नही खोती। प्रथम भेटके अवसरपर ही क्रुद्ध विभासे वह कहती है, "यह सब मैं सँभालना जानती हूँ। तुम लोगोको दुश्चिन्ता न करनी चाहिए"। इसी प्रकार आकंठ ऋणके सागरमें डूबे हुए शैलेश्वरको वह आश्वासन देती है, "मगर चिंताकी बात क्या है? इतनी मामूली रकम चुकाते मुझको कै दिन लगेगे"? सच तो यह है कि इसी आत्मविश्वासकी भावनाने उपाके चरित्रको इतना उज्ज्वल बना दिया है, और इसी आत्म-विश्वासके सहारे उसका आत्माभिमान भी सदैव रक्षित है। अपनी प्रकृतिमे पूर्ण अहिंसात्मक होती हुई भी उषा अनुचित बातोको कभी स्वीकार नही करती। जब शैलेश्वर उसके सामने, सोमेनको शिक्षा-दीक्षाके लिए विभाके घर भेजनेका प्रस्ताव रखता है तो वह उसे स्वीकार करनेपर भी इस बात के लिए प्रस्तुत नही होती कि उसके पुत्रको पढाने-लिखानेका व्यय किसी भी प्रकार विभाको करना पडे। इसके अतिरिक्त जब वह यह देखती है कि उसके पतिके गृहमे उसकी व्यवस्था नही चल पाती तो कुछ तो शैलेश्वरको सुख देनेके लिए, और कुछ अपने आत्माभिमानको भी अक्षत रखनेके लिए, उषा अपने भाईके यहाँ चली जाती है।

आत्मविश्वास और आत्माभिमानसे सबद्ध चारित्रिक दृढताका भी उपाके व्यक्तित्वमे पूर्ण निखार हुआ है। शैलेशका अपनी पत्नीके प्रति स्पष्ट मत है, "मै दुर्बल प्रकृतिका आदमी हूँ, किंतु तुम्हारा मन उतना ही दृढ है"। वह भली-भाँति जानता है कि उपाके इरादे कभी टलते नही। एक बार यदि वह अपने भाईके घर जानेकी सोच लेती है, तो फिर उसका निश्चय अटल ही रहता है। यही नही, यह पति-गृह छोड कर जानेका कठोर प्रस्ताव स्वयं उसीकी ओरसे आता है। उसके इस 'कठिन कर्त्तव्य' पालनके लिए शैलेश व्यग्यमे उसकी प्रशसा भी करते है, और उषा थोडी ही दूरपर खडी हुई यह सब सुनती है। पर शैलेशके व्यगो और क्षेत्रमोहनके आश्वासनोकी कुछ भी परवा न करके उषा घर छोड कर चली जाती है। उसका वापस लौट आना कितना कठिन है, इस बातका अनुभव क्षेत्रमोहन बराबर करते रहते है। वस्तुत. जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे उषा हर कदम बहुत सोच-समझकर

आगे बढाती है, और एक वार किसी निष्कर्षपर पहुँचनेपर वह फिर उससे टलती नही। इसीलिए पाठक उपन्यासकारके इन शब्दोंसे बहुत हदतक सहमत हो जाता है कि 'लडकपनसे कडे आचार-विचारके शासनमे रहते-रहते उषाकी प्रकृति भी कडी हो गई है।'

जैसा हमने ऊपर देखा, उषाका व्यक्तित्व बहुत सतुलित, युक्ति-युक्त एव न्यायप्रिय है। अपने आचरणसे वह किसीको भी सकटमे नही डालना चाहती। विभा-द्वारा सोमेनको अपने घर ले जानेके प्रस्तावपर बालककी परेशानीको देखकर वह चटपट कह देती है, "जानेके लिए मै तुमको मना नही करती भैया, मै तो यही कहती हूँ कि तुम्हारे चले जानेपर अकेले घरमे रहनेमे मुझे बडा कष्ट होगा।" और इसप्रकार वह निरीह सोमेनको विभाके क्रोधसे बचा लेती है। पति-द्वारा नौकरोके वेतन न दिये जानेका वह तीव्र विरोध करती है। शैलेशसे वह कहती है, "यह तो तुम्हारी बडी जबर्दस्ती है जी! नौकर-चाकरोकी तनख्वाह न देना और अटकाये रखकर घर न जाने देना कहाँका न्याय है।" यहाँ हम उषाका वह रूप देखते है जो सदैव औचित्यके साथ है, और जो सभी प्रकारके अन्यायोकी भर्त्सना करता है। उसकी प्रकृति इतनी भली है कि किसीका अनिष्ट करनेकी बात उसके मनमे आ ही नही सकती। विभाके यह सदेह किये जानेपर कि उषाने शैलेश्वरके लिए जादू-टोना किया है, क्षेत्रमोहन अत्यत दृढ स्वरमे कहते है, "उषा यह सब कभी न करेगी।"

अपनी छोटी-सी गृहस्थीमे उषाका स्नेह और ममता सबके लिए समान है। शैलेश, सोमेन, क्षेत्रमोहन, विभा तथा उषा, सबकी वह हितचितक है। सोमेन तो अपनी इस विमाताको इतना अधिक प्यार करता है कि उसके बिना रह ही नही सकता। कारण स्पष्टत यही है कि उषाके वात्सल्यका वह एकछत्र अधिकारी है। उषा उसके प्रत्येक छोटे-बडे आरामका ध्यान रखती है, साथ ही खाना खिलाती है और रातको उसके निकट बैठ कर कहानी सुनाती है। स्वय शैलेशका मत है कि 'माँ के रहनेपर भी इतना अधिक प्यार-दुलार शायद उस समय—कभी—इसको नही नसीब हुआ।'

और यही नही, स्वयं उसे भी गुप्त या प्रकट रूपसे उपाका जो अपार स्नेह प्राप्त हुआ, उसने उसके जीवनकी गति ही वदल दी। एक वार तो अवश्य ही उसे अपने गार्हस्थ्य-जीवनमें अपूर्व आनद प्राप्त हुआ, और इसमे कोई सदेह नही कि उसके इस आनदकी मात्रा दिन-प्रति-दिन वढती ही जाती, यदि विभा वीचमे आकर इन दम्पतिको एक-दूसरेसे अलग न कर देती। एक स्थलपर उपन्यासकार कहता है, 'खानेके लिए इतना जवर्दस्त तकाज़ा 'ऐसा आत्मीयताव्यजक अनुरोध और आग्रह, हृदयकी व्यग्रताके साथ सिरकी कसम देना—शैलेशके लिए कल्पनासे परे, और आशातीत, अप्राप्य, अलौकिक, अपूर्व आनद देनेवाला था।' इन शब्दोमे शैलेशकी मन.स्थितिका जो चित्रण हुआ है वह उपाकी कोमल प्रकृति और उसके सरस व्यवहारका स्पष्ट सूचक है।

पूरे उपन्यासमे विभाको हम उषाके विरुद्ध देखते है। प्रारम्भसे ही अपनी ग्रामीण भाभीके प्रति मनमे पूर्वग्रहोको सजोये रखनेसे ऐसा व्यवहार विभाके लिए नितात स्वाभाविक है, और जब कि दोनोकी प्रकृतियोमे वहुत अतर भी है। इसीलिए प्रथम भेटमे ही विभा उषाके प्रति अत्यत कडी और कडवी हो उठती है, परतु, शात और सयमित मनकी उषा तभी कह देती है, "आज तुम रूठ कर जरा वैठी तक नही, लेकिन मै तुमसे इतना कहे देती हूँ कि एक दिन तुम अपनी इच्छासे खुद आकर अपनी इसी भाभीके पास वैठोगी।" और उषाके तीसरे परिच्छेदमे कहे हुए ये शब्द हमे उपन्यासके अतिम परिच्छेदमे तब अक्षरश. सत्य होते हुए दिखाई देते है, जव वापस कलकत्ते आई हुई उषाके पास जूते उतार कर विभा स्वय जाती है, उसके पैर छूती है और स्वय ही पहले बोलती है। कहना न होगा कि विभाके व्यवहारमे यह परिवर्तन स्नेहकी विलक्षण शक्ति-द्वारा ही सभव हुआ है।

उषाके चरित्रके सक्षिप्त विश्लेपणसे स्पष्ट हो जाता है कि उसका व्यक्तित्व अत्यत उदार एव महिमामय है। इसलिए यह नितात स्वाभाविक ही है कि उसके व्यक्तित्वसे उसके सपर्कमे आनेवाले प्रभावित हो। वस्तुत.

अनेक गुणोके समाहार रूपमे चित्रित करके शरत्ने अपनी नायिकाओको प्राय प्रभविष्णु बनाया है। उनके तेजके सम्मुख प्रतिपक्षियोको अततोगत्वा झुकना ही पडता है। 'नव-विधान'की नायिका उषा भी इस व्यापक नियमकी अपवाद नही है, यह सहज उसके वार्त्तालापसे ही प्रकट हो जाता है। तटस्थ व्यक्तिको भी अपनी ओर खीच लेनेकी शक्ति उसमें है। सारे ऊपरी क्रोध और अप्रसन्नताके बावजूद शैलेश यही प्रार्थना करता है कि 'मेरे अगर कभी कोई लडकी हो तो वह अपनी माताके समान ही हो। इस ढगकी शिक्षा-दीक्षा वह पावे तो मै भगवान्को धन्यवाद दूंगा'। और तो और, कुछ ही दिनोंके सपर्कसे विभा भी भावावेगके क्षणोमे उषाको अत्यत स्पृहणीय मानती है। उषाके वापस घर जानेकी बात सुनकर वह शैलेशसे कहती है, "भैयाजी,भला सच बतलाना,क्या तुम मुझे ही निमित्त करके (अर्थात् मेरे ही कहने-सुननेपर ध्यान देकर या मेरे ही कहनेसे) भाभीके सबधमे यह व्यवस्था करने जा रहे हो? अगर यही बात हो तो मै मना न करूगी। किंतु यह अभी कहे देती हूँ कि एक दिन तुम दोनो ही रोओगे'। उद्धरणका अतिम वाक्य विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रमोहन तो उषाको इतना अधिक चाहने लगे हैं कि वे शैलेशके सम्मुख प्रस्ताव रखते हैं (भले ही मज़ाकमे) कि वे दोनो पत्नियोकी अदला-बदली कर ले। और जैसा हम पहले ही कह चुके है कि शैलेश भी मन ही मन उषाको बहुत प्यार करते हैं। तीसरे विवाहकी बात वे इसलिए स्वीकार नही करते कि उषाके प्रति उनका मोह अभेद्य हो गया है। क्षेत्रमोहनका तो स्पष्ट मत है, "उषा-को तुम्हारे दादा सचमुच प्यार करने लगे थे। इतना प्यार कभी उन्होंने सोमेनकी माँको नही किया।"

इस प्रकार हम देखते है कि उषाका चित्रण आजकी सतही जीवन-चर्या और उसके बाहरी बनाव-शृंगार-जन्य विषमताओ और कुरूपताओ के स्वस्थ एव कुशल सुधारकके रूपमे किया गया है। अपनी मूल प्रकृतिमे एक सफल गृहिणी होनेके कारण वह पाश्चात्त्य रहन-सहनसे प्रभावित विशृंखलित पारिवारिक व्यवस्थाको एक नया और सशक्त विधान देती है,

जो एकदम भारतीय परपराओके अनुकूल है। इस लघु उपन्यासके 'नव-विधान' नामकरणका यही रहस्य है।

कथामे दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र विभाका है। अपनी प्रकृतिमें वह उषाके वहुत कुछ विपरीत है। वह अपने देशकी उन असख्य नारियोमेंसे एक है, जिन्होंने पाश्चात्त्य जीवनकी औपचारिकताको अपना तो लिया है, परतु जो उनकी शिराओमें वहते हुए रक्तसे मेल नही खाती। इसीलिए उनका व्यक्तित्व बहुत-कुछ अभारतीय-सा लगने लगता है, और पाश्चात्त्योकी गणनामे तो वे आ ही नही सकती। फल यह होता है कि उनका व्यक्तित्व पूर्व और पश्चिमका एक अजव-सा मिश्रण वन जाता है, जिसमे दृढताकी मात्रा वहुत कम रहती है।

विभाका व्यक्तित्व हमे प्रारभसे ही कुछ रूखा और चिडाचिडा दिखाई देता है। इसका एक कारण उसके मनमे स्थित उषाके प्रति पूर्वग्रह भी हो सकता है, जिससे वह अपनेको 'तीखा-रूखा' बनाये रहती है। पर जो भी हो, यह निश्चित है कि साधारणत उसका व्यहार वहुत सरस नही है। उपन्यास-कारके शब्दोमे, "दूसरेको दोप लगाकर कठोर बातें कहना एक प्रकारसे विभाका स्वभाव ही हो गया था। अधिकाश स्थलोमे शायद इससे अशिष्टता प्रकट होनेके सिवा और क्षति न हुआ करती थी।" यहाँ तक कि सोमेनको भी व्यग वाणका निशाना बना देना उसके लिए कोई बड़ी वात नही। और जैसा कि उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है, विभा ऐसा जान-बूझ कर नही करती, वरन् यह तो उसका स्वभाव ही हो गया है।

विभाका चरित्र एक ऐसी आधुनिकाके रूपमे अकित किया गया है, जिसने विदेशी परपराओका बिना समझे-बुझे अधानुकरण प्रारभ कर दिया है। उपाके विरुद्ध बोलती हुई वह कहती है, "मगर अपने घरको एकदम केसी कूढमग्ज आचारी पडितका घर बना डालनेसे तो काम न चलेगा, अपने समाज और उसके सभ्योका खयाल भी तो रखना पडेगा। उसके साथ सामाजिकता रखनी हो तो हमे कुसस्कारपूर्ण पाखड-विडबनाका बहिष्कार, और नव्य दलकी परिमार्जित सुरुचिका व्यवहार स्वीकार करके

आधुनिक अनुभवो-द्वारा अनुमोदित आचार-विचारोका प्रचार स्वीकार करना पडेगा।" उद्धरणका अतिम वाक्य विभाके चरित्रपर अच्छा प्रकाश डालता है। इससे जान पडता है कि अपने इस 'नव्य दलकी सुरुचि'के लिए वह ऐसी तमाम प्राचीन परपराओको उखाड़ फेकना चाहती है, जो उसके लिए कही अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकती है। वस्तुत ज़िंदगीको उसने बहुत ऊपरी निगाहसे देखा है, उसकी गहराई तक वह नही पहुँच सकी। इसीलिए उसका दृष्टिकोण इतना सतही है। असहिष्णुता तो उसमे इतनी है कि क्षेत्रमोहन-द्वारा उषाके प्रति प्रदर्शित श्रद्धाको देख कर उसके 'वदनमे आग लग जाती है'। और फिर वह हठवादी भी कम नही है। उपन्यास-कारके शब्दोमे, "लोगोके सामने विभा बहसमे किसी तरह हार नही मान सकती थी—यह उसकी आदतमे दाखिल था"।

इस सबके अतिरिक्त विभाकी सबसे बडी दुर्बलता यह है कि अपनी ऊपरी शान रखने के लिए वह आवश्यकतासे अधिक व्यय करती है, जिसके कारण क्षेत्र-मोहनको स्वीकार करना पडता है, "मै तो कर्ज़के गढेके भीतर गोते खा रहा हूँ, गले-गले तक गर्क हो गया हूँ। उससे उबरने का कोई उपाय नजर नही आता।" इससे स्पष्ट जान पडता है कि एक गृहिणीके लिए जिन गुणोकी आवश्यकता होती है, वे विभाके चरित्रमे एकदम नही है। और तो और, जैसा कि स्वय क्षेत्रमोहन एक स्थल पर कदाचित् कुछ अतिरजनाके साथ व्यक्त करते है, विभा अपने स्वामीका भी सम्मान नही करती, उल्टे 'उन्हे निरतर हीन प्रमाणित करनेकी चेष्टा' मे सलग्न रहती है। और जब इस तथ्यको वह स्वय सुनती है, तो वह इतनी हल्की-फुल्की प्रकृतिकी है कि रो देती है। इस हल्की-फुल्की प्रकृतिके कारण ही वह शैलेशके गुरुमत्र आदि लेनेके बाद बुराईके डरसे समाजके सभ्य लोगोको मुँह भी नही दिखा सकती।

उषाके प्रति तो विभा प्रारभसे ही विरुद्ध है। सच तो यह है कि उषाको लेकर ही उसके व्यक्तित्वकी कुटलिता उभर उठी है। वह निरतर यही प्रमाणित करना चाहती है कि इस 'गँवई—गाँवकी अपढ भावज'को फिर घर मे लाकर शैलेशने भयकर भूल की है। उसका स्पष्ट मत है कि "मै तो ऐसी

भावजको एक दिनके लिए भी अपने भाईकी स्त्री न स्वीकार कर सकूँगी, इसके लिए भाई कितना ही नाराज क्यो न हो। इसीलिए उषाको उसके स्थानसे भ्रष्ट करनेकी दुरभिसधि उसके मनमे सदैव बनी रहती है। और जब वह अपने इस कार्य मे सफल हो जाती है, तभी उसे सतोष होता है। यही नही वह गर्वोक्ति भी करती है, "मैने एक बार देखते ही उन्हें पहचान लिया था। उनके साथ हम लोग किसी तरह निर्वाह नही कर सकते थे।" उषाके ऊपर तो वह परोक्ष रूपसे यह भी आरोप लगा देती है कि वह शैलेशके ऊपर कुछ जादू-टोना कर रही है। किन्तु उषा उसकी इन सारी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बातोका कुछ भी उत्तर नही देती। उत्तर देती है उसकी नम्रता और सुशीलता जिसके कारण विभाको अततोगत्वा उसके पैर छूने पड़ते है, और उसकी महत्ता स्वीकार करनी पडती है। जैसा हम सकेत भी कर चुके है, अपने आपमे विभा इतनी दुष्ट नही है कि इस चारित्रिक परिवर्तनसे ऊपर उठ सके। शैलेशके ऊपर उषाने जादू-टोना किया था या नही, यह तो उषा ही जाने, विभाको किस प्रकार उसने वाणी और व्यवहारके वशीकरणसे अपने वशमें किया, यह हम सभी देख सकते है।

सोमेन और सोमेनकी माँके लिए विभाके मनमे बहुत कोमल स्थान सुरक्षित है, ऐसा जान पडता है। अपनी स्वर्गवासिनी भाभी और बापके कुलमे एकमात्र वशधरका वह बहुत ध्यान रखती है। सोमेनके ऊपर 'विभाका एक प्रकारका स्नेह था। वह उसे सचमुच चाहती थी।' इस निरीह बालकको ब्रह्मचारीके वेषमे देखकर वह रो देती है। अत्यत दुखी होकर वह क्षेत्रमोहन से कहती है, "लडका क्या हमारी आँखोके सामने, हमारे देखते-देखते यो ही सत्यानाश जायगा?" और फिर अपने सारे मान-अपमानको भुलाकर वह सोमेनके कुशल-समाचार लेनेके लिए शैलेशके घर चली जाती है।

शैलेशके लिए भी विभाके मनमे पर्याप्त स्नेह है। भाईको बुरा-भला कहा जाना उसे सह्य नही। इसके लिए वह कभी-कभी स्वामीसे भी झगड बैठती है। यहाँ यह स्मरणीय है कि क्षेत्रमोहनको भी विभा सारे लडाई-झगडोके बावजूद हृदयसे प्यार करती है। उपन्यासकार इन दोनोके सबधको

समझाता हुआ कहता है, "उन दोनो स्वामी और स्त्रीके बीच सच्ची–दिली-प्रीति और स्नेहकी शायद कमी न थी, किन्तु बाहर देखनेमे, दुनियाके व्यवहारमे, इसी प्रकारके वाद-प्रतिवादकी टक्कर प्राय प्रकट हो पडती थी।" सच तो यह है कि उषाको छोडकर विभा अन्य सबसे सतुष्ट रहती है। उसके मनके असुरोको जागृत करनेके लिए ही मानो उषाका आविर्भाव हुआ है (यद्यपि अततोगत्वा उषाके लिए भी विभाके मनमे प्रीति उत्पन्न हो जाती है)।

इस स्थलपर उषा और विभाके चरित्रोकी सक्षिप्त तुलना कुछ अप्रासगिक न होगी। वस्तुत ये दोनो चरित्र एक दूसरेके बहुत-कुछ विपरीत है। उषा जहाँ जिंदगीके हर पहलूको बहुत गहराईके साथ देखती है, वहाँ विभाका दृष्टिकोण प्राय. सतही है। उषाकी सूक्ष्म अतर्दृष्टिका उसके व्यक्तित्वमे अभाव है। उषा शात एव शातिप्रिय है, विभा कुछ झगडालू और चिडचिडी है। एकमे व्यावहारिक सयमकी मात्रा पर्याप्त रूपसे है, दूसरीमे व्यावहारिक असयमका प्राधान्य है। उषामे सहनशीलता और धैर्य है, इसके विपरीत विभा प्राय असहिष्णु है। दूसरोकी बात सुनना उसे पसद ही नही। उषामे जहाँ बौद्धिकता है, वहाँ विभामे छिछली भावुकता। उषा प्राचीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृतिकी उपासक है, विभाके आचार-विचार पाश्चात्य परपराओसे प्रभावित है। उषा बहुत मितव्ययी है, पतिके ऋणके एक बडे भागको वह चुका देती है, पर विभा अपव्ययी है, उसके कारण क्षेत्रमोहन आकठ ऋणमे डूबे हुए है। इसके अतिरिक्त उषा पर्याप्त रूपसे चितनशील है, विभा मात्र हठवादी है। क्षेत्र बाबूके अनुसार तो 'उषाके पैरोकी धूलकी बराबरी करनेकी भी योग्यता विभामे नही है।' वे सोचते है, "जो विश्वास अपनेको पीडित करने मे पश्चातपद नही होता, जिसकी श्रद्धाकी गहराई दु ख और त्यागके भीतर अपनी परीक्षा कर लेती है, वह विश्वास विभामे कहाँ है? उमामे कहाँ है? और वे तो अनेको स्त्रियोको जानते है, किन्तु ऐसी स्त्री कहाँ देख पडती है, जिससे उषाकी तुलना की जाय?" शैलेश भी उषाके साथ विभाकी और उन लोगोके शिक्षित समाजकी और भी दो-चार

महिलाओंकी मनमें तुलना करके एक ठडी साँस ही छोड पाता है। और यह सच भी है। उषाका चरित्र जहाँ बहुत-से उच्च गुणोका समाहार है, वहाँ विभाका चरित्र बहुत-कुछ औसत दर्जेका है। इसी वैषम्यका ध्यान करके एव उषाकी महत्ताको पहचान करके विभा कथानकके अतमें अपनी इस ग्रामीण भाभीके पैर छूती है। यह नम्रताकी कटुतापर विजय है। इसीके साथ-साथ हम यह भी देखते हैं कि उषाके चतुर्दिक् गृहिणीत्वके सम्मुख विभाके निपट फूहडपनको अततोगत्वा किस प्रकार झुकना पडता है।

उपन्यासमें उमाका अकन पार्श्व-चरित्रके रूपमें हुआ है। यत्र-तत्र कुछ उल्लेखोंके अतिरिक्त हम उसके बारेमें विशेष कुछ नही जान पाते। अनुमानके आधारपर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि क्षेत्र बाबूकी इस बहिनका व्यक्तित्व बहुत-कुछ अपने भाईके अनुरूप ही होना चाहिए। उमाके सबधमें उनका विशेष आग्रह है, "शैलेशकी बहिन (विभा) और मेरी बहनमें बाहरी वेशभूषाका सादृश्य देखकर दोनोंके हृदय भी समान न समझ लीजिएगा।" उमाके व्यक्तित्वके अत्यधिक सक्षिप्त अकनमें भी हमें एक स्थलपर उसकी अतर्दृष्टि और चातुर्यके दर्शन हो जाते हैं। क्षेत्र बाबूके शैलेशसे यह आग्रह करनेपर कि बुढापेके आनेके पहले उन्हें अपना घर बसा लेना चाहिए, उमा अत्यत दृढ विश्वासके साथ कहती है, "इनके बुढापे आनेमें, भैया, अभी बहुत देर है, और उसके बहुत पहले ही भाभीजी आकर हाजिर हो जायँगी।" और जैसा उपन्यासके अतमें हम स्वय देखते है, उमा की यह भविष्यवाणी एकदम सही निकलती है।

शेष प्रश्न

•

जैसा कि नामसे ही स्पष्ट है, 'शेष प्रश्न' शरत् बाबूकी अत्यत सरल एव सुबोध शैलीमे लिखा होनेपर भी उनका सबसे जटिल तथा दुरूह उपन्यास है। यह दुरूहता कथा-गत न होकर, उसके माध्यमसे अभिव्यक्त विचार-धारासे सबद्ध है। यौवन और प्रेमकी समस्या, तथा नारी और पुरुषके पारस्परिक सबधकी समस्या, इस उपन्यासमे बडी ही कुशलतासे हमारे सम्मुख प्रस्तुत की गई है। नारी-चरित्रोका 'शेष प्रश्न'मे अकन एक विशिष्टताके साथ हुआ है। इसके साथ ही इस उपन्यासकी जो सबसे बडी विशेषता है, वह यह है कि इसमें स्वय उपन्यासकार आशु बाबूके रूपमे आकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो गया है। इसी दृष्टिकोणसे शरत्के नारी सबधी अनेक विचारोको समझनेके लिए 'शेष प्रश्न'के आशु बाबू तथा कमलके सवाद अत्यत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं।

'शेष प्रश्न'की कथा मानवीय सवेदनाओंके घात-प्रतिघातसे परिपूर्ण है। सपूर्ण उपन्यासमे एक निश्चित बौद्धिक चेतना रहनेके फलस्वरूप उसके कथा-भागमें समाजके उच्च-शिक्षित एव शिष्ट वर्गका ही चित्रण हुआ है। एकदम सुलझे हुए विचारोके, विदेशी शिक्षासे सपन्न तथा अत्यत हास्य-विनोद-प्रिय आशु बाबू अपने सपूर्ण धन-वैभवके साथ, अपनी एकमात्र अविवाहिता युवती पुत्री मनोरमाको साथ लेकर, जल-वायु परिवर्तनके हेतु आगरेमे आकर रहने लगते हैं। अपने मिलनसार स्वभावके कारण वहाँके सभ्य बगाली-समाजसे उनका घनिष्ट परिचय हो जाता है। उनके प्रमुख मित्रोमें हैं—अविनाश, हरेन्द्र तथा अक्षय जो स्थानीय कालेजोमे अध्यापक हैं, शिवनाथ—भूतपूर्व अध्यापक तथा कुशल गायक, उसकी अपूर्व

सौंदर्य एवं प्रतिभाशालिनी स्त्री कमल, तथा अविनाशकी विधवा साली नीलिमा।

आशु बाबूके आगरे-प्रवासके कालमे उनकी पुत्री मनोरमाका होनेवाला वर अजितकुमार, जो विलायतसे इजीनियरिंगकी डिग्री लेकर लौटा है, उनके पास आकर रहने लगता है। कुछ दिन तक सबका समय बडी अच्छी तरह व्यतीत होता हे। फिर एकाएक ही उनके जीवनमे सघर्षोका आगमन प्रारभ हो जाता है। मनोरमा जो पहले शिवनाथको गुणी जानकर उसका बहुत आदर करती थी, अक्षय-द्वारा उसकी बुराइयोको सुनकर उससे घृणा करने लग जाती है। इधर अजित, जो कमलके ऊपर श्रद्धा करने लगा था, उसका वश-परिचय सुनकर लज्जासे गड जाता है। इसके उपरात मानवीय मनोविकारोके जो घात-प्रतिघात प्रारंभ होते है, उनका अत उपन्यासकी समाप्तिपर इस प्रकार होता है—

(१) मनोरमा अपना विवाह शिवनाथके साथ कर लेती है।

(२) कमल अजितकी जीवन-सगिनी बन जाती है, और

(३) रूप-गुण-सपन्न नीलिमा वृद्ध तथा रुग्ण आशु बाबूसे प्रेम करने लगती है। और तब हमे आशु बाबूके उस कथनका स्मरण हो आता है, जिसे हम प्रस्तुत उपन्यासका मूल सूत्र (Key-note) कह सकते है, "दुनियामे अपना पराया कोई नही है कमल, स्रोतके खिचावसे कौन कब पास आ जाता है, और कौन बहकर दूर चला जाता है इसका कुछ भी हिसाब कोई नही जानता।" इस प्रकार हम 'शेष प्रश्न' के कथानककी तुलना कुछ अशोमे प्रतिष्ठित नाटककार शेक्सपियर के 'मिड समर नाइट्स ड्रीम'से कर सकते है, जिसमे ठीक इसी प्रकारसे प्रेमका विपर्यय होता है। परतु इन दोनोमे प्रमुख अतर यह है कि जहाँ प्रेमके इस उलट-फेरको दिखानेके लिए शेक्सपियरको एक अतिप्राकृत माध्यम (Super-natural element) स्वीकार करना पडा है, वही शरत् बाबूने प्रणय-सूत्रोकी अस्थिरताको मनोविज्ञानके सिद्धातोके आधार पर मान्यता दी है। कहना न होगा कि यह

भारतीय साहित्यकारके लिए गौरवकी वस्तु है। और यह तो निश्चित है कि 'शेष प्रश्न'के साढे तीन सौ पृष्ठ पढ लेनेके बाद जीवनका प्रश्न-चिह्न और भी वडा हो जाता है। यही उपन्यासके नामकरणकी सार्थकता, तथा उपन्यासकारकी कलाकी सफलता है।

'शेष प्रश्न'मे पॉच प्रमुख नारी-पात्र है—कमल, मनोरमा, नीलिमा, वेला और मालिनी। इनमे-से वेला और मालिनी तो प्राय पार्श्व-चरित्र है। शेष तीनमे-से भी उपन्यासके अधिकाश कथा-भागपर कमल ही छाई रहती है। ऐसा जान पडता है कि कमलके चरित्रका उद्घाटन करनेके लिए ही मानो 'शेष प्रश्न'का सृजन हुआ हो। अस्तु, उपन्यासके सभी नारी-पात्रोमे मूलगत अतरके साथ ही साथ वे सभी प्राय अपने पूर्वागतोसे भी भिन्न है। केवल कमलके चरित्रको ही हम किरणमयी, अभया, षोडशी तथा सुमित्राकी परपरामे रख सकते है। ऐसा जान पड़ता है कि इन सभी नायिकाओके श्रेष्ठतम परमाणुओको लेकर शरत् बाबूने कमलका सृजन किया है। 'शेष प्रश्न'मे ही नही, वरन् सपूर्ण शरत्-साहित्यमे एक अत्यत महत्त्वपूर्ण नारी-पात्र होनेके कारण कमलके चरित्रका ही विश्लेषण हम सर्वप्रथम करेगे।

किरणमयी तथा सुमित्रा आदिके समान ही, कमलका रूप देखनेवालेको विस्मयमे डाल देता है। शिवनाथका यह कथन कि उसने कमलसे विवाह सुदरताके लिए किया है, अक्षरश सत्य है। प्रथम दर्शनके समय कमलके सौदर्यका वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहता है, "अँगिया-साडी भीगकर भारी हो गई है, माथेकी निबिड कृष्ण केश-राशिसे जल-धारा गालोके ऊपरसे झरती हुई बह रही है। पिता और कन्या दोनो ही इस नवागता रमणी के मुँहकी तरफ देखकर असीम विस्मयसे अवाक् हो रहे। आशु बाबू खुद कवि नही है, किंतु उनको पहले ही ऐसा जान पडा कि इस नारी-रूपकी ही शायद प्राचीन युगमे कवि लोग शिशिर-धौत कमलके साथ तुलना कर गये है और ससारमे इतनी बडी सच्ची तुलना भी शायद दूसरी नही है।" और तब आश्चर्य ही क्या है जो वृद्ध आशु बाबू कहते है, "लडकी है, मानो एकदम लक्ष्मीकी प्रतिमा। ऐसा रूप मैने कभी नही देखा।" और तो

और, अनुपम सौदर्यशाली ताजमहलके सामने भी लोग कमलको ही देखना अधिक पसद करते है । 'जो जीवित आश्चर्य इस अपरिचित रमणीके सर्वाङ्ग-मे व्याप्त होकर अकस्मात् मूर्त्तिमान् हो उठा है, उसके ही सामने उस निकटस्थ सगमरमरका अप्रकट आश्चर्य मानो एक क्षणमें धुंधला-सा हो गया है ।' ओर यही कारण है कि कमलका व्यक्तित्व प्रत्येक स्थलपर अपना महत्त्व रखता है, क्योकि सौंदर्यने उसे एक शक्ति दे दी है । केवल एक स्थानपर, जहाँ कमलका सौदर्य फीका और निष्प्रभ पड जाता है, इस अशेष रूपवती युवतीको दवना पडा हे । राजेन्द्र वह व्यक्ति है, जिसने कमलके सौदर्यकी ओर आँख उठाकर देखा तक नही, और उसीके सम्मुख कमल पराजित हुई ।

जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे निस्संकोच होकर रहना कमलके चरित्रकी एक प्रमुख विशेपता है । मनोरमासे प्रथम भेटके समय ही वह अपनी आवश्यकता-की वस्तुएँ स्वय माँग लेती है । आशु वावू इस सवंधमे कहते हे, "लज्जा-सकोचकी वात तो थी ही नही, मेरा स्वास्थ्य कैसा है, क्या खाता हूँ, कौन-सी चिकित्सा चल रही है, जगह अच्छी लग रही है या नही—प्रश्न करनेका क्या ही सहज स्वच्छद भाव था । वरन् शिवनाथ तो सकुचित-से हो रहे, किंतु उसमे जडताका चिह्न तक भी मैने नही देखा । न तो वातचीतमे, न आचरणमे ।" सवके सम्मुख कमल शिवनाथसे भी उसी सहज और निस्सकोच भावसे वात करती है, जिस प्रकारसे अन्य व्यक्तियोसे । उप-न्यासके प्रारभिक अशोमे कमलका सरल और स्वच्छद भाव अजितको चक्करमे डाल देता है । सध्याके समय अजितकी वगलमे वैठकर मोटरकी सैरमे उसे लज्जाका अनुभव नही होता । प्रथम भेटके समय ही वह अजितसे आग्रह करती है कि वह उसे मिसेज शिवनाथ कहकर नही, वरन् मात्र कमल कहकर पुकारे । अपनी माँका लज्जा-जनक वृत्तात तथा अपनी जन्म-कथा जिस स्पष्टता एव सरलताके साथ वह अजितको वताती है, उससे उसके चरित्रकी निर्मलतापर ही प्रकाश पडता है । ऐसा जान पडता है मानो छिपाने लायक उसके पास कुछ है ही नही । अजितके समान ही वह हरेन्द्र-

को भी अपने साथ निर्जन घरमे ले जाना चाहती है। अधिक रात हो जाने पर वह उनके लिए बिस्तर बिछानेको भी तत्पर है। कमलके इन निस्सकोच आचरणोके पीछे उसकी वह बुद्धि है जो किसी भी प्रकार यह माननेको प्रस्तुत नही कि निर्जन गृहमे अनात्मीय नर-नारीका केवल एक ही सबध हो सकता है। इसीलिए वह एक परिचित अग्रेजकी घर-गृहस्थी सँभालनेके लिए उसके घर भी जा सकती है। नीलिमाके मतानुसार, 'वह मानो ठीक नदीकी मछलीकी-सी है। पानीमे भीगने न भीगनेका प्रश्न ही नही उठता। खाने-पहिननेकी चिंता नही, शासन करनेवाला अभिभावक नही, आँखे लाल करनेवाला समाज नही—परम स्वतत्र है।'

वस्तुत कमलका जीवनके प्रति दृष्टिकोण अत्यत ही समृद्ध है। उसके इस दर्शनमे विलासिता नही है, वरन् एक समन्वय है। इस तथ्यको समझ लेनेपर हम उसके वहुत-से ऐसे कार्योमे सगति बैठा सकते है, जो ऊपरसे कुछ अटपटे लगते है। अपने दृष्टिकोणकी व्याख्या करती हुई कमल कहती है, "कोई कोई व्यक्ति ऐसे होते है जो वृद्ध मन लिये ही जन्म ग्रहण करते है। उसी वृद्धके शासनके नीचे उनका जीर्ण-शीर्ण विकृत यौवन सदैव लज्जासे माथा झुकाये रहता है। वृद्ध मन प्रसन्न होकर कहता है, अहा! यही तो अच्छा है। हल्ला नही, उन्माद नही, यही तो शाति है, यही तो मनुष्यके लिए परम तत्त्वकी बात है .मनकी वृद्धता मै उसीको कहती हूँ, आशु बाबू, जो सामनेकी तरफ देख नही सकता, जिसका अवसन्न, जराग्रस्त मन भविष्यकी सभी आशाओको छोडकर केवल अतीतके अदर ही जीवित रहना चाहता है। और मानो उसे कुछ करने या पानेकी इच्छा ही नही है,—वर्तमान उसके निकट लुप्त है, अनावश्यक है, और भविष्य निरर्थक है। अतीत ही उसका सर्वस्व है।" इसके विपरीत कमलकी विचारधारामे वर्त्तमानको सबसे अधिक महत्ता प्राप्त है। उसके जीवनकी पूंजी वर्त्तमानपर ही आधारित है। अत्यत स्पष्ट एव सरल अभिव्यक्तिका सहारा लेती हुई वह अजितसे कहती है, "मै मानती हूँ कि जव जितना पाऊँ उसको ही सत्य समझकर मान ले सकूं। दुखका दाह मेरे विगत सुखके शिशिर-

बिन्दुओंको सुखा न सके। वह चाहे जितना भी थोडा क्यो न हो, और परिणाम उसका ससारमे कितना ही तुच्छ क्यो न गिना जाय, तो भी मै उसे अस्वीकार न करूँ। एक दिनका आनद किसी दूसरे दिनके निरानदके सामने लज्जा अनुभव न करे .. इस जीवनमे सुख-दु खमेंसे कोई भी सत्य नही है अजित वावू, सत्य है केवल उसका चंचल क्षण। वुद्धि और हृदयसे उसको प्राप्त करना ही तो सच्ची प्राप्ति है।" उद्धरणके अतिम दो वाक्य कमलके जीवन-दर्शनको समझनेके लिए विशेप रूपसे महत्त्वपूर्ण हैं। प्रकारातरसे, कमलके इस भौतिक सुखवाद (Hedonism) की विवेचना हम अलगसे करेंगे।

कमलकी विचार-धारा प्राचीन भारतीय मनीपी भर्त्तृहरिसे वहुत-कुछ मिलती है, जिन्होने स्वय नीतिशतक, शृगारशतक एव वैराग्यशतकका सृजन किया। इन दोनो ही विचारकोने जीवनको उसकी एकाग्रतामे देखने एव स्वीकार करनेकी चेष्टा की है। परतु इन दोनोके व्यावहारिक जीवनका अतर भी हम स्पष्टत. देख सकते हैं। भर्त्तृहरिने जीवनको तीन अलग-अलग कालोमे विभाजित करके उसे समृद्धता प्रदान की है, कमलने जीवनको एक साथ, एक समयमे ही समृद्ध वना दिया है। उसकी साधना है, 'ससारका सम्पूर्ण ऐश्वर्य, समस्त सौदर्य, समस्त प्राण लेकर जीवित रहना।' इस दृष्टिकोण से, भर्त्तृहरिकी अपेक्षा कमलने कही अधिक सफलताके साथ जीवनमे समन्वय खोजनेकी चेष्टा की है। उक्त-उद्धृत वाक्य तो मानो कमलके चरित्रका मूल सूत्र ही है।

कमलने जीवनके आनदको उसके एक-एक क्षणसे सचित करनेकी चेष्टा की है। आयुकी व्यापकतासे अधिक वह क्षणके असीमत्वको महत्त्व देती है। उसका स्पष्ट मत है, "आयुकी दीर्घताको ही जो लोग सत्य समझकर जकड रखना चाहते हैं, मैं उन लोगोमे-से नही हूँ. . पौधेके फूल सूख जाएँगे इस ख्यालसे बहुत देर तक रहनेवाले नकली फूलोका गुच्छा वनाकर जो लोग फूलदानोमे सजाकर रखते हैं, उनके साथ मेरे मतका मेल नही खाता। किसी आनदका भी स्थायित्व नही है। है केवल उसके क्षण-

स्थायी दिन।" किसी भी वस्तुका मूल्याकन कमल उसके स्थायित्व अथवा उसकी दीर्घतासे नही करती। अजितसे वह कहती है, "मेरे आँगनके पास जो फूल खिलते है उनका जीवन बहुत कम है। उससे वह मसाला पीसनेका लोढा अधिक टिकाऊ है, अधिक दीर्घस्थायी है। सत्यकी जॉच करनेका इससे सुदर मापदड आप लोग पावेगे कहॉ ? फूलको जो नही पहचानता उसके लिए वह पत्थरका लोढा ही बडा सत्य है।" इससे स्पष्ट है कि कमल जीवनमे किसी भी प्रकारके पलायनको स्वीकार नही कर सकती। उसका यह आनदवाद कर्मण्यताकी दृढ भित्ति पर आधारित है।

हम देखते है कि कमलका जीवन प्राय. अभावोमे ही बीता है। आनद-वादकी प्रबल समर्थिका होनेपर भी स्वय उसका व्यक्तित्व भौतिक सुखोसे दूर रहा है। यह एक विचित्र तथ्य है कि सिद्धातत तपस्याका विरोध करती हुई भी, उसने अपने आपको विभिन्न प्रकारकी साधनाओमे निखारा है। उसके इस तप पूत व्यक्तित्वको न तो ससारसे ही कोई शिकायत है और न नियतिसे ही। शिवनाथ जब उसकी ओरसे एकदम उदासीन हो जाते है, तब भी उनके प्रति उसका व्यवहार पूर्ववत् रहता है। यहाँ तक कि उनसे स्पष्ट छल एवं वंचना पानेपर भी वह उनके विरुद्ध नही होती। अजितके मतानुसार, "शिकायत करनेवाली स्त्री तो तुम हो भी नही !" और स्वय कमल भी हरेन्द्रसे कहती है, "अब सोचती हूँ कि उनमे (शिवनाथमे) जो कहकर जानेका साहस नही था, वही तो मेरा सम्मान है। छिपाव-दुराव, छल-कपट और उनके सभी मिथ्याचारोने मुझे मर्यादा ही दी है। पानेके दिन मुझे धोखा देकर ही वे पा गये थे, किंतु जानेके दिन मुझे सूद-ब्याज सब चुकता करके जाना पडा है। अब मुझे कोई शिकायत नही है।' इन शब्दोके पीछे हमे एक ऐसी शक्तिका आभास मिलता है जो किसी भी प्रकारकी विरुद्धताओके सम्मुख झुकती नही। आशु बाबूके समक्ष भी प्राय इन्ही शब्दोको दुहराती हुई कमल कहती है, "जो नही है वह क्यो नही है, कहकर आँखोके आँसू बहानेमे मुझे लज्जा मालूम होती है, जितना वे कर सके है, उससे अधिक वे क्यो नही कर सके इस बातको लेकर झगडा करनेमे मेरा

सिर झुक जाता है।" और भी, "मै प्रतिदिन ही विचार करके देखती हूँ आशु बाबू। दु ख मै नही पाती ऐसी बात मै कहती नही हूँ, किंतु उसे ही मैंने नही मान लिया है। शिवनाथके पास जो कुछ भी देनेको था, वे दे चुके, मुझे जो कुछ मिलना था, वह मिल चुका—आनदके वे छोटे-छोटे क्षण ही मेरे मनमे मणि-माणिक्यकी तरह सचित है।" इन उद्धरणोसे स्पष्ट है कि उसकी आत्माकी शक्ति कितनी अजेय और अडिग है, जो प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितिमे अचल रहती है। कर्मका आनद ही कमलके जीवनका सर्वस्व है, फलके प्रति उसकी कोई विशेष आस्था नही।

कमलके प्रेम एव विवाह-संबधी सिद्धात विशेप रूपसे विचारणीय है, क्योकि प्रचलित परंपराओके वे एकदम विपरीत है। कदाचित् यह कहना भी असगत न होगा कि अपने इन्ही विचारोके कारण उसका व्यक्तित्व इतना असाधारण तथा विशिष्ट है। वस्तुतः कमल प्रेमको विशुद्ध मनोविज्ञानके दृष्टिकोणसे देखना चाहती है। इस संवधमें वह मिथ्या भावनाओको कुछ भी महत्त्व नही देती। शाहजहाँका मुमताजके प्रति एकनिष्ठ पत्नी-प्रेम ही ताजमहलके निर्माणका कारण था, इस वहु-प्रचलित मतका खडन करती हुई कमल कहती है, "सम्राट् मुमताजको जिस तरह प्यार करते थे उसी तरह अन्य औरतोको प्यार करते थे। शायद कुछ अधिक हो सकता हो, किंतु एकनिष्ठ प्रेम उसको नही कहा जा सकता आशु वाबू। उनमे यह बात तो नही थी. .. सम्राट् भावुक थे, कवि थे, अपनी शक्ति, सम्पत्ति और धैर्यसे इतनी वडी एक विशाल सौदर्यकी वस्तु स्थापित कर गये है। मुमताज तो एक आकस्मिक उपलक्ष्य मात्र थी। नही तो, ऐसा ही सुदर सौध वे किसी भी घटनाको लेकर वनवा सकते थे। धर्मके उपलक्ष्यमे होता, तो कोई हानि नही थी, हज़ारो-लाखो मनुष्य वध करनेके दिग्विजयकी स्मृति-के उपलक्ष्यमे होता तो भी ठीक था। यह एकनिष्ठ प्रेमका दान नही है। यह बादशाहके अपने आनदलोकका अक्षय दान है। इतना ही तो हम लोगोके लिए यथेष्ट है।" ऐसा जान पडता है कि कमलके प्रेम एव विवाह सबधी विचारोमे, मुक्त और किसी हदतक उच्छृखल सौदर्योपभोगकी

प्रधानता है। इस मुक्त एव सहज स्थितिके अभावके कारण ही वह एकनिष्ठ प्रेमका खडन करती है। अपने अत्यत प्रबल तर्कोका सहारा लेती हुई वह कहती है, "निष्ठाका कोई मूल्य ही नही है, यह बात मै नही कहती किंतु जो मूल्य युग-युगसे लगातार लोग उसे देते आये है वह भी उसका, प्राप्य मूल्य नही है। एक दिन जिसको प्यार किया है, किसी दिन किसी कारणसे भी उसमे परिवर्त्तनका उपाय नही रहता, मनका यह अटल जड धर्म स्वस्थ भी नही है, सुन्दर भी नही है।" प्रेमकी परपराओके प्रति कमलका यह विद्रोह उसे अनायास ही शरत्‌के नायिका-समाजमे असाधारण रूपसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिला देता है। उसके निकट आदर्श प्रेम—या प्रेम वह है, जो अपने पात्रको किसी भी प्रकार बाँधना न चाहे।

आशु बाबू जैसे दृढ पत्नीव्रत व्यक्तिके सम्मुख भी कमल एकनिष्ठ प्रम तथा वैधव्यकी पवित्रताका तिरस्कार कर सकती है। उसके स्वच्छद मनोराज्यमे किसी भी प्रकारके अस्वाभाविक एव अप्राकृतिक व्यवधानोकी स्थिति नही है। जो कुछ सहज है, जो कुछ मुक्त है, वही करणीय है, ऐसा कमलका मत है। वृद्ध आशु बाबूके पत्नी-प्रेमकी चर्चा करती हुई एक लवे सवादमे कमल कहती है, "एक दिन आशु बाबूने अपनी स्त्रीको प्यार किया था, किंतु वे जीवित नही है। उनको देनेकी भी कोई चीज नही है, उनसे अब पानेकी भी कोई वस्तु नही है। उनको अब सुखी किया भी नही जा सकता, दु ख भी नही दिया जा सकता। वे अब नही है। प्रेमका पात्र निश्चिह्न हो गया है। एक दिन उनको जो प्यार किया था वह स्मृति ही केवल मनमे रह गयी है। मनुष्य नही है, है केवल स्मृति। दिन-रात मनमे उसीको ध्यान करते हुए, वर्त्तमानकी अपेक्षा अतीतको ही ध्रुव समझकर जीवन बितानेमे कौन-सा बडा भारी आदर्श है, यह बात तो सोच-विचार करनेपर भी मेरी समझमे नही आती।" और इस प्रकार इन कठोर तर्कोसे वह आशु बाबूके इस स्मृति-सौधको गहरा धक्का पहुँचाती है। आगे वह और भी तीव्र स्वरमे कहती है, "एक बडा नाम दे देनेसे ही तो कोई वस्तु ससारमे सचमुच बडी नही हो जाती। बल्कि यह कहिये कि

इस तरह इस देशमे वैधव्य जीवन वितानेकी ही प्रथा है, कहिये कि एक मिथ्या-को सत्यका गौरव देकर लोग उनको (विधवाओको) ठगते चले आ रहे है—इसे मै अस्वीकार न करूँगी।"

प्रेमकी ही भाँति विवाहके सबधमे भी कमलके अपने कुछ निश्चित मत है। एक प्रकारसे कमल विवाहकी सस्थाको मान्यता नही देती। यही नही, वह इस अनुष्ठानका विरोध भी करती है। आशु बाबू-के यह शका प्रकट करनेपर कि यदि शिवनाथ उससे सबध विच्छेद कर ले तो वह क्या करेगी, कमल कहती है, "वे करेगे मुझे अस्वीकार और मै जाऊँगी गला पकडपर उनसे स्वीकार कराने? सत्य तो डूब जायेगा, और जिस अनुष्ठानको मै मानती ही नही, उसीकी रस्सीसे उनको बाँध रखूंगी। मै करूँगी यह काम?" इससे स्पष्ट है कि कमल जीवनकी स्वाभाविक गतिके सम्मुख किसी भी प्रकारके मिथ्या आडबरको नही मानती। प्राकृतिक तत्त्वोंके वशीभूत होकर मन जिधर जाना चाहे, उसे उधर ही जाने दिया जाय, यह कमलका सिद्धात है। अवरोधोको वह ठहरने नही देना चाहती—'एक दिनके एक अनुष्ठानके जोरसे उसके छुटकारेका रास्ता यदि समस्त जीवनके लिए अवरुद्ध हो जाय तो उसे श्रेयकी व्यवस्था कहकर माना नही जा सकता।' उसका ध्यान जीवनकी रसमयतापर अधिक केन्द्रित है अपेक्षा-कृत तत्सबधी आचारोपर। अजितसे वह अत्यत स्पष्ट शब्दोमे कहती है, "मै यही कामना करती हूँ कि नर-नारीका यही परिचय किसी दिन प्रकाश औेर वायुकी तरह सहज हो जाय।" यह उसकी जीवनकी नैसर्गिकताके प्रति आस्था है, बधन-मुक्तिके प्रति विश्वास है। उसके आदर्श मनोराज्यमे प्रकाश और वायु-जैसे प्राकृतिक पदार्थोके समान ही नर-नारीका सबध भी सुलभ और सार्वजनीन हो जायेगा।

विवाहके प्रति कमलकी इन धारणाओसे आशुबाबूके उस मतकी पुष्टि होती है, जिसके अनुसार 'विवाहके प्रति नही, इसके Form (तरीके) पर ही शायद कमलकी उतनी आस्था नही है।' वस्तुत कमल विवाहके अनुष्ठानको नितात मिथ्या ही नही मानती, पर वह उसे एकदम सत्य भी

नही मानती। उसके मतसे दो आत्माओका पारस्परिक सम्मिलन ही वास्तविक सत्य है, विवाह तो उसका आवरण-मात्र है। आतरिक प्रेमकी प्राणसे, और विवाहकी देहसे सापेक्ष्य तुलना करती हुई वह कहती है, "जैसे प्राण भी सत्य है, देह भी सत्य है—किंतु प्राण जब निकल जाता है ?" अर्थात् विवाहकी तभीतक सार्थकता है, जबतक उसके दोनो भागी उसे माने। यदि दोनोके हृदय एक-दूसरेसे अलग हो चुके है तो कोई भी अनुष्ठान उन्हे बाँधकर नही रख सकता। अपनी इस विचार-धाराके अनुकूल ही कमल आवश्यकतासे अधिक सयमको महत्ता नही देती। आशु बाबूके प्रति वह अपना मत व्यक्त करती है, "जहाँपर सयम उद्धत आस्फालनसे जीवनके आनदको मलिन कर देता है, वह कोई चीज नही है, वह मनकी एक लीला है,—उसे बाँध रखना आवश्यक है। सीमा मानकर चलना ही तो सयम है—शक्तिकी स्पर्द्धामे सयमकी सीमाको भी लाँघ जाना सभव है। तब फिर उसे वह मर्यादा नही दी जा सकती। अति सयम भी एक तरहका असयम है, यह बात क्या किसी दिन विचार कर आपने नही देखी आशु बाबू ?" इस लबे उद्धरणसे स्पष्ट है कि प्राकृतिक जीवन-क्रमपर आधारित कमलकी विचार-धारामे सयमका महत्त्व प्राय नही है, अति सयम तो परिहार्य है ही।

सामाजिक आडबरोसे अनुशासित विवाहकी सस्थाकी व्यगात्मक प्रशसा करते हुए कमल कहती है, "वह तो अनभिज्ञ यौवनका पागलपन नही है, बहुदर्शी गुरुजनो-द्वारा किया हुआ कार्य है, सपनेका मूलधन नही है—आँखोसे देखी हुई पक्के आदमियो-द्वारा जाँच-पडताल की हुई शुद्ध वस्तु है। अकगणितमे साघातिक भूल न रहनेसे उसमे सहज ही दरार नही पडती। वह बहुत दृढ है—समूचे जीवनमे वज्रकी भाँति टिकी रहती है।" परन्तु कमलके लिए यह मिथ्या स्थायित्व ग्राह्य नही। वह तो मानती है कि स्वाभाविक रूपसे जबतक प्रेमकी स्थिति बनी रहे, तभी तक दो व्यक्तियो-के बीच निकटका सबध शोभन एव वाछनीय है, परतु वास्तविक सूत्रके छिन्न हो जानेपर लौह-शृखलाका बधन भी असत् तथा अवाछनीय है।

और क्योकि वह यह मानती है कि 'सच्चा प्रेम भी ससारमे इसी तरह टूटकर दूर हो जाता है', इसीलिए अधिकाश प्रेमके विवाह क्षणस्थायी हो जाते है. अतएव उसके निकट प्रेमके स्थायित्वका भी कोई मूल्य नही। यही नही उसके मतानुसार तो अस्थिरता ही प्रेमका सबसे बडा गुण है—डी० एच० लॉरेन्सके शब्दोमे "लव इज लाइक ए फ्लावर, इट मस्ट फ्लावर एड फेड" अर्थात्, प्रेम एक पुष्पके समान है जिसे अनिवार्यत. खिलना और मुरझाना चाहिए, या "फाइडैलिटी एड लव आर टू डिफरेंट थिंग्ज, लाइक ए फ्लावर एंड ए जैम" अर्थात्, स्थिरता एव प्रेम दो अलग-अलग वस्तुएँ है—पुष्प और मणिके समान।

प्रेम और विवाहको लेकर कमलका आक्रोश समस्त पुरुष जातिके प्रति अत्यधिक है। वह जानती है कि आदिम युगोमे ही समाजकी बागडोर पुरुषोके हाथमे रहनेके कारण, उन्होने अपने स्वार्थके अनुकूल सामाजिक नियमोका विधान किया है। वह ऐसी मान्यताओके प्रति विद्रोह प्रकट करती है। उसका स्पष्ट मत है, 'एक दिन जिन लोगोने कहा था कि नर-नारियोके प्रेमका इतिहास ही मानव-सभ्यताका सर्वापेक्षा सत्य इतिहास है, उन्ही लोगोने सत्यका पता सबसे अधिक पाया था, किंतु जिन लोगोने घोषणा की थी—पुत्रके लिए ही स्त्रीका प्रयोजन है, वे लोग स्त्रियोका केवल अपमान करके ही शात नही हुए, वरन् अपने बडे होनेके रास्तेको भी बद कर गये।' कमल कोई ऐसा कारण नही जानती, जिसके आधारपर वह नारी जातिको पुरुषसे नीचा समझे, परतु फिर भी उसे यह ज्ञात है कि नारियोकी मुक्ति पुरुषो-द्वारा ही सभव है, क्योकि 'विश्वका ऐसा ही नियम है, शक्तिके बधनसे शक्तिमान लोग ही दुर्बलोका परित्राण करते है। उसी तरह, नारियोको मुक्ति आज भी केवल पुरुष ही दे सकते है। दायित्व तो उन्ही लोगोका है।' इन पक्तियो-द्वारा कमल समस्त नारी-जातिकी मुक्तिके लिए, 'इमैन्सिपेशन' के लिए, अपील करती है। मनोरमा-के 'अपराध'को आशु बाबूसे क्षमा करानेके लिए उसकी इस युक्तिमे व्यावहारिक बुद्धिका प्राधान्य

जैसा हमने ऊपर देखा, भोग और सयमके सबधमे कमलके अपेक्षाकृत सर्वाधिक दृढ विचार हैं। वह जीवनको घुटने देना नही चाहती। हरेन्द्रके आश्रमकी व्यवस्थाका वह तीव्र विरोध करती है, "उस दिन मे आश्रममे जो कुछ देख आई हूँ, वह क्या सयम और त्यागकी शिक्षा है? उन लोगोको क्या मिला है? मिला है दूसरोका दिया दु खका बोझ, मिला है अनधिकार, मिली है प्रवचितकी क्षुधा। चीनियोके देशमे जन्मकालसे ही लडकियोके पॉव छोटे बनाये जाते हैं। पुरुप उन्हे सुन्दर कहे—यह मै सह सकती हूँ, किन्तु लडकियाँ जब अपने उन पगु, विकृत पैरोकी सुन्दरता पर स्वय ही मोहित होती हैं, तब मेरे लिए आशा करनेकी कोई भी बात नही रह जाती।" सनातन कालसे चले आनेवाले पुरुषोके अत्याचारके प्रति कमलका यह तीखा विद्रोह है। जीवनकी स्वाभाविक गतिमे किसी भी प्रकारका अवरोध उसे असह्य है, किन्तु यह स्मरणीय है कि अति-सयमका वह तिरस्कार करती है, सयमको भी बहुत अधिक महत्ता नही देती, पर फिर भी वह जीवनमे भोगको प्रश्रय देनेके लिए प्रस्तुत नही, विचारोमे भी और व्यवहारमे भी । हरेन्द्रसे वह कहती है, "केवल भोगको ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य बनाकर कोई जाति कभी बडी नही हो सकती।" स्वय अपने जीवनमे वह खान-पानको लेकर जिस कृच्छ्र-साधनाका आचरण करती है, वह किसी भी तपस्वीके लिए स्पृहणीय हो सकता है। ऐसा जान पडता है कि कमल वस्तुत सयमका अनादर नही करती, वरन् सयमके नाम पर मिथ्या बधनोको वह अस्वीकार करती है। उसके अनुसार सयम जहाँ अर्थहीन है, वह केवल निष्फल आत्मपीडन है। अजित-द्वारा विवाहका प्रस्ताव आनेपर वह यही कहती है, "बहुत मजबूत बनानेके लोभसे एकदम ठोस और छिद्रहीन मकान बनानेकी इच्छा मत करना। उससे मुर्देकी कब्र भले ही बन जाय, जीवित मनुष्यका शयनागार नही बन सकता।"

कमलके सपूर्ण जीवन-दर्शनके मूलमे छिपी हुई है उसकी जिजीविषा—जीनेकी आकाक्षा। जीवनसे उसे गहरा अनुराग है। और जीवन भी कैसा,

जिसमे अचल होकर पडे रहनेकी भावना नही है,वरन् जिसमे प्रत्येक कठिनाई का सामना करनेकी उमग है। वह आत्महत्या करेगी, यह वात तो उसके 'विधाता भी नही सोच सकते।' किसी भी मूल्यपर कमल जीवनको निस्पद एव शिथिल नही होने देना चाहती। उसके निकट तो जीवनका सतत गतिहीन रहना ही काम्य है। अजितसे वह कहती है, "द्रुतगतिसे चलनेमे एक भारी आनद है, वह चाहे गाडीकी हो या मनुष्य-जीवनकी ही क्यो न हो। किन्तु जो लोग डरपोक है, वे नही चल सकते। वे सावधानीसे धीरे-धीरे चलते है। सोचते है, पैदल चलनेका जो कष्ट वच गया, वही उनके लिए वहुत है। रास्तेको धोखा देकर वे ख़ुश है, अपनेको धोखा दे रहे है, इसका पता ही उन्हे नही चलता।" परन्तु इसके साथ ही साथ कमल यह भी जानती है कि कृत्रिम उपायोसे जीवनको विकृत वना देना उचित भी नही। 'सयम जव सहज स्वाभाविक न होकर दूसरे पर आघात करता है, तभी वह दुर्वह हो जाता है।' हरेन्द्रके ब्रह्मचर्याश्रमसे वह इसीलिए सन्तुष्ट नही है। उसका स्पष्ट मत है, "इनको मनुष्य वनाना चाहते हो तो साधारण, सहज मार्गसे वनाइए—मिथ्या दु खका वोझ सिरपर लादकर असमयमे ही कुवडा मत वना दीजिएगा।"

जैसा हम पहले ही कह चुके है, कमलके व्यक्तित्वका एक प्रमुख गुण यह है कि वह जीवनके छोटे-से-छोटे आनन्दका भी तिरस्कार नही करती। इसलिए प्रेम, भले ही उसकी अवधि अत्यन्त सीमित हो, कमलके निकट सदैव श्रद्धेय एव वाछनीय है। यही नही, क्षणिक मोहका भी वह पश्चात्ताप नही करती। और वैसे तो पश्चात्ताप करना उसके स्वभावमे ही नही है, 'जितना पा चुकी हूँ, उससे अधिक क्यो नही मिला है, इसकी मुझे जरा भी शिकायत नही है।' अस्तु, क्षणिक मोहको प्रश्रय देनेके लिए प्रस्तुत कमल एक अत्यन्त स्पष्ट भाव-चित्र (imagery) के माध्यम-द्वारा अजितसे कहती है, "किस आदिम कालमे कुहरेकी सृष्टि हुई थी, आज भी वह उसी तरह विद्यमान है। सूर्यको उसने वार-वार ढंका है और वार-वार

ढँकता रहेगा । सूर्य ध्रुव है या नही, मे नही जानती, किन्तु कुहरा भी असत्य प्रमाणित नही हुआ है । ये दोनो ही नश्वर है और शायद दोनो ही नित्यकालके है । उसी तरह मोह भले ही क्षणिक हो, किन्तु क्षण भी तो मिथ्या नही है । क्षण भरका आनन्द लेकर ही वह बार-बार लौट आता है। मालती फूलकी आयु सूर्यमुखीकी तरह लबी नही है, इसलिए कौन उसे असत्य कहकर उडा देगा !" इस प्रकार क्षणकी महत्ता या क्षणका असीमत्व उसकी विचार-धाराका प्रमुख अग है। वस्तुत आनन्दका प्रवाह उसके लिए समयातीत है। एक और हृदयग्राही भाव-चित्रके सहारे वह आशु बाबूको क्षणिक प्रेमके सौदर्यसे अवगत कराती है—'सूर्यास्तके समय बादलोपर जो रग खिल उठता है चाचाजी, वह स्थायी भी नही है, वह उसका स्वाभाविक रग भी नही है, किन्तु इसीलिए उसे झूठ कौन कहेगा ?' कहना न होगा कि कमलका यह अत्यन्त स्पष्ट एव अपोलिंग दृष्टिकोण आलोचककी व्याख्याकी अपेक्षा नही रखता ।

कमल जीवनमे किसी भी जातिगत अथवा साम्प्रदायिक भेद-भावको स्वीकार नही करती । वह सपूर्ण रूपसे मानवताकी उपासक है, मनुष्य-मात्रकी महत्तामे उसकी आस्था है। भारतीयताकी भावनाके प्रबल समर्थक आशु बाबूसे वह कहती है "भारतकी विशेपता और यूरोपकी विशेपता-मे भेद है—किन्तु किसी देशके किसी वैशिष्टचके लिए मनुष्य नही है, मनुष्यके लिए ही उसका आदर है। असल बात विचार करनेका यह है कि वर्त्तमान समयमे उसका वह वैशिष्ट्य कल्याणकर है या नही। इसके सिवा सभी बाते केवल अध-मोह है।" जीवनको उसके स्वाभाविक एव समग्र रूपमे देखनेके ही कारण कमलका दृष्टिकोण सब प्रकारकी 'प्रेजुडिस' से परे, नितान्त उदार तथा मानवतावादी है। उसके निकट मनुष्य अपनी सारी अच्छाइयो और बुराइयोके साथ भी श्रद्धेय है। वह एक राष्ट्रकी नही, वरन् एक विश्वके सगठनकी कामना करती है—"विश्वके सभी मानव यदि एक ही चिन्ता, एक ही विधि-निषेधकी ध्वजा पकडकर खडे हो जाँय तो उससे हानि ही क्या है ? भारतीयके रूपमे हम पहचाने न जायँगे, इसी बातका

तो भय है? भले ही न पहचाने जाँय। विश्वकी मानव जातिमे-से हम भी एक है, इस तरहका परिचय देनेमे तो कोई आपत्ति न करेगा, उसका गौरव भी क्या कुछ कम है?" इसलिए किसी भी देशकी संस्कृतिके गुणोको वह ग्रहण करनेके लिए प्रस्तुत है। इसमे उसे लज्जा या हीनताका अनुभव नही होता। संपूर्ण मानवताका कल्याण हो, यही उसकी 'ऐथिक्स' है।

कमल एक ओर यदि अत्यधिक चिन्तनशील है तो दूसरी ओर उसकी तर्कशक्ति भी एकदम सुलझी हुई एवं प्रखर है। पूरा-का-पूरा उपन्यास उसके बौद्धिक कथोपकथनोंसे भरा पडा है। हर-एक विषयपर उसका अपना सुचिंत्य मत है, जिसे वह अत्यंत शक्ति एवं प्रभावके साथ अभिव्यक्त करती है। तर्कमे दुराग्रह करना उसकी प्रकृतिके विरुद्ध है, परंतु उसके तर्क स्वयं इतने अकाट्य है कि उनके सम्मुख प्रतिपक्षियोको झुकना ही पडता है। उसकी बातचीतमे वकीलोकी-सी जिरह मिलती है। नारीके पातिव्रत-धर्मके संबंधमे अपना मत देती हुई वह कहती है, "अनेकानेक लोग बहुत दिनोसे कोई एक बात कहते आ रहे है, इसीलिए मै उसे मान नही लेती। पतिकी स्मृति-को हृदयमे लेकर विधवाको जीवन बिताना चाहिए, इस प्रकारकी स्वतःसिद्ध पवित्रताकी धारणाको भी मेरे सामने जबतक कोई पवित्र प्रमाणित नही कर देता, तबतक मुझे उसे स्वीकार करनेमे हिचकिचाहट ही रहेगी।" उक्त सिद्धांत हमारी प्रचलित परंपराओ एवं मान्यताओके विरुद्ध है, पर फिर भी हम यह जानते है कि उसे आसानीसे निराधार सिद्ध नही किया जा सकता। और यह स्पष्ट है कि कमलकी अचूक तर्क-शक्तिके प्रायः वही मत-वाद शिकार होते है, जो युग-युगोसे हमारी भावनाओमे लिपटे चले आ रहे है। नीतिशास्त्रमे कर्त्तव्यकी भावनाको प्रायः बहुत महान् एवं स्पृहणीय माना जाता है, परन्तु कमलका कहना है कि 'कर्त्तव्यमे जो आनन्द-सा प्रतीत होता है, वह दुःखका ही नामान्तर है। उसको बुद्धिके शासनसे जबर्दस्ती मान लेना पडता है। वही तो है बंधन।' इसी प्रकार बहु-कथित संयमको भी वह जीवनका बडा आदर्श नही मानती। हरेन्द्रसे वह कहती है, "सभी संयमोकी तरह यौनसंयममे भी सत्य निहित है, किन्तु वह गौण

सत्य है। आडबर करके उसको जीवनका मुख्य सत्य बना देनेसे वही हो जाता है एक प्रकारका असयम। उसका दड भी है। आत्मनिग्रहके उग्र दम्भसे आध्यात्मिकता क्षीण हो जाती है।" और तब आश्चर्य ही क्या जो हरेन्द्रको पराजित स्वरोमे कमलके सम्मुख स्वीकार करना पडता है, "आपके साथ तर्कमे जीतनेका उपाय नही है।" यही नही, अविनाश भी इस वातसे सहमत हैं।

कमलके अत्यधिक तर्कशील होनेका एक प्रधान कारण यह है कि उसका वार्तालाप सदैव बौद्धिक-स्तरपर रहता है। भावनाओके आवेगमे वह बह नही जाती। इसीलिए उन सारी वातोको जिन्हे हम प्राय स्वत सिद्ध माना करते हैं, कमल सदैव एक शकालुकी दृष्टिसे देखती है। वह प्रत्येक वातकी तह-तक पहुँचना चाहती है। मत और कार्य-पद्धतिके सबधमे विवेचन करती हुई वह राजेन्द्रसे कहती है, "मत और काम दोनो ही वाहरकी वस्तुएँ है राजेन, मन ही सत्य है।" यहाँ हमे कमलके तत्त्वतक पहुँचनेवाले स्वभावके दर्शन होते हैं। एक बात और है। अपने इन तत्त्वदर्शी सिद्धातोको वह यथासभव अत्यत सक्षेपमे—प्राय सूत्र शैलीमे व्यक्त करती है। "अँधेरेका उससे भी बडा एक और अपराध है अजित वाबू, अकेले जानेमे डर लगता है", "मेरे आँगनके पास जो फूल खिलते हैं, उनका जीवन बहुत कम है, उससे वह मसाला पीसनेका लोढा अधिक टिकाऊ है, अधिक दीर्घ स्थायी है, फूलको जो नही पहचानता उसके लिए वह पत्थरका लोढा ही बडा सत्य है", "पेडके पत्ते सूखकर झर जाते हैं, उनकी क्षति नये पत्ते भर देते है, यह तो हुआ झूठ, और वाहरकी सूखी लता मर जाने पर भी पेडके सर्वागसे चिपटकर, जकडकर उससे कसके लिपटी रहती है, वही हो गया सच ?"—इस प्रकार-के सक्षिप्त परन्तु अपीलिग वाक्योसे कमलका वार्तालाप सदैव युक्त रहता है। अतिम उदाहरणसे शरत् वाबूके भाव-चित्रो (Imageries) के कुशल चयनका आभास मिलता है। कहना न होगा कि इस प्रकारकी सूत्रात्मक शैलीके प्रयोगसे पात्रोके कथोपकथन कितने प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। यही आर्शु वाबूके शब्दोमे कमलकी 'वातोकी जादूगरी' है।

कमलकी बातचीतकी शैली नितात स्पष्ट एव प्रखर होती हुई भी अत्यन्त मिष्ट है। किसीके मनको चोट पहुँचानेके लिए वह तर्क नही करती। आशु बाबूका कहना है, "क्या ही मीठी बाते है उस लडकीकी,—केवल सौंदर्य ही नही ह।" यही नही, शिष्टता एव नम्रता भी उसके वार्तालापके अनिवार्य गुण है। इसी कारण उसका सत्यवादी होना और भी सराहनीय है। किसीकी झूठी प्रशसा करना वह नही जानती, परन्तु उसकी अप्रशसा भी अशिष्ट नही है। जो बात उसके मनमे है, वही मुखमे भी। अपनी माताकी कलक-कथा वर्णित करनेमे उसे किसी प्रकारकी लज्जाका अनुभव नही होता। स्वर्गीय पिताका स्मरण करती हुई वह कहती है, "मै तो कभी झूठ नही बोलती अजित बाबू। इस जीवनमे कभी किसी भी कारण झूठी चिंता, झूठा अभिमान, झूठी बातका आश्रय मै न लूँ, बाबूजी यही शिक्षा मुझे बार-बार दे गये है।" कमलके मनमे सत्यके लिए कितना अधिक आग्रह है, इसका आभास हमे उसके उपर्युक्त कथनसे मिलता है। इसके साथ-साथ कमल मात्र सत्यभाषी नही है, वह निरतर सत्यका आचरण भी करती है। उसके सबधमे अजितका कहना है, "शायद किसीको धोखा देनेका स्वभाव उनका नही है।" और तो और कमलसे सबध विच्छेद कर लेनेपर भी शिवनाथ उससे पाखडकी आशा नही करता। स्वय कमल भी हरेन्द्रसे कहती है, "मेरे काम भले हुए या बुरे, मेरा जीवन पवित्र है या कलुषित, इस विषय-मे आप चुप है, किन्तु वे तो गुप्त रूपसे न होकर आँखोके सामने सबकी उपेक्षा करके ही होते रहे है।" इस प्रकारसे कमलका व्यक्तित्व हमारे सम्मुख एक खुले पृष्ठके समान आ जाता हे, जो चाहे उसे पढे।

कमलके तार्किक रूपके पीछे अनिवार्यत रहनेवाला उसका विचारक रूप अत्यत महत्त्वपूर्ण है। आशु बाबूके शब्दोमे, उसने 'जो कुछ सीखा है, बिलकुल सशय छोडकर खूब अच्छी तरह सीखा है। उम्र भी तो अभी अधिक नही है, किन्तु अपने मनको मानो उसने इसी अवस्थामे पूर्णत उपलब्ध कर लिया है।' वस्तुत. कमलके व्यक्तित्वकी प्रमुख विशेषताएँ उसके विचारोमे है—ऐसे विचार जो प्राचीन रूढियो एव परपराओसे मुक्त होकर एक स्वस्थ

एव सबल समाजके निर्माणकी ओर दिशा-निर्देश करते हैं। जीवनकी वास्तविकताके हर पहलूको कमलने अपनी आँखो देखनेकी चेष्टा की है, इसीलिए उसका ज्ञान पौस्तकीय नही है, और इसीलिए वह विद्वज्जनोंके आप्त वाक्योको ज्यो-का-त्यो माननेके लिए प्रस्तुत नही है। उसके विचारोमे एक निश्चितता है, एक आत्मनिष्ठा हे, जिसमे वह दुराग्रही अथवा हठवादी नही वनती, वरन् सच्चे अर्थोमे एक द्रष्टा वनती है। अध्यापकीय ज्ञान उसे कम मिला है, चितन एव मननकी प्रवृत्ति उसमे अधिक है। उसका यह चितन एव मनन अपने मूलमे सृजनात्मक है, भले ही अपने वाह्यरूपमे वह विनाशात्मक जान पडे। ओर समाजके उन तत्वोका तो कमल विनाश ही चाहती है, जिनकी स्थितिसे निर्माणका कार्य अवरुद्ध हो गया है। कमलकी विचार-धाराके सवधमे, आशु वावूके रूपमे शरत् वावू चेतावनी देते हैं कि 'उसकी सव वाते सव समय समझमे भी नही आती, मानी भी नही जा सकती।' वस्तुत उनको समझनेके लिए वहुत सुलझे हुए मस्तिष्ककी आवश्यकता है।

अपने एकनिष्ठ प्रेम सवधी दृष्टिकोणको आशुवावूके सम्मुख उपस्थित करनेपर, उन्हे क्षुव्ध होते देखकर कमल ठीक ही कहती है, "वहुत दिनो-से दृढ मूल सस्कारमे आघात लगनेसे मनुष्य हठात् उसे सह नही सकता।" अपने सिद्धातोके सवधमे दूसरोकी प्रतिक्रियाके प्रति सहनशील रहना, सच्चे विचारकका प्रथम गुण है। इससे उसकी मनन-शक्तिकी गहराईका पता चलता हे। अपनी शक्तिपर विश्वास होनेके ही कारण कमल दूसरी सभ्यताओके अनुकरणमे लज्जाकी कोई वात नही देखती। इसी प्रकारसे भूल होनेपर उसे स्वय सुधार लेनेको भी वह अप-मानकर नही समझती। उसका मत है कि यदि कोई कार्य उचित लगता है तो उसे विना किसी भयसे त्रस्त हुए कर डालना चाहिए। और फिर यदि उसमे कोई भूल दिखाई दे तो तुरत ही उसका सशोधन भी कर डालना चाहिए। इस मत पर वह दृढ विश्वास रखती है, स्वय उसपर आचरण करती है, और दूसरोको भी उसीका उपदेश देती है। इसीलिए मनोरमा

और शिवनाथके सबंधमें, आशु बाबूकी धारणाओंके प्रतिकूल, उसे कुछ भी कुत्सित नही दिखाई देता। उपन्यासके अतिम भागमे अपनी विचार-धाराका सार तत्त्व-सा उपस्थित करती हुई वह कहती है, "आचार-अनुष्ठानको झूठा बनाकर मै उडा देना नही चाहती, मै तो केवल इसमे परिवर्त्तन करना चाहती हूँ। समयके धर्मानुसार आज जो अचल होते जा रहे है, उन्हीको मै चोट पहुँचाकर सचल कर देना चाहती हूँ।" यह मात्र बौद्धिकताकी भावनाओपर विजय नही है, वरन् बुद्धि और हृदयका सच्चा समन्वय है।

अपने सपूर्ण व्यक्तित्वमे क्रातिकारिणी होते हुए भी कमलका व्यावहारिक सयम अत्यत सराहनीय है। उसकी सहनशीलता—विचारगत एव कर्मगत, अपने आपमे श्रद्धेय है। अत्यत क्रोधी अक्षयके अनेक आक्षेपो एव आरोपो-का उत्तर वह हँसकर देती है। अक्षयके अतिरिक्त अन्य सारे विरोधियोके व्यग्य बाणोको भी वह शातिपूर्वक सहन करती है, मानो उनके द्वारा किये गये सारे मान-अपमानोसे वह परे है। जिस ऊँचाईपर वह प्रतिष्ठित है, वहाँतक इन तुच्छ व्यक्तियोकी पहुँच ही नही है। अपने विरुद्ध सामाजिक षडयत्रकी बात सुनकर वह आशु बाबूसे एक स्मित हास्यके साथ कहती है, "अर्थात् कुशाकुरके ऊपर वज्राघात! किन्तु समाज और लोकालयोसे बहिर्गत मुझ सदृश एक तुच्छ औरतके विरुद्ध षडयत्र किसलिए? मै तो किसी-के घर जाती नही।" इसीलिए उसके मनमे किसीके प्रति कोई विरुद्धताका भाव नही है। वस्तुत. वह दूसरोको इस योग्य समझती ही नही कि वे उसका किसी प्रकार अपमान कर सकते हैं।

और सबसे बढकर उसका सुकठोर धैर्य है। शिवनाथकी प्रवचना जान-कर 'चेहरेपर वेदनाका आभास नही फूटा और न तो अभियोगकी भाषा ही निकली।' नियतिका इतना बडा आघात उसे तनिक भी न डुला सका। वह यथावत् स्थिर बनी रही। जैसा हम जानते है, उसके इस अपार धैर्यके पीछे उसका जीवन-दर्शन है, जो क्षणके आनदको महत्ता देता है,

नही है,—यही बात मैं आपसे कहना चाहती थी, उससे यदि जातिकी विशिष्टता चली जाती है, तो भी।"

प्राचीनतामे अनावश्यक आस्था रखनेवाले व्यक्तियोके लिए कमलके उक्त सिद्धात नितात अनर्गल हो सकते है, परन्तु निरपेक्ष विचारकोकी दृष्टिमे उनका मूल्य उपेक्षणीय नही। कमलकी यह बात कितनी अधिक सच है कि 'लुप्त वस्तुओका पुनरुद्धार मात्र अच्छा ही होता है, इसका प्रमाण नही है। मोहके नशेमे बुरी वस्तुओंका भी पुनरुद्धार होते देखा जाता है। इतिहास इस बातका साक्षी हे कि इस प्रकारकी भूल एक बार नही, अनेक बार हमारे सुधारको-द्वारा हुई है।' अतीतके प्रति यह जड मोह मानवताके विकासके लिए कितना घातक हे, इसे सभी समाजशास्त्री जानते है। परन्तु इसी तथ्यको कमल अपनी शैलीमे कहती हे, उसे और भी प्रभावोत्पा-दक बनाकर। "वस्तु अतीत होती है कालके धर्मसे, किन्तु उसे अच्छा होना पडता है अपने गुणो से। केवल प्राचीन होनेसे ही वह पूजनीय नही हो जाती।" कमलका यह मतव्य जितना ही कठोर है, उतना ही सत्य भी। मात्र भाव-नाओके आवेगमे हम इस तथ्यको भुला नही सकते और इसीलिए उसकी उपेक्षा भी नही की जा सकती। वृद्ध एव अनुभवी आशुबाबू इसी बातको यो कहते है, "तुम लोग तो उसे जानते ही हो, जो कुछ प्राचीन है उससे उसको प्रबल घृणा है। हिला-डुला कर तोड डालना ही मानो उसका फैशन है। मन सम्मति प्रकट करना नही चाहता, चिर दिनका सस्कार भयके कारण काठ-सा हो जाता है, तो भी कोई बात ढूढनेसे नही मिलती, हार मान लेनी पडती है।" कहना न होगा कि यहाँ आशुबाबू कमलके चरित्रके अनेक अध्ये-ताओका प्रतिनिधित्व करते है।

अत्यत निर्धन अवस्थामे जीवन व्यतीत करती हुई भी कमल अपने आत्म-सम्मानकी सदैव रक्षा करती है। हरेन्द्रसे वह कहती है, "मै सचमुच ही बहुत गरीब हूँ, अपना भरण-पोषण करनेकी जितनी मुझमे शक्ति है, उससे अधिक कुछ नही किया जा सकता। पिताजी मुझे कुछ भी देकर नही जा सके है, किन्तु वे मुझे दूसरोके अनुग्रहसे मुक्ति पानेके लिए यह बीज

मत्र देकर गये है ।" और कमल अपने व्यावहारिक जीवनमे सदैव इस आदर्श-का निर्वाह करती है। अजित आशुबाबूको ठीक ही बताता है कि 'वह (रुपये को जरूरत) उनके (कमलके) आत्मसम्मानकी अपेक्षा बढकर नही भी हो सकती है।' यहाँ स्मरणीय यह है कि कमलका व्यक्तित्व आत्मसम्मानसे युक्त होने पर भी दर्प अथवा व्यर्थके अभिमानकी भावनासे रहित है। नीलिमाके शब्दोमे, 'यो तो लडकी बहुत अच्छी मालूम होती है, अहकार जरा भी नही है।' परन्तु फिर भी उसकी दृढता ऐसी है कि वह अपने अत्यधिक प्रिय शिवनाथसे भी दुबारा सबध नही जोडना चाहती।

कमल अनिवार्यत एक स्वावलवी महिला है, इसीलिए उसे आत्माभिमान शोभा भी देता है। अजितसे वह स्पष्ट कहती है, "कमल किसीकी सपत्ति नही है। वह केवल अपनी ही है, और किसीकी नही !" उसकी इस घोषणाका मूल्य तब और बढ जाता है, जब हम देखते है कि वह कितनी दरिद्र है, परन्तु इसमे कोई सदेह नही कि कमलकी यह दरिद्रता 'मानो महादेवजी की दरिद्रता है' जिसमे ऐश्वर्यके प्रति एक विचित्र उदासीनताका भाव है, और इन सबके पीछे उसके मनकी समृद्धता है। उसकी इस मनकी समृद्धताके ही कारण बडी-से-बडी असहायावस्था भी इस रमणीको लेशमात्र भी दुर्बल नही कर सकी है। अपनी विषम परिस्थितियो मे भी वह 'भीख नही माँगती—भीख देती है।' आशुबाबू, हरेन्द्र इत्यादि सभीको उसके साहसकी प्रशसा करनी पडती है। किसीके मतामतका मुँह देखते रहनेकी चिता उसके कर्त्तव्यमे बाधा नही डालती। नीलिमाके शब्दोमे, "कमलको देखते ही दिखाई पडता है कि वह स्वाधीनता अपनी पूर्णतासे, आत्माके अपने विस्तारसे स्वय ही आती है।" ऐसा जान पडता है मानो उसकी कर्मण्यता एव उसकी मानसिक स्वाधीनताने मिल कर ही उसके जीवनको इतना समृद्ध तथा इतना सतोषप्रद बना दिया है। अशाति अथवा असतोष-की ज्वाला उसके मनको कभी नही जलाती। बडे-बडे धनी व्यक्तियोके बीच भी वह कपडोकी सिलाई करके तथा एक समय खाना खा कर अपना जीवन व्यतीत करती है। व्यक्तियोसे सतुष्ट, समाजमे सतुष्ट, नियति तथा स्वयं

अपने आपसे सतुष्ट — यही है कमलके व्यक्तित्वका अपरिसीम वैभव। किसीका अनुग्रह वह स्वीकार नही करती, यहाँ तक कि आशुबाबूका भी नही।

अपने आपमे ही अत्यधिक विश्वास रखनेके कारण, कमल भगवान्के प्रचलित स्वरूपमे विश्वास नही रखती। अजितसे वह कहती है, "भगवान्को तो मै मानती नही, नही तो उनसे प्रार्थना करती कि दुनियाके सभी आघातोकी आडमे तुमको रख कर ही एकदिन मै मर सकूँ।" परन्तु यह एक विचित्र तथ्य है कि भगवान्का अस्तित्व न मानते हुए भी कमल एक ऐसी अज्ञात सत्तामे अवश्य विश्वास रखती है, जो मानव-जीवनके साथ सदैव खिलवाड किया करती है। दूसरे शब्दोमे हम इस अज्ञात शक्तिको नियति कह सकते है। अजितसे ही वह कहती है, "यही तो मनुष्यकी सबसे बडी भूल है। वह सोचता है मानो सब कुछ उसके ही हाथमे है। किन्तु कहाँसे कौन उसकी सारी व्यवस्था उलट-पुलट देता है, इसका पता किसीको नही चलता।" ऐसा जान पडता है कि यद्यपि भगवान्के परम्परागत रूढियोमे बँधे हुए स्वरूपको कमल नही मानती, फिर भी वह किसी एक ऐसी शक्तिका अस्तित्व अवश्य स्वीकार करती है जो मनुष्यके कर्मोकी नियामक है—शेक्सपियरके शब्दोमे, 'देयर इज ए डिविनिटी दैट शेप्स अवर ऐन्ड्स' इस प्रकार उसका 'भगवान्'—यदि हम उसे भगवान् सज्ञा दे सके—भावनाओसे निर्मित नही हुआ है, उसका अस्तित्व मनन और चितन पर आधारित है।

यहाँ तक तो हमने कमलके चरित्रकी व्याख्या स्वय उसीकी विचारधारा तथा आचरणको ध्यानमे रखते हुए की। अब हम बहुत सक्षेपमे उपन्यासके अन्य पात्र-पात्रियोसे उसका सबध दिखानेकी चेष्टा करेगे। एक प्रकारसे कमलका व्यक्तित्व 'शेष प्रश्न' का केन्द्र बिन्दु है, जिसके चारो ओर अन्य चरित्र घूमते है। कमल एव आशुबाबूके पारस्परिक सबधका अध्ययन हमारे लिए अत्यत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है, क्योंकि इस सबधमे अब दो मत नही है कि 'शेष प्रश्न' के आशु वैद्यमे स्वय शरत्बाबूका व्यक्तित्व उभरकर आया है। सच तो यह है कि सपूर्ण शरत्-साहित्यमे 'शेष प्रश्न' का सर्वाधिक महत्त्व-

पूर्ण स्थान होनेका एक प्रधान कारण यह भी है। इसीलिए कमलके बारेमें आशुबाबूके मत विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य हैं।

इसमे कोई सदेह नही कि बहुत-से स्थानोपर घोर मत-विरोध होनेपर भी आशुबाबू कमलके प्रशसक है। प्रथम भेटके समयसे ही वे उससे प्रभावित हो जाते है, तथा अपने वर्णनोमे वे उसे 'लक्ष्मीकी मूर्ति' कहकर अभिहित करते है। इधर कमल भी इस वृद्ध तथा स्नेहशील व्यक्तिको प्यार करने लगती है। वह उनकी लडकी होनेकी कामना प्रकट करती है। प्रत्युत्तरमे आशुबाबू उसे 'बेटी' कह कर पुकारते है और उससे आग्रह करते है कि वह उन्हे चाचाजी कह कर सबोधित किया करे। वे कमलसे कहते है, "मेरी मणिकी अपेक्षा मानो तुम किसी अश मे भी छोटी नही हो बेटी।" कमल और आशुबाबूके इस कोमल सबधमे केवल एक स्थान पर व्याघात उत्पन्न होता है, और वह तब जब वह उन्हे ऋण लेनेके लिए अपना जामिन बनाना चाहती है। आशुबाबू इस बातपर कमलकी बहुत भर्त्सना करते है, यद्यपि शीघ्र ही उनका यह क्रोध शात हो जाता है। इसके बाद कमल आशुबाबूसे अपना सबध पूर्ववत् बनाये रहने पर भी उनसे किसी भी प्रकारकी सहायता नही लेती। वह उनसे कहती है, "आप मुझसे स्नेह करते है, किन्तु कहीपर भी हम लोगोमे मेल नही है।" इस वाक्यकी ध्वनिसे स्पष्टत ज्ञात होता है कि यह स्वय शरत्बाबूको सबोधित है। बहुत कुछ इसी प्रकारकी भावनाको व्यक्त करती हुई कमल उपन्यासके अतिम भागमे फिर कहती है, "किन्तु आपको तो मै किसी तरफसे भी सान्त्वना नही दे सकती। शरीर और मनसे जब आप अत्यत पीडित है, सान्त्वना देना ही जब कि अधिक आवश्यक काम है, तब भीतरसे मानो मै केवल चोट ही पहुँचाती रहती हूँ। तो भी किसीसे भी आपको मै कम प्यार नही करती चाचाजी!" इस प्रकार हम देखते है कि कमल और आशुबाबूका पारस्परिक सबध बहुत कुछ विचित्र है। उनके मन मिलते हुए भी, मत एक दूसरे से नही मिलते; यद्यपि अपनी विस्तृत सहानुभूतिके कारण आशुबाबू कमलकी कुछ युक्तियोको सत्य भी मानते है। अततोगत्वा कुछ हिचकिचाते हुए आशुबाबू (शरत्बाबू) को अपना

निर्णय देना ही पडता है। वे कहते हैं, 'तर्कमे जो कुछ भी क्यो न कहूँ, तुम्हारी बहुत-सी बातोको ही मैं मानता हूँ।'

कमल और शिवनाथका सबध बहुत दिनो तक स्थायी नही रह पाता। इस सबधके मूलमे क्षणिक आनदको महत्त्व देनेवाला कमलका जीवन-दर्शन है। उन दोनोका विवाह जितनी आसानीसे होता है, उतनी ही आसानीसे विच्छेद भी। एकबार पतिसे सबध टूट जानेपर फिर कमल उसे दुबारा जोडनेको तैयार नही होती। शिवनाथके मुँहसे अपना प्रिय नाम शिवानी उसे अच्छा नही लगता, परतु दूसरी ओर, शिवनाथसे अत्यधिक वचना पानेपर भी वह उनका तिरस्कार नही करती। उसका स्पष्ट मत है, "शिवनाथ गुणी मनुष्य है, उनके विरुद्ध मेरी तरफसे कोई बडी शिकायत नही है। शिकायत करनेसे भला क्या लाभ हो सकता है? हृदयकी अदालतमे तो एकतरफा विचार ही एकमात्र विचार है, उसके लिए तो कोई अपील नही मिलती।"

कमलके प्रति अजितके मनमे कई प्रकारकी भावनाएँ रही है। प्रारभमे वह कमलसे घृणा करता है; फिर कुछ परिचय बढनेके उपरात वह उसका प्रशंसक बन जाता है। इसी बीच कमलके जन्म और वशका वर्णन सुनकर एक बार उसके मनमे फिर इस विचित्र रमणीके प्रति जुगुप्साका भाव जाग्रत होता है, परतु अततोगत्वा वह कमलके जादूसे बच नही पाता, और फलस्वरूप उसके सम्मुख विवाहका प्रस्ताव रखता है। स्वय कमल भी अजितके प्रति कम आकर्षित नही है, वह मन ही मन उसे प्यार भी करती है। घर आनेके लिए कहकर वह उसकी अत्यत व्याकुलताके साथ प्रतीक्षा करती है। प्रतीकात्मक शैलीको अपनाते हुए वह कहती है, "ठीक जगह पर पहुँचा देनेका दायित्व आपका है—मेरा कर्त्तव्य है केवल आपपर विश्वास किये रहना।" वस्तुत. वह अजितके हृदयकी सरलतापर मुग्ध है, परन्तु इतनेपर भी वह मनोवेगोके आवेशमे आकर अपने आपको अजितके प्रति एकदम समर्पित नही कर देती। और अतमे जब वह बिना विवाह किये ही अजितके साथ रहना चाहती है तो वह केवल उसकी दुर्बलताके ही कारण। वह अजितको आश्वासन देती है, "ज़ोरकी ज़रूरत नही। बल्कि तुम अपनी दुर्बलतासे ही मुझे बाँध रखना;

तुम जैसे मनुष्यको ससारमे यो ही वहाकर चली जाऊँगी, इतनी निष्ठुर मै नही हूँ।" और इसीलिए कई व्यक्तियोके प्रणय-सूत्रोको तोडकर वह अजितको ही स्वीकार करती है।

कमलके अजेय रूप-यौवन तथा असाधारण बुद्धिमत्ताको यदि कही झुकना पडा है तो राजेनके सम्मुख। इस नितात दृढ तथा लापरवाह लडकेको वह घनिष्टताका दान देना चाहती है, उससे आग्रह करती है कि वह उसे मात्र कमल कह कर पुकारे। किन्तु राजेन उसके इस आग्रहको नही मानता। वह उसकी 'अक्षय मित्रता' का प्रस्ताव भी अस्वीकृत कर देता है। एक बार कमल फिर उसे सावधान करती है, "ऐसी बात नही कहनी चाहिए। मित्रता नामकी चीज ससारमे दुर्लभ है, और मेरी मित्रता तो उससे भी दुर्लभ है। जिसको पहचानते नही हो, उसकी अश्रद्धा करके अपनेको छोटा मत बनाओ।" परन्तु इससे भी राजेनका मन विचलित नही होता, उसका मत पूर्ववत् दृढ रहता है। वह स्पष्ट बता देता है कि कमलकी मित्रताका उसके लिए कोई मूल्य नही है, कोई उपयोग नही है। और तव कमलका मुँह लाल हो उठा। "किसीने मानो उसे चाबुक मारकर अपमानित कर दिया। वह अतिशिक्षिता, अति सुन्दरी और प्रखर बुद्धिशालिनी है। वह पुरुषकी कामनाका धन है, यही थी उसकी धारणा, उसका दृप्त तेज अपराजेय है, यही था उसका अकपट विश्वास। ससारमे नारियोने उससे घृणा की है, पुरुषोने आतककी आगसे भस्म कर देना चाहा है। अवहेलनाका ढोग न किया हो ऐसी बात भी नही है, किन्तु यह तो वही बात नही है। आज इस मनुष्यके सामने मानो वह तुच्छताका अनुभव करनेके कारण मिट्टीमे मिल गई। शिवनाथने उसे धोखा दिया है, किन्तु इस तरह दीनताका चीर उसके शरीरमे नही लपेट दिया।" इस लबे उद्धरणमे उपन्यासकारने कमलके क्षुब्ध तथा अपमानित रूप और यौवनकी प्रतिक्रियाका वर्णन किया है। कमलके व्यक्तित्वका तेज राजेनके व्यक्तित्वकी प्रखरताके सम्मुख फीका पड गया है। यहाँ प्रतिदान कमल नही देती, वरन् राजेन देता है। रुग्ण शिवनाथकी परिचर्या करनेके समय वह कमलसे कहता है, "अन्यान्य

स्त्रियोकी तरह जैसा मैने आपको सोचा था वैसी तो आप नही है। आपका भरोसा किया जा सकता है।" कहना न होगा कि कमलके तेजस्वी व्यक्तित्वके लिए राजेनकी दयाका यह दान कितना अपमानजनक है। अपने अपरिमित सौंदर्यके प्रति इस लापरवाह लडकेकी नितात उदासीनता, तथा उसके प्यार तथा उसकी चिंताके प्रति उसका तटस्थ भाव, उसके मनकी सारी वासनाओको सयमित कर देता है, यद्यपि अतृप्ति तथा तज्जन्य प्रतिशोधकी चिनगारी उसके हृदयके एक कोनेमे अवस्थित रहती है। अत्यत दयनीय भावसे उसे शिवनाथके सम्मुख स्वीकार करना पडता है कि यदि राजेन उसके साथ रह जाय तो यह उसके लिए (कमलके लिए) सौभाग्यकी बात होगी। परतु कमलकी यह आकाक्षा एकदम अतृप्त ही रहती है। और तज्जन्य उसके मनका अवश तथा दुर्बल प्रतिशोध उस समय प्रकट होता है जब उपन्यासके अतमे राजेनकी दुखद मृत्युका समाचार हरेन्द्र पढकर सबको सुनाता है। उस समय 'उसकी आँखोसे अग्निस्फुलिंग-से निकलने लगे, बोली—दु ख किस बातका ? वह वैकुण्ठमे चला गया है। फिर हरेन्द्रसे उसने कहा—रोइए मत हरेन्द्र बाबू, अज्ञानकी बलि सदासे इसी तरह अदा होती है।' व्यग (Irony) की ध्वनि लिये हुए कमलके इन शब्दोमे राजेनकी मृत्यु-द्वारा उत्पन्न एक अजब-सा सतोषका भाव मिलता है। अपनी अर्पित घनिष्टताका तिरस्कार साधारण-से-साधारण रमणी नही सह सकती, फिर कमल-जसे तेजस्वी व्यक्तित्वके लिए तो यह अपमान नितात असह्य है।

अपने स्वर्गवासी विदेशी पिताके प्रति कमलका मन सदैव आदर तथा श्रद्धासे भरा रहता है। अजितके सम्मुख उनकी चर्चा करती हुई वह कहती है, "मेरे पिताजी भी किसी बातमे कम नही थे । वे भी ऐसे ही धीर, ऐसे ही शात मनुष्य थे ..चरित्रमे, पाण्डित्यमे, सचाईमें—ऐसा मनुष्य मैंने बहुत कम देखा है अजित बाबू इस जीवनमे कभी किसी भी कारण झूठी चिन्ता, झूठा अभिमान, झूठी बातका आश्रय मै न लूं, बाबूजी यही शिक्षा मुझे बार-बार दे गये है।" वस्तुतः अपने सपर्कमे आनेवाले प्रत्येक चरित्रका विश्लेपण वह अत्यंत सावधानीके साथ करती है। किसीकी भी झूठी निंदा

-या झूठी प्रशसा उसे प्रिय नही। बौद्धिकताके ऊँचे स्तरसे वह नीचे बहुत कम उतरती है, इसीलिए अत्यधिक राग तथा आवेशके क्षणोमे भी वह स्थिर तथा सतुलित रह पाती है।

सच तो यह है कि कमलके चरित्रका खड-खड विश्लेपण करके, उसका अध्ययन करना उपन्यासकारकी सहृदयताके प्रति अन्याय करना है। स्वय शरत् बाबूने स्थान-स्थान पर स्वय अथवा अपने अन्य पात्रोके माध्यमसे उसके चरित्रके जो वर्णन किये है, वे किसी भी आलोचनासे अधिक सच्चे और उप-युक्त है। कमलके चरित्रका परिचय जितना इन वर्णनोसे मिल सकता है, उतना शायद समीक्षककी दृष्टि भी नही दे सकती। और क्योकि 'शेष प्रश्न' की कमलका व्यक्तित्व उपन्यासकारके निकट अत्यत ही प्रिय रहा है, अतएव तत्सबधी वर्णनोकी भी उपन्यासमे कमी नही है। आशु बाबू सोचते है कि 'कमलको उन्होने जितना ही देखा है, उतना ही उनका आश्चर्य और श्रद्धा बढ गई है, लोकदृष्टिमे वह हेय है, निंदित है, शिष्ट-समाजसे परित्यक्त है, सभाके लिए उसके पास निमत्रण नही आते, फिर भी, इस लडकीकी नीरव अवज्ञाका ही उन्हे सबसे अधिक भय रहता है, इसीके सामने उनका सकोच नही मिटता।' और यह प्रतिक्रिया मात्र आशु बाबूकी न होकर बहुत-से रसज्ञ पाठकोकी भी है। 'शेप प्रश्न' के अन्य प्रमुख पात्र भी कमलके चरित्र-की महत्ताका अनुभव करते है। हरेन्द्रके शब्दोमे, 'उनके (कमलके) अदर एक ऐसा निर्द्वन्द्व सयम, नीरव मिताचार और नि शक तितिक्षा है कि देखनेसे आश्चर्य होता है।' वह आगे भी कहता है, 'उसके कथनमे न मालूम कसी एक सुनिश्चित दृढताकी दीप्ति छूटकर बाहर निकलती है कि मालूम होता है मानो उसने जीवनका अर्थ खोज लिया है। शिक्षा-द्वारा नही, अनुभव उप-लब्धिसे नही, मानो आँखोसे अर्थको सीधे प्रत्यक्ष देख रही हो।' यही नही, इसके प्रत्युत्तरमे आशु बाबू तो यहाँतक कहते है कि 'वह यदि मिथ्या भी समझ चुकी हो, तो उस मिथ्याको भी गौरव प्राप्त है।' बहुत-से पाठकोको कमलके चरित्रके इन मूल्याकनोमे अतिशयोक्तिकी गध आ सकती है, परन्तु जिस

प्रसग और वातावरणमे ये वाक्य कहे गये है, उनको ध्यानमे रखनेपर हम इनका मूल्य भली भाँति परख सकते है।

एक लबे-से कथोपकथनमे कमलके चरित्रकी व्याख्या करते हुए आशु बाबू कहते है, 'जीवनका अर्थ ही उसके लिए स्वतत्र है,—हम लोगोके साथ उसका कोई भी मेल नही है। वह भाग्यको नही मानती, अतीतकी स्मृति उसके सम्मुखका रास्ता नही रोकती, उसका अनागत भी वही है—जो आज तक आया नही है। इसीलिए उसकी आशा भी जैसी दुर्निवार है, आनद भी उतना ही अजेय है। किसी दूसरेने उसके जीवनको धोखा दिया है, इस कारण वह अपने जीवनको धोखा देनेके लिए किसी तरह भी तैयार नही है।' आशु बाबूके इन दो-तीन वाक्योमे एक प्रकारसे कमलके व्यक्तित्वके प्रायः सभी मूल तत्वोका उल्लेख हो गया है। इतने गहन चरित्रकी, इतने कम शब्दोमे, इतनी सुन्दर टीका शरत् बाबू-जैसे मनीषी-द्वारा ही सभव हो सकती थी। इस सबधमे नीलिमाका अध्ययन भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। उसके अनुसार 'वह (कमल) मानो ठीक नदीकी मछलीकी-सी है। पानीमे भीगने न भीगनेका प्रश्न ही नही उठता। खाने-पहिननेकी चिता नही, शासन करने-वाला अभिभावक नही, आँखे लाल करनेवाला समाज नही—परम स्वतत्र है।' इन वाक्योमें उसके उन्मुक्त व्यक्तित्वका सुन्दर वर्णन हुआ है। किन्तु इन सब निर्णयोके बावजूद कमलके चरित्रका मूल सूत्र (Key Note) किसीने पाया है तो हरेन्द्रने। वह कहता है, 'कमलकी आकृति प्राच्यकी है किन्तु प्रकृति प्रतीच्य की।' कमलके व्यक्तित्वका वह विरोधाभास ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि यह सच है कि हरेन्द्रके इस मतको शब्दश ग्रहण करनेपर कमलके चरित्राध्ययनके प्रति अन्याय हो सकता है, फिर भी यह बात सन्देहके परे है कि कमलके व्यक्तित्वकी मूल सवेदना इस एक वाक्यसे भली भाँति प्रकट हो जाती है।

स्वय उपन्यासकारके एक उद्धरणको प्रस्तुत करके हम इस प्रसगको समाप्त करेगे। अजित और कमलको बुलाया गया है आशु बाबूको विदा देनेके लिए आयोजित समारोहमे। हरेन्द्रके घरसे सभी अतिथि एकत्र हो

चुके है, और तभी पहुँचती है कमल। उस समय उसके व्यक्तित्वका अत्यत मार्मिक एव स्पष्ट अकन करते हुए उपन्यासकार कहता है, 'वह मानो वर्षा-कालकी वन्य-लता है। दूसरोकी आवश्यकताके लिए नही, वरन् अपनी ही आवश्यकताके लिए आत्मरक्षाका सम्पूर्ण सचय लेकर मानो मिट्टी फोडकर ऊपर सिर उठाती हुई आ पहुँची है। पारिपार्श्विक विरुद्धताका भय भी नही है, चिंता भी नही है—मानो काँटोका घेरा बना कर उसकी रक्षा करने-का प्रश्न ही ज्यादती है।' ऊपर उद्धृत नीलिमाके वाक्योकी ही भावनाको ये वाक्य भी व्यक्त करते हैं। परन्तु इनमें प्रयुक्त भाव-चित्र (Image) पिछले भाव-चित्रकी अपेक्षा अधिक सशक्त है।

जैसा कमलके उपर्युक्त गुरु-गभीर चरित्र-विश्लेषणसे स्पष्ट हो गया होगा, शरत् बाबूके प्राय समस्त नारी पात्रोमे उसका व्यक्तित्व ही सर्वाधिक जटिल है। 'शेप प्रश्न' की रचना उपन्यासकारके जीवनके उत्तरार्द्धमें हुई है। अत यह स्वाभाविक ही है कि उसके सवेदनशील मनको तव तक नारी-जीवन सबधी ऐसी वहुत-सी अनुभूतियाँ प्राप्त हुई हो जिनके परिणाम-स्वरूप उसकी नारी-सबधी पूर्व-भावनामे पर्याप्त अतर आया हो, अथवा उसका एक निश्चितद शामे विकास हुआ हो। जो भी हो, उसके रचना-कालके पूर्वार्द्धमे निर्मित विराजबहू जैसे नारी-चरित्रोमे जो सरलता थी, वह उसके उत्तरार्द्धके चरित्रोमे नही रही। 'शेप प्रश्न' की कमलमे आकर तो जटिलता इतनी सघन हो गई है कि स्वय उपन्यासकार भी कभी-कभी उससे परेशान हो जाता है। और यह विकासका स्वाभाविक क्रम भी है।

कमलके सपर्कमे आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको उसके आचरणोको देखकर आश्चर्य सर्वाधिक होता है। अजितका कहना है 'आपको देखकर मुझे शुरूसे ही ऐसा आश्चर्य हुआ कि वर्णन नही किया जा सकता।' अन्यत्र भी कम-से-कम तीन स्थलोपर वह कहता है 'कमल, तुमको समझ लेना कठिन है।' कमलके 'असाधारण व्यक्तित्वका' अनुभव उसके अन्य मित्रोको भी होता है। और तो और स्वय आशु बाबू (शरत् बाबू) को भी कई बार स्वीकार करना पडता है, "तुमको तो मै समझ ही न सका कमल।" इसके अतिरिक्त अपने

विकसित होते हुए व्यक्तित्वको भी कमल नितात स्वाभाविक तथा प्राकृतिक समझती है। इसीलिए शिवनाथसे सबध-विच्छेद उसके निकट कोई बहुत महत्त्वपूर्ण एव असाधारण घटना नही है। अपने सतुलित मन-द्वारा निर्दिष्ट उसका जीवन-क्रम कभी भी उसके लिए असतोपका विपय नही बनता। तभी तो 'इस लडकीको बाहरसे देखनेसे जैसा आश्चर्य होता है, भीतरसे देखनेपर भी वैसा ही अवाक् हो जाना पडता है।' इस 'आश्चर्यजनक लडकी' के सभी आचरणोसे क्षुब्ध होनेपर भी, उससे अप्रभावित कोई नही है। अपनी जटिलताके सबधमे कमल स्वय भी सजग है, और वह यह मानती है कि 'स्त्रियाँ पहेली पसन्द करती हैं—उनका स्वभाव है।'

कमलके व्यक्तित्वकी प्रभविष्णुता बहुत आसानीसे एक स्वतत्र निबध-का विपय हो सकता है। फिर भी इस सबधमे यहाँ सक्षेपमे कुछ कहना अप्रा-सगिक न होगा। जैसा हम पहले भी कह चुके है, कमलके आचरणोसे असह-मति प्रकट की जा सकती है, परन्तु उनका तिरस्कार नही किया जा सकता। पहली बार उसके घर जाकर उसके कठोर व्यावहारिक सयमको देखकर अजितका मन उसके लिए श्रद्धासे भर उठता है। उच्छ्वसित आवेगसे भर कर वह कहता है, अपनेको बडा समझ कर जो लोग अपमानसे आपको दूर रखना चाहते हैं, जो लोग अकारण ही निदा करते फिरते है, वे आपका पैर छूनेके भी योग्य नही हैं। ससारमे देवीका आसन यदि किसीके लिए हो तो वह आपके ही लिए है।' कमलका सबसे अधिक और तीखा विरोध करनेवाला व्यक्ति अक्षय है। अपनी कटूक्तियो एव मर्मघातक व्यगोसे वह उसका हृदय छेद देना चाहता है। परन्तु अततोगत्वा उसके मनमे भी परि-वर्त्तन होता है। उपन्यासके अतिम अध्यायमे जब सारे पात्र-पात्री अतिम बार एक दूसरेसे विदा लेते हैं तो कमलके जानेकी सबसे अधिक व्यथा कदाचित् अक्षयको ही होती है। वह कमलके पास पहुँच कर अपने सारे पिछले अपराधोको स्वीकार करता है और उनके लिए क्षमाप्रार्थी होता है। कमलकी प्रभविष्णुताकी मापके लिए इससे बढ़ कर दूसरा उदाहरण नही दिया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते है कि 'शेप प्रश्न' मे अकित कमलका चरित्र बहुत जटिल एव असाधारण है। उसका अध्ययन करनेपर हमारे मनमे बहुत-सी समस्याएँ उठ खडी होती है। कम-से-कम तीन समस्याएँ हमारे सम्मुख बहुत प्रमुख रूपसे आती है—

(१) प्राचीन परम्पराओके प्रति अत्यधिक विद्रोहशील होनेपर भी कमलका चरित्र प्रगतिशील कहा जा सकता है अथवा नही ?

(२) प्रचलित मानदडोके आधारपर कमलके चरित्रको नैतिक माना जा सकता है अथवा नही ?

(३) जीवनमे सुख और समृद्धिको प्रधानता देनेवाले दृष्टिकोणको अपनानेपर भी क्या कमलको हम एक सुखवादी (Hedonist) मानते है ?

यह कहने की आवश्यकता नही कि उपर्युक्त प्रश्नोपर विचार-विमर्श करनेका अर्थ होता है प्राय उतने ही पृष्ठ और लिखना जितने कि कमलके चरित्रकी व्याख्या करते हुए लिखे जा चुके है। अतएव इस स्थलपर हम बहुत सक्षेपमे इन तीनो समस्याओपर विचार करनेका प्रयत्न करेगे।

जहाँ तक पहले प्रश्नका सबध है, हम नि.सकोच रूपसे कह सकते है कि अपने विचारो ओर आचरणोके समन्वयमे कमलका चरित्र हमारे युगकी आवश्यकताओको ध्यानमे रखते हुए, पर्याप्तरूपसे प्रगतिशील कहा जा सकता है। अतीतकी अनावश्यक परम्पराओका विरोध, जीवनके प्रति एक समृद्ध परन्तु स्वच्छ दृष्टिकोण, सामाजिक अधविश्वासोमे गहरी अनास्था, बाह्य आडबरोके प्रति तीखा विद्रोह, नारीपर अत्याचार करनेवाली समस्त पुरुप जातिके प्रति आक्रोश, मृत्यु-प्रेमका निरादर एव जीनेकी अदम्य तथा प्रबल आकाक्षा, जातिगत एव साम्प्रदायिक भेद-भावनाका तिरस्कार, मानवता-प्रेम, मनुष्यकी महत्तामे विश्वास, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे अपना एक सुचिंतित मत, व्यावहारिक सयम तथा धैर्य, तथा आत्मसम्मानकी दृढ भावना—कमलके चरित्रकी ये सारी विशेपताएँ उसके ईमानदार और प्रगतिशील व्यक्तित्वकी परिचायक है। बहुत सभव है कि अनेक समाज-शास्त्रियोको कमलके चरित्रमे कुछ दुर्बलताएँ भी दिखाई दे, और यह भी

सभव है कि बहुत-से विचारक उसके दृष्टिकोणसे असहमत भी हो, परन्तु यह माननेसे कोई इनकार नही कर सकता कि कमलका चरित्र प्रतिक्रियावादी नही है, स्थिर भी नही है, वरन् निश्चित रूपसे गत्यात्मक (Dynamic) है। इसके अतिरिक्त प्राय सभी समाज-विज्ञानी यह भी मानेगे कि उसके चरित्रकी यह गति अततोगत्वा व्यक्ति तथा समाजके लिए कल्याणप्रद एव शुभ ही सिद्ध होगी। उपन्यासके एकदम अतमे कमल आशु बाबूसे कहती है, "जिस दु खसे आप डर रहे हैं चाचाजी, उसीमे-से पुन. उसकी अपेक्षा भी बडा आदर्श उत्पन्न होगा। और उसका कर्म भी जिस दिन समाप्त हो जायेगा, उस दिन उसके मृत शरीरके सारमे-से उसकी अपेक्षा भी महान् आदर्शकी सृष्टि होगी। इसी प्रकार ससारमे आजका शुभ कलके शुभतरके चरणोमे आत्मविसर्जन करके अपना ऋण चुकाता रहता है। यही तो मनुष्यकी मुक्तिका मार्ग है।" हम कह सकते हैं कि सहारके बीचसे कमलका यह अदम्य उत्साह तथा आशाका स्वर उसकी प्रगतिशीलताका सबसे बडा प्रमाण है।

कमलके व्यक्तित्वकी नैतिक मान्यताओको लेकर शरत्-साहित्यके पाठको एव समीक्षकोमे काफी मत-भेद रहा है। अधिकाश व्यक्तियोका विचार है कि प्रचलित मानदडोके आधारपर कमलके चरित्रको नैतिक नही माना जा सकता। वे सोचते है, 'कमलके पिता युरोपीय थे, माता कुलटा थी—उसकी शिराओके रक्तमे व्यभिचार प्रवाहित हो रहा है।' निश्चय ही एक ऐसी वश-परम्पराके व्यक्तिके लिए हमारे समाजमे साधारणत कोई आदरपूर्ण स्थान नही। और इसके अतिरिक्त विवाह तथा प्रेमके सबधमें कमलके सिद्धात उसे भारतीय हिन्दू समाजमे एक अत्यत निम्न कोटिकी स्त्री ठहराते है, परतु यदि हम उसकी उक्तियो एव आचरणोकी तुलना करके, उसके जीवन-दर्शनका कुछ अधिक गहराईके साथ परीक्षण करे तो हम देखेगे कि उपर्युक्त मत बहुत कुछ असत्य है। वस्तुत कमल मानव-जीवनमे सयमका तिरस्कार नही करती, वरन् सयमके नामपर मिथ्या एव अस्वाभाविक बधनोको वह अस्वीकार करती है। इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि अनु-

पम सौदर्य एव प्रतिभाकी स्वामिनी होनेपर भी, हद दर्जेकी निर्धनतामे वह वेश्या-वृत्ति नही अपना लेती, वरन् किसी प्रकार सिलाई आदि करके अपना जीवन निर्वाह करती है। सुसस्कृत व्यक्तियोके प्रेमकी व्याख्या यदि कमल इस प्रकार करती है, 'शिवनाथ गुणवान् हैं, शिल्पकार हैं—शिवनाथ कवि हैं। चिरस्थायी प्रेम इन लोगोके मार्गमे बाधक है स्त्रियाँ तो केवल उपलब्ध मात्र हैं, नही तो वे लोग प्यार करते हैं केवल अपने आपको। अपने मनको दो भागोमें बाँटकर उनकी दो दिनकी लीला चलती हैं' तो इसमें उसका दृष्टिकोण अनैतिक जरा भी नही है, मनोवैज्ञानिक अवश्य है। इसी प्रकार मानवीय प्रणयकी अस्थिरताको वह मनोविज्ञानके उस सिद्धातके आधारपर सिद्ध करना चाहती है, जिसके अनुसार किसी भी वस्तु पर लगातार आठ सेकडसे अधिक ध्यान नही लगाया जा सकता। पुरुष और नारीके पारस्परिक सबधकी चर्चा करती हुई, अत्यत व्यगात्मक एव तीखी शैलीमे वह कहती है, "पेडके पत्ते सूखकर झर जाते हैं, उनकी क्षति नये पत्ते भर देते हैं, यह तो हुआ झूठ। और बाहरकी सूखी लता मर जानेपर भी पेडके सर्वाङ्गसे चिपक कर, जकड कर उससे कसके लिपटी रहती है, वही हो गया सच?" इस प्रकारके मानव-सत्योको विश्वासके साथ अभिव्यक्त करने और तदनुसार आचरण करनेको यदि अनैतिक माना जाये तो भले ही कमलका चरित्र अनैतिक ठहराया जा सकता है, अन्यथा उसका व्यक्तित्व उच्च स्तरकी मान्यताओसे ही अनुप्राणित जान पडता है।

तीसरी और अतिम समस्या है कमलके आनदवादी सिद्धातकी। प्राय लोग कमलको उन मतोका अनुयायी सिद्ध करना चाहते है, जो पश्चिममे कभी हेडनिज्म तथा एपीक्यूरनिज्मके नामसे प्रचलित थे। इसमे कोई सदेह नही कि 'आनद के क्षण' का महत्त्व स्वीकार करनेवाली कमलकी विचारधारा बहुत कुछ उपर्युक्त दोनो सप्रदायोके मूल सिद्धातोसे मिलती है। वह जीवनको बहुत समृद्धरूपमे देखना चाहती है, क्षणिक आनदका भी आदर करना चाहती है। योग आदि, सयमके बाह्य आचरणोका वह तिरस्कार करती है, "योग किसे कहते है मै नही जानती, किन्तु वह

यदि निर्जन स्थानमे बैठकर केवल आत्मविश्लेषण और आत्मचिंता ही हो तो यही बात मै जोरके साथ कहूँगी कि इन दो सिंह-द्वारोसे ससारमे जितने प्रेम, जितने मोहने भीतर प्रवेश किया है, उतना और कहींसे भी नही। वे दोनो अज्ञानके ही साथी है।" परतु इन सबके बावजूद कमलके चरित्रको हम नितात सुखवादी या क्षणिक आनदवादी नही ठहरा सकते। यद्यपि यह सच है कि अपने विचारोकी अभिव्यक्तिमे कमलने स्थान-स्थानपर क्षणके आनद-की महत्ता स्वीकार की है, यही नहीं कमलने अपने इस सिद्धातका यथासभव प्रसार भी किया है, परन्तु ऐसा करनेमे कमलका दृष्टिकोण सामान्य मानव-जीवनको अधिकाधिक समृद्ध बनानेका ही है। अत्यत अभावोमे ही व्यतीत होनेवाले स्वय अपने जीवनको उसने कभी वैभव-विलासपूर्ण बनानेकी चेष्टा नही की, यद्यपि अपने असीम रूप और सौंदर्यके बल पर वह ऐसा बहुत आसानीके साथ कर सकती थी। दिनमे केवल एकबार अत्यत साधारण भोजन, आधुनिक सुविधाओसे एकदम विहीन गृह-व्यवस्था और इसी प्रकारकी अन्य व्यावहारिक सयम तथा कृच्छ्र साधना कमलके तमाम सुख-वादी (Hedonist) विश्वासोके बावजूद स्वय उसे सुखवादी नही ठहराते।

कमलके चरित्रको उसकी ऊँची-नीची सभी भाव-भूमियोमे अकित करनेके पश्चात् उपन्यासके अतिम भागमे शरत् बाबू आशु बाबूके रूपमे उसके सबधमे अपना निर्णय देते है। इस 'अभारतीय' रमणीके प्रति जितना अधिक उनका स्नेह रहा है, प्राय उससे भी अधिक उनका मत-विरोध रहा है। हरेन्द्रके घर होने वाली विदा-गोष्ठीमे आशु बाबू कहते है, "तर्कमे जो कुछ भी क्यो न कहूँ कमल, तुम्हारी बहुत-सी बातोको ही मै मानता हूँ। जिसे मै कर नही सकता उसकी हृदयसे अवज्ञा भी नही करता।" इससे स्पष्ट जान पडता है कि कमलको लेकर स्वय शरत् बाबूके हृदयमे मान्यताओका एक बडा सघर्ष रहा है। उसका चरित्र उन अमर चरित्रोकी कोटिमे रखा जा सकता है, जो एकबार सृजन किये जानेपर स्वयं कथा-कारके नियत्रणके बाहर चले गये है। कमलका व्यक्तित्व एक प्रकारसे शरत् बाबूके लिए भी रहस्यमय बन कर रह गया है, उपन्यासके अततक

वे स्वय भी उसे पूरा-पूरा नही समझ सके है। कमलके सिद्धातोसे विरोध रखनेपर भी उनकी अवहेलना नही की जा सकती, यह वे अवश्य समझ गये थे। स्वय उपन्यासकार और उसके एक पात्रमे इतने उच्च स्तरके बौद्धिक वाद-विवाद हमे कदाचित् शरत् के 'शेष प्रश्न' मे ही मिलते है।

'शेष प्रश्न' की कमल और भगवती बाबूके प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' की नायिका चित्रलेखामे बहुत कुछ चारित्रिक समानताएँ है। दोनोका बौद्धिक स्तर बहुत उच्च कोटिका है, जीवनकी प्रत्येक समस्याके प्रति उन दोनोका अपना सुचिंतित मत है। ज्ञानके क्षेत्रमे इतना अधिक बढ़े होनेके साथ ही साथ दोनोकी वाक्पटुता भी आश्चर्यजनक है। दोनोके तर्क अचूक तथा उनकी शैली अत्यत लाघवमय एव प्रभावोत्पादक है। जीवनके प्रति दोनोका ही अत्यत समृद्ध दृष्टिकोण है। स्वय सौदर्य-प्रिय होनेके साथ-साथ दोनोका रूप भी अपरिसीम है। जिस प्रकार कमल अपने मृत पति, शिवनाथ तथा अजितसे क्रमानुसार प्रेम करती है, उसी प्रकार चित्रलेखा भी अपन मृत पति, सामत बीजगुप्त एव योगी कुमारगिरिसे प्रेम करती है। तर्कके क्षेत्रमे दुराग्रह करना न कमल जानती है, और न चित्रलेखा। दोनो ही अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवनमे शात, नम्र तथा व्यवहारकुशल है। इसके अतिरिक्त वाद-विवादके बीच दोनोका व्यावहारिक सयम सचमुच ही सराहनीय है। तीखी-से-तीखी बाते सुनकर भी वे क्रुद्ध नही होती, अत्यत शातिपूर्वक उनका उत्तर देती है। सामान्य जीवनमे उनकी कष्ट-सहिष्णुता तथा धैर्य अतुलनीय है। विपम परिस्थितियो मे भी सतुलित एवं स्थिर बना रहना उनका स्वभाव है। सच तो यह है कि कमल और चित्रलेखाकी विचार-धारामे कही-कही तो इतना अधिक साम्य है कि यदि एकके कथोप-कथन दूसरेके मुखमें रख दिये जाएँ तो कोई विशेप अतर न पडेगा। दोनो ही चरित्र बहुत-कुछ मिलती-जुलती मिट्टीसे बनाये गये जान पडते है।

'शेष प्रश्न' की पार्श्व-नायिका है आशु बाबूकी एकमात्र पुत्री मनोरमा। 'शिक्षिता, सुरूपा और पूर्णयौवना' मनोरमाके शील और सौजन्यका परिचय हमे उपन्यासके प्रारभिक परिच्छेदमे ही मिल जाता है। मित्र-मण्डलीमें

अपने छोटे चाचाके प्रति कुछ असतोषका भाव व्यक्त करते हुए आशु बाबूको वह ऐसा करनेसे रोक देती है। आचार-व्यवहारमे मर्यादाका वह पूरा ध्यान रखती है। विदेशी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करनेपर भी आमिष आदिका वह स्पर्श तक नही करती। सगीतसे उसे विशेष प्रेम है, और इस कलामे उसने पर्याप्त दक्षता भी प्राप्त कर ली है। इतने गुणोसे सयुक्त होने और एक धनिक की पुत्री होनेके बावजूद उसके चरित्रमे अभिमानने नही, वरन् विनयने स्थान पाया है। सुरुचिकी मात्रा उसमे इतनी अधिक है कि शिवनाथके अनैतिक कृत्योको वह सुनना भी पसद नही करती। उसके पत्नीत्याग एव मित्रको धोखा देनेकी घटना सुनकर उसका मन घृणासे अभिभूत हो उठता है। यही नही, वह आशु बाबूको समझाती भी है, "गुणका आदर करना मैं कम नही जानती बाबूजी, किन्तु इसीलिए शिवनाथ बाबूको एक दुष्ट दुश्चरित्र मतवाला समझकर भी फिर प्रश्रय क्यो दे रहे हो?" परन्तु इस सुरुचिके साथ सौजन्य भी है। यह जान कर कि उसके इन उपर्युक्त शब्दोको उसके अनजानेमे ही, शिवनाथने सुन लिया है उसकी लज्जाकी सीमा नही रहती। वह अपने इस अनचाहे दुर्व्यवहारके लिए बहुत दुखित होती है, और बाहर भीगते हुए शिवनाथ बाबू और उनकी स्त्रीको स्वय घरमे बुलवा लेती है। इस प्रसगमे उसकी व्यवहारपटुता भी बहुत सराहनीय है। कमलकी बाते सुन कर पहले तो उसका चेहरा क्रोधसे लाल हो उठता है, किन्तु क्षण भरके लिए। दूसरे ही क्षण 'निर्मल हँसीकी छटासे उसकी दोनो आँखे झकाझक करने लगती है।' वस्तुत. मनोरमाको ये चारित्रिक गुण अपने वृद्ध एव अनुभवी पितासे मिले जान पडते है। यह सच है कि 'मनोरमा आशु बाबूकी केवल लडकी ही नही, उनकी सगी, साथी मत्री, मित्र—एक साथ सब कुछ ही थी यही लडकी।'

मनोरमाके चरित्रमे आधुनिक सामाजिकताके प्राय. सभी गुणोके विद्य-मान रहनेपर भी, उसके व्यक्तित्वमे गहरी अतर्दृष्टिकी कमी है। वह व्यक्तियो तथा घटनाओको बहुत ऊपरी, बहुत सतही निगाहसे देखती है। पहली बार कमलसे मिलनेपर, सुनी-सुनाई बातोके आधारपर वह उसे शिष्ट समाजसे

वाहरकी स्त्री मानने लगता है। कमलका नि सकोच व्यवहार, उसकी प्रतिभा तथा वाक्पटुता मनोरमाको जरा भी नही प्रभावित करती। इस दृष्टिकोणसे मनोरमामे बुद्धि-वार्द्धक्य एव अनुभवकी वहुत कमी दिखाई देती है। और कमलके चरित्रकी तुलनामे तो यह कमी और भी अधिक उभरकर हमारे सामने आती है। मनोरमाकी व्यवहार-कुशलता बाहर भीगती हुई कमलको अदर बुलाकर उसे एक दासीके समान ही व्यवहार दिला पाती है, उसमे दृष्टिकी इतनी गहराई नही कि वह कमलके यथार्थ मूल्यको समझ सके। इसीलिए वह आशु वावूके वार-वार समझानेके बावजूद कमलका सदैव तिरस्कार करती रहती है। वह आशु वावूके प्रति कमलकी अत्यत स्पष्ट एव मुखर सम्मान-भावनाको भी नही समझ पाती। एकदम उत्तेजित होकर वह कहती है, "आज मैं जान गयी हूँ कि उस दिन धोती ओर साबुन माँगनेके बहाने वह लडकी (कमल) मेरा केवल उपहास ही कर गयी थी,—उस दिन-का उसका अभिनय मैं समझ न सकी थी,—किन्तु उसका सब छल-कपट, सभी व्यग्य ही व्यर्थ है वावूजी, यदि तुमको आज वह सबसे वडा न पहचान सकी हो।" यहाँ इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि मनोरमाके मनमें कमलके लिए बहुत-से पूर्वग्रह भी हैं। वहुत कुछ इन पूर्वग्रहोके कारण भी वह कमलके वास्तविक चरित्रको पहचान नहीं पाती।

मनोरमाके जीवनकी सबसे वडी सपत्ति है उसके प्रति आशु वावूका स्नेह। 'लडकीको आशु वावू कितना प्यार करते थे उसकी कोई सीमा नही।' वैसे तो सभी पिता अपनी सतानको प्यार करते हैं, परन्तु आशु वाबू जैसे सुलझे हुए व्यक्तिका प्राय साराका सारा मोह इस दुर्बल लडकीपर केन्द्रित हो गया है, यही तथ्य महत्त्वपूर्ण है। मनोरमा आशु बावूकी केवल लडकी ही नही है, 'उनकी सगी, साथी, मत्री, मित्र एक साथ सब कुछ ही है।' और मनोरमा स्वय भी यह जानती है कि वह कितने वडे वापकी लडकी है। उसे यह पूरा विश्वास है कि बिना उसके बावूजीके देखे हुए ताजमहलका आधा सौंदर्य ढँका ही रह जायगा। इस प्रकार आशु वावूको वह पिताके रूपमे तो सम्मान देती ही है, परतु शायद उससे भी अधिक सम्मान देती है उन्हे एक

अत्यत सतुलित विचारकके रूपमे। और हम कह सकते हैं कि यह मनोरमाकी उस अतर्दृष्टि—मनुष्यको पहचान पानेकी उस अतर्प्रवृत्तिका, कदाचित् सबसे बडा उदाहरण है, जो उसके चरित्रके अनिवार्य गुणोमे-से एक नही है।

अजितके प्रति मनोरमाका व्यवहार वहुत कुछ उसके 'वचपन' को प्रदर्शित करता है। उसके चरित्रके इस पहलूमे हम उस संतुलन, व्यावहारिक संयम तथा निर्णयात्मक बुद्धिका अभाव देखते है, जो उसकी अवस्थाके व्यक्ति-मे प्राय' वहुत-कुछ विकसित रहती है। प्रारभमे अजित और मनोरमाका प्रेम, आशु वाबूके शब्दोमें 'ससारकी एक अपूर्व वस्तु है। दोनो ही चार वर्षोके दीर्घ कालमे अत्यत मनोयोगसे एक दूसरेकी प्रतीक्षा करते है। अजितके विदेश जानेके समयसे मनोरमाने 'जो ब्रह्मचारिणी जीवन अपनाया फिर एक दिनके लिए भी उससे भ्रष्ट नही हुई।' इसी वीच दूसरे वरके खोजे जाने-की वात सुनकर वह आशुवाबूसे कहती है,"वावूजी, यह चेष्टा तुम मत करो। मुझको तुमने प्रकट रूपसे दान नही किया, किन्तु मन ही मन तो किया ही था।" मनोरमाके इन विचारो और आचरणोसे उसकी अजितके प्रति निष्ठा-का भली भाँति परिचय मिलता है, परन्तु उसके मनकी दुर्वलता और परि-स्थितियोने इस निष्ठाको ठहरने नही दिया। धीरे-धीरे उसकी अजितके प्रति विमुखता बढती जाती है, और इस प्रकार चार वर्षोकी लवी अवधि तक प्रतीक्षा करनेके उपरान्त जव वह विदेशसे वापस आ जाता है तो वह उससे विवाह नही कर पाती। अजितके लिए मनोरमाकी उदासीनताको चित्रित करनेमे शरत् बाबूने मनोविज्ञानके अत्यत सूक्ष्म अध्ययनका परिचय दिया है।

मनोरमाके मनमे अजितके प्रति उदासीनता और शिवनाथके प्रति आकर्षणके भाव प्राय. समानान्तर रूपसे विकसित होते है। वह कमल और शिवनाथ, दोनोसे घृणा करती है। अजितकी प्रेयसी होनेके समय 'शिवनाथके सवधमे मनोरमाकी विमुखता ही थी मानो सबसे अधिक।' किन्तु दो ही दिनके साहचर्यके फलस्वरूप उसका शिवनाथके प्रति अज्ञात आकर्षण मानो पूरे वेगसे जागृत हो उठा। रुग्ण शिवनाथकी परिचर्यामें

लगी हुई मनोरमा उसके प्रति अपनी अतृप्त कामनाओको समर्पित कर देती है। 'शय्याके पास चौकीपर बैठी हुई मनोरमा रात्रि-जागरणकी क्लान्तिसे रोगीकी छातीपर थका हुआ माथा रखकर शायद अभी-अभी सो गई है। उसकी गर्दनपर परस्पर सन्नद्ध दोनो हाथ रखकर शिवनाथ भी सो गया है।' इस सबधमे यह स्मरणीय है कि एकदम प्रारभिक सबधोमे, जब कि मनोरमाने शिवनाथका पिछला लज्जाजनक जीवन नही जाना था, शिवनाथ मनोरमाका सगीत-गुरु रहा है। उस समय मनोरमा उसके रूप और गुणोसे अत्यधिक प्रभावित थी। बीचमे वह शिवनाथसे घृणा करने लगी, परन्तु अततोगत्वा उसका प्रथम आकर्षण दबा न रह सका। और वह आशु बाबू जसे स्नेहशील पिताको अकेला छोडकर, शिवनाथसे विवाह कर लेती है। आशुबाबू कहते है, "एक दिन शिवनाथको इस घरमे आने देनेमे भी उसे (मनोरमाको) आपत्ति थी, किन्तु आज जिस सम्मोहनसे उसका हिताहित ज्ञान, उसकी समस्त नैतिक बुद्धि आच्छन्न हो गई है, वह यथार्थ प्रेम नही है, वह जादू है, मोह है।" जो भी हो, इस 'जादू' या 'मोह' मे फँस जानेका प्रधान कारण यह है कि मनोरमाका व्यक्तित्व बडा सुन्दर-सजल होनेपर भी अत्यत ही दुर्बल है। उसकी मान्यताओमे अपेक्षित दृढताका अभाव है। यद्यपि यह सही है कि उसके व्यक्तित्वमे भावावेगकी प्रधानता नही है, फिर भी उसके मानसिक सस्थानमे वह विवेक पूर्णत जागृत नही दिखाई देता, जो भले और बुरेके भेदको स्पष्ट करता है। अजित सारी रात कही अन्यत्र बिताकर सवेरे घर लौटता है। इससे आशुबाबूकी दुश्चिन्ताकी सीमा नही रहती, परतु कमल उससे एकबार भी देरसे आनेका कारण नही पूछती। यह निरथक आत्म-अभिमान भी वस्तुत उसे अजितसे दूर और शिवनाथके निकट ले जानेमे सहायक होता है। वह आशुबाबूसे कहती है, "मेरे सबधमे यदि उन्होने (अजितने) अनुचित धारणा कर ली है तो यह उनका दोष है। एक मनुष्यके दोष-सशोधनकी जिम्मेदारी क्या दूसरे मनुष्यको बलपूर्वक अपने ऊपर ले लेनी चाहिए बाबूजी ?" मनोरमाके इन शब्दोमे हठ तथा दुराग्रहकी गध अधिक आती है। वस्तुत. विचारगत

प्रौढता मनोरमाके चरित्रकी विशेषता नही है। उसके निर्णयोमें बचपना कुछ अधिक है तथा बुद्धि-वार्द्धक्यकी कमी है।

'शेष प्रश्न' की नीलिमाका चरित्र नारी-मनोविज्ञानके दृष्टिकोणसे अत्यत महत्त्वपूर्ण है। 'वह अविनाश मुखर्जीकी विधवा साली है। निराश्रय होनेके कारण उनके घरकी देख-भाल करती है। और क्योकि अविनाशकी पत्नीका देहात हो चुका है, अत 'फिलहाल घरकी मालकिन वही है।' वह अत्यत हँसमुख, स्पष्ट-वादिनी तथा निर्भीक है। घरके कामकाज, तथा बहनोई और उसके मित्रोके साथ हँसी-मजाक में वह अपने वैधव्य-दु खको डुबो देना चाहती है। सयम-नियम उसके चरित्रमे घुल-मिल गये है। नीलिमाकी ओर सकेत करता हुआ हरेन्द्र कहता है, "वैधव्यका कोई बाह्य प्रकाश इनमे नही है,—बाहरसे मालूम होगा मानो विलास-व्यसनमे मग्न रहती है, किन्तु मै जानता हूँ इनकी दु साध्य आचार-निष्ठा, इनका कठोर आत्म-सयम।" इसमे कोई सदेह नही कि नीलिमाके व्यक्तित्वसे सबसे अधिक प्रभावित हरेन्द्र ही है, फिर भी उसके उपर्युक्त कथनमे अतिशयोक्तिका कोई अश नही है। नीलिमाका वर्णन स्वय उपन्यासकारने इस प्रकार किया है, 'अवस्था भी अत्यत कम नही है, शायद तीसके लगभग पहुँच चुकी है। इस अवस्थाके लिए उपयुक्त गभीरता हठात् उनमे ढूँढनेसे नही मिलती—ऐसा ही उनका हँसी-खुशीका मेला है, फिर भी ज़रा थोडा-सा ध्यान देनेसे ही यह बात स्पष्ट समझमे आ जाती है कि एक ऐसा अदृश्य आच्छादन उनको दिन-रात घेरे रहता है, जिसके भीतर प्रवेश करनेका कोई रास्ता ही नही है। घरके नौकर-नौकरानी भी नही प्रवेश कर सकते और न तो मालिक ही।' इस 'अदृश्य आच्छादन' के ही कारण नीलिमाका व्यक्तित्व इतना सुदृढ एव महिमामय है। यद्यपि उसमे भी एक स्थानपर दरार पड़ ही जाती है, किन्तु उसके सम्यक् कारण भी है।

वस्तुत नीलिमाके जीवनका सबसे बडा ध्येय है अपने स्वजनो एव मित्रोका सेवा-सत्कार। 'काम-काजी व्यक्ति है, दिन-रात काममे ही व्यस्त रहती है।' आशुबाबूकी शुश्रूषा करने जब वह उनके यहाँ जाती है, तो सपत्तिके

मोह के कारण नही, वरन् अपनी स्नेहशील प्रकृतिके कारण। उसकी 'अकलंक शुभ्रता' हमे उसके प्रत्येक सबधमे दिखाई देती है। उसके व्यावहारिक जीवन में शील एव सुरुचिका स्थान सर्वोपरि है। वह सबके सामने परदेसे बाहर निकलना पसद नही करती। व्यर्थके कटाक्ष करनेका उसका स्वभाव नही है। सुरुचिके लिए उसके मनमे इतना अधिक आग्रह है कि वह अजितको "एक दिन जिस दिन मैं नारी थी" शीर्षक कहानीका वह अश पढनेसे रोक देती है जो 'किसी-किसी स्थानपर रुचिको चोट पहुँचाता है'। एकनिष्ठ प्रेम एव पतिव्रत धर्म उसके निकट अत्यत सम्मान्य एव आचरणीय है। 'उसका कहना है कि पतिको त्याग करना ही तो बडा काम नही है, उन्हे फिरसे पानेकी साधना ही स्त्रीके लिए परम सार्थकता है।' प्रेम एव विवाहके सबधमे उसका दृष्टिकोण अत्यत स्वाभाविक एव स्वस्थ है। बेलाके पति-त्यागकी बातको लेकर वह कहती है, "सत्य न तो पतिको छोड देनेमे है न पतिकी दासी-वृत्ति करनेमे ही है, ये दोनो ही केवल दाये-बायेके रास्ते हैं, गन्तव्य स्थान तो अपने आप ढूँढ लेना पडता है, तर्क करनेसे उसका पता नही चलता।"

नीलिमाका अत्यत स्नेहपूर्ण व्यवहार उसके सपर्कमे आनेवाले सभी व्यक्तियोको बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। हरेन्द्रको उसकी ममताका अधिकाश प्राप्त हुआ है,और वह जानता है कि यह उसके लिए कितना बडा सौभाग्य है। वाणीका वशीकरण भी नीलिमाको प्राप्त है। उसकी बाते 'स्वभावत' ही मधुर होती है, 'कहनेके ढगमे ऐसी एक विशेषता रहती है कि सहज ही मे दृष्टिगोचर हो जाती है।' हरेन्द्रके ब्रह्मचर्याश्रमके बालकोको देखकर उसकी आँखे भर आती है। स्नेह देनेके अतिरिक्त नीलिमा उसका प्रतिदान भी चाहती है। अपनी रूखी-सूखी और नीरस जिन्दगीको वह परिचितो और मित्रोंके स्नेहसे ही सरस बनाना चाहती है। अजित और हरेन्द्रसे बात करते समय उसकी आँखे आँसूसे भर उठती है। वह कहती है, "ऐसी मीठी बात बहुत दिनोसे सुनी नही है भाई, इसीसे सुननेके लिए कुछ लोभ होता है।" वस्तुत ईर्ष्या और द्वेषसे परे हटकर उसने स्नेह और ममताको ही अपने जीवनका पाथेय बनाया है।

नीलिमाके व्यक्तित्वका एक प्रमुख गुण उसकी निर्भीकता भी है। लोगोके कहने-सुननेके डरके मारे कोई भी व्यक्ति कमलको अपने घर नही बुलाना चाहता। परन्तु नीलिमा अविनाशके मना करनेके वावजूद उसे अपने यहाँ आमन्त्रित करती है। इसके वाद घर आई हुई कमलको जव अविनाश कुछ व्यग्य करके कहते है तो वहुत कडाईके साथ नीलिमा कहती है, "प्रश्नका उत्तर न दे सकनेमे तो लज्जा नही होनी चाहिए। किन्तु शिष्टताका लघन करनेमे लज्जा अवश्य होनी चाहिए।" इस प्रकार अविनाशके घर रह कर और उन्हीकी जीविकासे भरण-पोषण करनेपर भी, नीलिमा उनका कोई अन्याय सहनेको तैयार नही है। उसकी चारित्रिक दृढताके सम्मुख सभीको झुकना पडता है।

एक औसत गृहस्थिन होनेपर भी नीलिमाकी विचार-शक्ति काफी विकसित है। हर एक घटना और व्यक्तिके सवधमे उसका अपना स्वतत्र मत है। वेलाको सुनाकर वह कहती है, "सभी वडी चीजे मनुष्योके हाहाकार से ही पैदा होती है, अत संसारके आमोद-प्रमोदमे ही जो लोग मग्न रहते है, यह उनकी आँखोसे कैसे दिखाई पड सकती है।" इस वाक्यमे मानव-जीवनका वडा सत्य नीलिमाने व्यक्त किया है, जो स्वय उसकी अनुभूतिपर आधारित है, ऐसा जान पडता है। इसी प्रकार एक स्थलपर वह कमलसे कहती है, "मैने पुस्तके नही पढी है, अनुभव भी कम है, तर्क करके मै तुमको समझा नही सकती, किन्तु मालूम होता है कि असली चीजका पता तुमको आज तक भी नही मिला है। श्रद्धा, भक्ति, स्नेह और विश्वास, इन्हे छीना-झपटी करके नही पाया जा सकता, अनेक दु खसे वहुत देरमे ये दिखाई देते है। दिखाई पडनेपर रूप-यौवनका प्रश्न न मालूम कहाँ मुँह छिपाये रहते है, कमल, पता लगाना कठिन हो जाता है।" नीलिमाके ये विचार पौस्तकीय सचमुच नही है। इनके पीछे वहुत लवा अनुभव हो, शायद ऐसी भी वात नही है। वस्तुत नीलिमाकी यह सुलझी हुई विचार-शक्ति उसकी गहरी अन्तर्दृष्टिके फलस्वरूप है।

अपने निश्छल एव स्नेहमय स्वभावके कारण नीलिमाके सवध उपन्यासके

सभी पात्र-पात्रियोसे बहुत प्रीतिकर है। अविनाशकी वह साली है, उनके घरकी देखभाल करती है। अत उनसे हँसी-मजाकका रिश्ता तो उसका है ही। वैसे भी ये साली और बहनोई एक-दूसरेका यथोचित सम्मान करते है। किन्तु इस सबके बावजूद अन्यायकी बातपर नीलिमा अविनाशसे दबती नही है। उसका स्पष्ट कथन है, "मै उनकी साली हूँ, सालीकी बहिन नही कि पति रूपी चरम-गुरुकी गदा घुमाकर मेरे ऊपर शासन करेगे।" एक स्थलपर कमलके प्रति कुछ तीखी बात कहे जानेपर वह कहती है, "शिवनाथसे त्रुटि हुई है मुखर्जी महाशय, उनपर जुरमाना करके हम बदला लेगे। किन्तु गुरुगिरीमे तो कोई भी पुरुष कम नही होता। इसीलिए प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपनी बुद्धिसे दो-एक प्रिय वाक्य बाहर निकालो, हम सभी सुनकर धन्य हो।" यही नही, आत्मसम्मानके क्षत होनेपर वह कटिबद्ध होकर उसकी रक्षाके लिए भी तत्पर हो जाती है। हरेन्द्रके माध्यमसे वह अविनाशसे कहती है, "तब तो मेरे सबधमे कृपा करके उन्हे स्मरण करा दो बबुआ जी कि किसीको छोटी मालकिन कहकर पुकारते रहनेसे ही वह यथार्थत गृहिणी नही हो जाती। उसके ऊपर शासन करनेकी मात्राका भी उसे ज्ञान रहना चाहिए। मेरी तरफसे मुखर्जी महाशयके अनुभवके भडारमे आज इतना और जमा हो जाय। भविष्यमे यह काममे आ सकता है।"

नीलिमाके हृदयका सबसे कोमल भाग कदाचित् हरेन्द्र एव कमलके हिस्सेमे आया है। शायद इसीलिए कि दोनो ही नीलिमाकी भाति अपने-अपने परिवारोसे वियुक्त है। हरेन्द्रके सुख-दु खके लिए तो वह बहुत ही चिन्तित रहती है। वह उन्हे विवाहित एव गृहस्थ रूपमे देखना चाहती है, इसीलिए उनके ब्रह्मचर्याश्रमसे वह क्रुद्ध रहती है, परन्तु स्वय हरेन्द्रसे वह चाहे जो कुछ कह ले, औरोके व्यग्य उसे सह्य नही है। इसके लिए वह अविनाश का भी तिरस्कार करती है। प्रारभमे ही जब हरेन्द्र अविनाशके घर ठहरने आया था, तबसे उसे नीलिमाकी आत्मीयता प्राप्त हुई है, जिसमे कभी कोई कमी नही पडी। अपना घर लेकर जब हरेन्द्र उसमे जानेको प्रस्तुत

होता है तो नीलिमा कहती है, "किन्तु देश-सेवाके नशेकी खुमारी अब तक भी तुम्हारी आँखोसे दूर नही हुई है बबुआजी, और भी कुछ दिनो तक अपनी भाभीकी हिफाजतमे रह लेते।" अपनी 'हिफाजत' मे रखनेकी नीलिमाकी यह भावना ही मानो हरेन्द्रकी रक्षाका कवच बन गई है।

कमलके प्रति 'शेष प्रश्न'के प्राय सभी चरित्रोके मनमे कुछ-न-कुछ पूर्व-ग्रह रहा है। केवल आशु बाबू,और उनके साथ-साथ नीलिमा—ये ही दोनों व्यक्ति ऐसे रहे है जिन्होने कमलको सहृदयतापूर्वक समझनेकी चेष्टा की है। सामूहिक रूपसे कमलकी बुराई सुनते-सुनते एक दिन नीलिमा अविनाशसे कहती है, "मुखर्जी महाशय, कमलसे मै एक बार मिलना चाहती हूँ। मेरी बडी इच्छा है कि उसे निमन्त्रण देकर खिलाऊँ।" और कमलसे मिलनेकी यह इच्छा वह अततोगत्वा पूरी ही करती है—उसे हरेन्द्रके आश्रममे बुला कर। जितनी देरतक कमल उसके साथ रहती है, वह उसके ऊपर कोई आक्षेप नही होने देती, परन्तु यह नियतिका व्यग ही है कि नीलिमा जिस व्यक्तिको इतना अधिक चाहती है, वही उसके सिद्धातोके एकदम विरुद्ध है। कमल एकनिष्ठ प्रेम और सतीत्वके आदर्शको एकदम नही मानती, जिसके ऊपर नीलिमाका वैधव्य-जीवन अवलबित है, परन्तु इस सबके बावजूद नीलिमाके मनमे कमलके लिए एक अत्यत कोमल कोना सुरक्षित है। वह कहती है, "उनमे-से किसीमे मै शामिल नही हूँ। मेरे घरमे कभी तुम्हारा अनादर न होगा।" कमलको लेकर बहुत अधिक वाद-विवाद करना नीलिमाको पसद नही है। वह कहती है, "वह बेचारी शिष्ट-समाजसे बाहर, बस्तीसे बाहर पडी हुई है,उसे लेकर आप लोग खीचातानी क्यो कर रहे है ?" यही नही, बेलाके ऊपर कटाक्ष करती हुई वह कमलकी प्रशसामे आगे कहती है, 'कमल चाहे और जो कुछ भी करे, जिस पतिको उसने लाछन लगा कर घृणासे छोड दिया है, उसीके दिये अन्नका ग्रास मुँहमे डालकर, उसीके दिये कपडेसे लज्जा बचाकर जीवित रहना नही चाहती। अपनेको इतनी छोटी बनानेके पहले वह आत्महत्या करके मर जाती।" उपन्यासके अतमे कमल जब आगरा छोडकर अजितके साथ कही बाहर चलने लगती

है तो हरेन्द्रके घर होनेवाले विदा-भोजमे नीलिमा उसे दरवाजेकी आडमे बुलाकर अपनी आँखे पोछती हुई कहती है, "कमल, मुझे कही भूल मत जाना।" और इसके आगे उससे कुछ कहते ही नही बनता। फिर जब कमल उससे कहती है, "तुम और जो भी इच्छा हो वह करो बहिन, किन्तु अविनाश बाबूके घरकी वेगारी करने को राजी मत होना" तो वह सक्षेप मे उत्तर देती है, "ऐसा ही होगा कमल।" और इस प्रकार अततोगत्वा वह कमलके प्रभावको स्वीकार कर लेती है।

बेलासे नीलिमा शायद बहुत प्रसन्न नही रहती। शायद इसीलिए कि वह उसके मूल सिद्धातोके प्रतिकूल जीवन-यापन करती है। अत उसके बारे-मे जो कुछ भी वह कहती है, उसमे थोडा-बहुत तीखापन अवश्य रहता है। सदैव सहृदयतापूर्वक तथा मधुर वार्तालाप करने वाली नीलिमा बेलाको अत तक क्षमा नही कर सकी। वह आशु बाबूसे कहती है, "दुश्चरित्र पतिको त्याग देनेमे जितना भी सत्य क्यो न हो, बेलाके पति-त्यागमे तनिक भी सत्य नही है, यह बात मै ज़ोर देकर कह सकती हूँ।"

हरेन्द्रके समान ही नीलिमा अजितको भी बहुत अधिक चाहती है। उसका असमयका वैराग्य उसे जरा भी पसन्द नही है। इसीलिए अजितको विवाहित रूपमे देखनेकी उसकी हार्दिक इच्छा है। उसकी ओर इशारा करती हुई वह हरेन्द्रसे कहती है, "तुम्हारे मुँहपर फूल-चदन पडे बबुआजी, ऐसा ही हो। उनके मनमे थोडा पाप हो, वे पकडे जाँय किसी दिन—मै काली-घाट जाकर ठाटबाटसे पूजा दे आऊँगी।" इन शब्दोमे अजितके प्रति उसका स्नेह, ममत्व एव अधिकार स्पष्ट झलकता है। बिना रक्त-सबधके ऐसी अपनावकी भावना रखना शरत्के नारी पात्रोकी एक प्रमुख विशेपता है। नीलिमाका चरित्र उसका एक सशक्त उदाहरण है।

नीलिमाके चरित्रका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग उसके आशु बाबूके प्रति प्रेमसे सबद्ध है। यह शरत् बाबूकी ही सामर्थ्य थी कि उन्होने एक रूपवान, सुशील, बुद्धिमती एव चरित्रवान विधवाको वात-रोग ग्रस्त एक ऐसे वृद्ध व्यक्तिसे प्रेम करते दिखाया है, जिसके मनमे रूप और यौवनका आकर्षण

समाप्त हो चुका है। इस दृष्टिकोणसे नीलिमाके चरित्रका अध्ययन मनोविज्ञानके क्षेत्रमे एक अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रेमकी उत्पत्तिमें रूपासक्ति और साहचयका योग वताया जाता है, परन्तु इस विशिष्ट उदाहरणमे रूपासक्तिका स्थान एकदम नही है। नीलिमाके मनका स्नेह, ममता तथा दया-जैसी कोमल वृत्तियाँ ही आशु वावू जैसे सरल और सुलझे हुए व्यक्तिके सपर्कमे आकर प्रेमके रूपमें परिणत हो जाती हैं। इस सवधमे हम कुछ और अधिक न कह कर ,केवल आशु वावूके एक लबे उद्धरणको प्रस्तुत करते हुए इस प्रसगको समाप्त करेगे। कमलके सम्मुख इस अत्यत अप्रीतिकर विपयको उपस्थित करते हुए आशु वावू कहते है, "स्वप्नमे भी नही सोचा था। और कोई होता तो सदेह होता कि यह केवल छल या धोखा है। एकदम स्वार्थ है। किन्तु उसके सवधमे ऐसी वात सोचना भी अपराध है। क्या ही आश्चर्यजनक स्त्रियोका यह मन है। यह रोगातुर जीर्ण शरीर, यह असमर्थ असवन्न चित्त , जीवनकी इस अपराह्ण वेलामे जवकि जीवनका कानी कौडी भी दाम नही रहता, ऐसे मनुष्यके प्रति भी किसी सुन्दरी युवतीका मन आकर्पित हो सकता है, इससे वढकर आश्चर्यकी वात दुनियामे और क्या हो सकती है ! फिर भी, यह सच है, इसमे जरा भी झूठ नही है . किन्तु मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि यह वुद्धिमती नारी मुझसे कुछ भी प्रत्याशा नही करती। वह केवल चाहती हे मेरी सेवा करना, केवल यही चाहती है कि सेवाके अभावमे जीवनके इने-गिने शेप दिन दु खमे ही न वीत जॉय। केवल उद्देश्य है दया और अकृत्रिम करुणा !"

'शेप प्रश्न' की वेलाको हम पार्श्व-चरित्रके रूपमे मान सकते है। उसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार कहता है, "वेला कलह-प्रिय रमणी नही है, और विशेपत वह सुशिक्षित है। उसने बहुत देखा-सुना है और उम्र भी शायद पैंतीसके ऊपर पहुँच चुकी है,किन्तु सयम-नियमके कारण यौवनका लावण्य अभी तक ढला नही मालूम होता, वैसा ही वना हुआ है। रग उज्ज्वल है, मुँहका एक विशिष्ट रूप हे, किन्तु ध्यानसे देखनेसे मालूम हो जाता है कि स्निग्ध कोमलताके अभावमे वह मानो रूखा हो गया है।" वस्तुत वेलाका चरित्र

वहुत ही यथार्थवादी धरातलपर है, और उसके व्यक्तित्वमे गुणो और अवगुणोका खूब ही अच्छा मिश्रण हो गया है। क्रोध करके झगडा करना उसकी शिक्षा और सौजन्यके विरुद्ध है। आत्म-सम्मानका ध्यान उसे अधिक रहता है। इस आत्म-सम्मानके प्रति सजग रहनेके ही कारण वह पतिसे समझोता नही कर पाती है, और उनसे अलग रहती है। फिर भी अपने अधिकारका अनुभव करती हुई वह पतिकी क्षमा-याचनाके वावजूद अदालत जाती है, और वहाँसे अपने भरण-पोपणके लिए पतिसे एक अच्छी खासी रकम लेनेका फैसला करवा लेती है। स्पप्ट ही उसके इस व्यवहारमे भारतीय सभ्यताकी अपेक्षा पश्चिमी सभ्यताका अधिक निर्वाह हुआ है। और इसी-लिए वह नर-नारीके समानाधिकार तत्त्वकी प्रवल समर्थिका है। वह कहती है, "अपने सम्मान, समस्त नारी-जातिके सम्मानकी रक्षाके लिए उस दिन भी मैंने परवाह नही की, आज भी न करूँगी। अपनी मर्यादा खोकर पतिकी घर-गृहस्थी चलाना मैंने पसद नही किया किन्तु मैंने अनुचित कुछ नही किया, इस कारण जैसे उस दिन नही डरी, आज भी मै वैसी ही निडर हूँ। अपनी विवेक वुद्धिके सामने मै बिलकुल निर्दोप हूँ।" इसमे कोई सदेह नही कि अपने इन विवाह एव समानाधिकारोके सिद्धातोके कारण वेलाका चरित्र वहुत-कुछ कमलसे मिलता-जुलता जान पडता है। आशु वावू कहते हैं, "कमल, तुम्हारी तरह सोचने और साहसका परिचय देनेमे मैंने केवल एक ही लडकी देखी है, वह है यही वेला।" परन्तु इन दोनो चरित्रोमे इस एक वाह्य समानताके अतिरिक्त मूलगत अतर भी वहुत है। इस सवधमे केवल एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। पतिसे सवव-विच्छेद कर लेनेपर कमल उनसे अपने भरण-पोपणके लिए एक भी पैसा लेना पसद नही करती। वह अत्यत निर्धनतामे किसी प्रकार दूसरोके कपडे सीकर अपना निर्वाह करती है, किन्तु किसी भी अन्यके सामने हाथ नही पसारती। इसके विपरीत वेला अपने पतिको त्याग देनेके वाद भी उनसे रुपये लेती रहती है और इस प्रकार वेभव एव विलासमय जीवन व्यतीत करती हे। यही हम दोनोके दृष्टिकोणोमें एक मौलिक अतर देख सकते है, और यह निश्चित है कि

स्वयं वेला भी इस अंतरको भली भाँति पहचानती है। इसीलिए कमलको लेकर उसके मनमे एक हीनता ग्रथि बन गई है। वह यथासंभव उसकी उपेक्षा एव अनादर करनको ही प्रस्तुत रहती है।

'शेप प्रश्न' की कथा-वस्तुमे मालिनीका यत्र-तत्र उल्लेख-भर मिलता है। वह आगरेके नये मैजिस्ट्रेटकी पत्नी है। उसके ही प्रयत्नसे और उसके ही घरपर नारी-कल्याण-समितिकी स्थापना हुई है। मालिनीकी चारित्रिक सवेदना बहुत अशोमे वेलासे मिलती-जुलती है। 'वे पदस्थ व्यक्तियोकी स्त्रियाँ है। हाई सर्किलकी महिलाएँ है। अँग्रेजी वातचीत, चाल-चलन, वेशभूषामे अप्टूडेट है, वेलाकी ही भाँति मालिनी भी यथासम्भव कमलका अपमान करनेका अवसर ढूँढती है। 'नारी-कल्याण-समिति' के प्रमुख उद्देश्योमे-से एक कदाचित् यह भी रहा होगा। उसकी एक बैठकमे तो कमलके चाल-चलनकी ही बुराई की जाती है। वस्तुत मालिनी वाहरी तडक-भडकमे व्यस्त रहनेवाली उन महिलाओमे-से एक है, जो मानव-मनके अदर एकदम नही पैठ पाती।

'शेप प्रश्न' के नारी-पात्रोकी उपर्युक्त सक्षिप्त विवेचनाके उपरात हम कह सकते है कि इस उपन्यासका नारी-समाज अत्यत सुशिक्षित एव सुसस्कृत है। शरत् वाबूके कथा-साहित्यमे इस कृतिकी यह अपनी विशेषता है। प्रस्तुत उपन्यासके प्राय सभी नारी-पात्र अत्यत विचारवान एव तर्कशील है। अपने कथोपकथनोमे वे सूत्र-शैलीका व्यवहार अधिक करते है। और कमलकी बुद्धि तथा तर्क-शैलीकी प्रखरता तो अतुलनीय है। इसीलिए सारे उपन्यासका वातावरण नितात बौद्धिक हो उठा है, फिर भी वह मनको उवाता नही, आकर्पित ही अधिक करता है।

विप्रदास

'विप्रदास' शरत् बाबूका अतिम पूर्ण उपन्यास है। बहुत-से आलोचको-के मतानुसार उनकी यह कृति पूर्वागत सभी रचनाओसे, विचार और विधान दोनोमे, अधिक प्रौढ है। इसमे कोई सदेह नही कि यह मत बहुत अशोमे सत्य है। इस उपन्यासकी सबसे बडी विशेपता यह है कि इसमे उन्होने नारीके भारतीय रूपको ही अधिक श्रेयस्कर एव महिमामय दिखाया है। नारीके पूर्वी और पश्चिमी सस्कृतियोसे अनुप्राणित, दो विभिन्न एव प्राय विरोधी रूपोमे, श्रेष्ठताके लिए जो सघर्ष शरत् बाबूके मनमे चल रहा था, उसकी चरम सीमा उनके सर्वापेक्षा प्रसिद्ध उपन्यास 'शेष प्रश्न' मे पहुँच गई है, परन्तु इसके बाद,जान पडता है कि उनका निर्णय नारीके परपरागत भारतीय रूपके ही पक्षमे रहा। इस सबके पीछे स्वय उपन्यासकारकी अपनी निजी अनु-भूतियाँ रही होगी, यह मानना कदाचित् बहुत न्यायसगत होगा। बगाली नारीसमाजमे अँग्रेजी शिक्षाके फलस्वरूप जो कुरीतियाँ घर कर गई थी, उसके दुष्परिणामोको शरत् बाबूने भली भाँति समझा था। विदेशी सस्कृतिसे प्रेरित कृत्रिम आचार-व्यवहारोसे नारीका सहज रूप कितना विकृत और खोखला हो सकता है, इसका अकन उन्होने प्रस्तुत उपन्यासमे बहुत अच्छी तरहसे किया है। वदनाकी मौसी, और उनके परिजन इसी वर्गके चरित्र हैं।

जहाँ तक उपन्यासके रूप-गठनका सवध है, इस क्षेत्रमे उसकी श्रेष्ठता निर्विवाद है। यह कथा-वस्तुके चयनकी ही विशेपता है कि 'विप्रदास' इतना सशक्त तथा प्रभावोत्पादक उपन्यास वन सका है। मनोवेगो और सस्कारोके पारस्परिक तीखे सघर्पका मिश्रण जिस प्रकारसे इसमे किया गया है, वह

पाठकके हृदयको झकझोर देता है। शरत्के पिछले उपन्यासोमें इतना शक्तिशाली कथानक कदाचित् केवल 'गृहदाह' मे ही मिलता है। अत्यत ही सुगठित शैलीके फलस्वरूप 'विप्रदास' का प्रत्येक स्थल बहुत मार्मिक बन गया है।

'विप्रदास' की कथा अत्यत सक्षेपमें इस प्रकार कही जा सकती है—बलरामपुरके समृद्ध जमीदारोका घराना मुखर्जी परिवारके नामसे विख्यात है। इस परिवारमें विधवा माँ गृहस्वामिनीके पदपर प्रतिष्ठित है। उनके दो पुत्र है। बडा लडका सौतेला है—विप्रदास, छोटेका नाम है द्विजदास। माँ बडे लडकेसे जितना ही सतुष्ट रहती है, उतना ही छोटे लडकेसे असतुष्ट। विप्रदासकी पत्नीका नाम है सती। अपने देवर द्विजदासपर उसके स्नेहाधिकारकी सीमा नही। उसकी यह आतरिक कामना है कि उसका विवाह किसी प्रकार उसकी चचेरी बहिन वदनासे हो जाय, परन्तु इसमे कठिनाई यह है कि वदनाका परिवार तो आँग्ल सभ्यताको सपूर्णत अपनाये हुए है, और विप्रदासके घरमे, विशेपत उनकी विधवा माँ, सभी लोग कट्टर हिन्दू धर्मके अनुयायी हैं। द्विजदासको अवश्य ही अपवाद-स्वरूप माना जा सकता है।

एक बार अनायास ही वदना अपने पिताके साथ बलरामपुर आ पहुँचती है। सतीके माध्यमसे द्विजदास और वदना एक-दूसरेके बारेमे काफी सुन चुके हैं, और इस प्रथम भेटके अवसरपर दोनो एक-दूसरेकी ओर आकर्पित भी होते ह, परन्तु इसके साथ ही साथ वे अपनी सीमाओको भी जानते हैं। अपने आत्माभिमानी स्वभावके कारण वदना विप्रदासकी माँ दयामयीका कठोर आचार-व्यवहार देख कर अपमानित अनुभव करती है। उनके हृदयकी कोमलता और स्नेहको वह नही पहचान पाती।

इसके उपरात परपरागत सस्कारो और अपरिहार्य मनोवेगोका तीखा सघर्ष प्रारभ होता है। दयामयी और वदना, वदना और विप्रदास, वदना और सुधीर तथा वदना और अशोकके बीच आकर्पण और विकर्षणकी स्थिति कई बार एक-दूसरेकी स्थानापन्न होती है, परतु इस

सारी उथल-पुथलके बीच भी वदना और द्विजदासका अप्रकट संबध अक्षुण्ण बना रहता हे। एक बार विप्रदासने वदनाको आशीर्वाद दिया था कि जो तुम्हारा वास्तवमे अपना होगा उसको ही तुम किसी दिन पा जाओगी। और अततोगत्वा विप्रदासका वह आशीर्वाद सफल होता है। अनेकानेक सघर्षोंके बाद दृढ एव अपरिवर्त्तित स्नेहकी विजय दिखाना शरत्के कथाकारका जैसे चरम ध्येय रहा है।

मुखर्जी-परिवारकी अत्यत ही दु खमय स्थितिका द्विजदाससे समाचार पाकर वदना अपने पिताकी आज्ञा लेकर बबईसे बलरामपुर चली आती है। एक सप्ताहके अनतर उसके पिता भी आ जाते हैं, और उनके सामने द्विजदास तथा वदनाका विवाह सपन्न होता है, परन्तु तब तक मुखर्जी-परिवारके व्यक्तियोकी सख्या बहुत कम हो गई हे—सतीकी मृत्यु हो चुकी हे। विप्रदास और उनकी माँ तीर्थाटनके लिए जा रही हैं जो शायद कभी समाप्त न होगा। द्विजदासकी बहिन कल्याणी तथा उसके पति शशधरका इस घरसे सबध टूट चुका है। अपने चाचाकी गृहस्थीमे रहनेके लिए विप्रदासका एकमात्र पुत्र बासू ही अवशिष्ट रह जाता है, और रह जाती है घरकी पुरानी दासी अन्नदा। और इस प्रकार जीवनकी सुख-दु ख और धूप-छाँहसे युक्त गोधूलि वेलामे उपन्यासका अत होता है।

यहाँ शरत्की चरित्र-निर्माण-शैलीके सबधमे एक समस्यापर विचार कर लेना अप्रासगिक न होगा। प्राय ही यह कहा जाता है कि शरत्ने अपने उपन्यासोमे पुरुष-पात्रोको अत्यत्त दुर्बल तथा अशक्त रूपमें अकित किया है। वे सदैव ही नारीकी महत्ताके शिकार रहते हैं। प्रस्तुत प्रसंगमे इस विषयके विस्तारमे जाना सभव न हो सकेगा। यहाँ केवल इतना ही कहा जा सकता है कि 'विप्रदास' के कथानकके आधारपर यह आक्षेप नितात निर्मूल सिद्ध होता है। इस अत्यत सशक्त उपन्यासका नायक है शीर्षक-चरित्र विप्रदास। और इसमे कोई सदेह नही कि प्रारभसे लेकर अत तक उसके व्यक्तित्वकी दृढता एव कठोरता अक्षुण्ण रहती हे। उपन्यासके सभी पुरुष और नारी पात्र उसकी प्रभविष्णुतासे अभिभूत रहते हैं। वदना हँसी-हँसीमे ही विप्रदासको जो

'बाघ' की पदवीसे विभूषित करती है, उसका भाव यही है कि विप्रदासके सम्मुख स्वच्छदता बरत पाना किसीके लिए भी सभव नही है। यहाँ तक कि दयामयी-जैसे महिमामय व्यक्तित्वको भी कहीं-कही अपने पुत्रके सम्मुख झुकना पडता है। यहाँ साथ ही साथ यह भी स्मरणीय है कि विप्रदासकी मातृ-भक्ति सचमुच पौराणिक है।

'विप्रदास' के नारी-पात्रोकी सख्या दस है, परन्तु स्पष्ट ही इनमें-से सब-का कथानकमे महत्त्वपूर्ण स्थान नही है। प्रधान नारी-चरित्र तीन है— वदना, दयामयी और सती। अन्नदा, मैत्रेयी और वंदनाकी मौसीको पार्श्व-चरित्र कहा जा सकता है। शेष चार पात्र—कल्याणी, प्रकृति, हेम तथा बैरिस्टर-पत्नीका उपन्यासमे यत्र-तत्र उल्लेख-भर है। सबसे पहले हम उपन्यासकी नायिका वदनाके चरित्रका विश्लेषण करेगे।

वदनाका चरित्राकन शरत् बाबूने अत्यन्त ही अनुभवगम्य धरातलपर किया है। शरत्‌के जीवन-कालमे बगालका सामाजिक जीवन बहुत-से सुधारो-से आक्रात हो उठा था। ब्राह्म-समाज तथा कुछ अन्य पाश्चात्य परिपाटीमें शिक्षित व्यक्तियोके प्रभावके फलस्वरूप ही बगालमे इन सामाजिक सुधारोकी लहर-सी उठी। इनमें-से प्रमुख थे—स्त्री-शिक्षाका प्रचार, सती-प्रथाका विरोध, विधवा-विवाहका प्रचलन, पुरुषोद्वारा बहु-विवाहकी सस्थाका विरोध, स्त्रियोके बाल-विवाहका बहिष्करण तथा कुलीनताकी भावनाका विरोध। स्पष्ट ही इन सुधारोसे प्रभावित होनेवाले व्यक्तियोमे स्त्रियोकी सख्या अधिक थी। कदाचित् तत्कालीन बगाली नारी-समाजकी दुरवस्थाको देख-कर ही इन सुधारोकी आयोजना भी हुई थी। और यह भी सच है कि उस समयके बगालमे नारीकी सामाजिक स्थिति अत्यत दयनीय थी। 'श्रीकान्त'के एक पात्रके माध्यमसे स्वय शरत् बाबूने कहलाया है, "बगालकी कन्या अत्या-चारकी चिर-अभ्यस्त है, और कही तो शायद कुत्ते-बिल्लियोकी भी इतनी दुर्गति करनेमे मनुष्यका हृदय काँपता होगा" (४ १६०)। इन कन्याओकी दुरवस्थाके विरोधमे ही सुधारकोको अपनी अधिक-से-अधिक शक्ति लगानी पडी थी। इन सुधारोकी थोडी-बहुत सफलताके साथ बगालमे स्त्री-

पुरुषोके एक नव्य दलकी स्थापना हुई, जिसकी जीवन-चर्या और सामाजिक मर्यादाएँ प्रमुखत आँग्ल-सस्कृतिसे अनुप्राणित थी। वदनाका चरित्र शरत् बाबूने इस नव्य दलकी प्रतिनिधिके रूपमे ही अकित किया है।

सामाजिक सुधारोकी प्रत्येक लहर अपने साथ कुछ बुराइयाँ भी लाती है। १९वी शतीके अतिम भाग तथा २०वी शतीके प्रारभमे बगालमे जो नारी-जागरण हुआ, उसमे भी सामाजिक बुराइयोका प्रवेश हुआ। इसके फलस्वरूप इस नव्य दलने जहाँ एक ओर शिक्षा तथा विवाह आदि सबधी सुधारोको अपनाया, वही दूसरी ओर उसमे बनावटीपन, मिथ्या सामाजिक मर्यादाएँ, प्राचीन परपराओका अकारण विरोध तथा इसी प्रकारकी कुछ अन्य कुरीतियाँ भी आ गई। तनिक गहराईसे देखनेपर इस वर्गके खोखलेपनका स्पष्ट मान होने लगा। 'विप्रदास' मे वदनाकी मौसी और उनके परिवारके अधिकाश व्यक्तियोका चित्रण इसी रूपमे हुआ है। इस वर्गके सदस्योने अपनी सस्कृति-मे जो कुछ भी अच्छा था, उसका त्याग करके, पाश्चात्य सस्कृतिके अत्यत सतही रूपको ही अपनाया। फलत उनके सामाजिक जीवनमे किसी भी प्रकारकी निष्ठा अथवा आस्था अवशिष्ट न रही, और उसका स्वरूप एकदम जर्जर हो उठा।

इस नव्य दलकी एक सदस्याके रूपमे वदना भी इन बुराइयोसे बची नही रही, उपन्यासके प्रारभमे उसका दृष्टिकोण हमे बहुत कुछ सतही दिखाई देता है। परन्तु उसकी आतरिक मर्यादाओके पूर्णत विघटित होनेके पूर्व ही उसे विप्रदास और उसके परिवारका साहचर्य मिल गया। यहाँ आकर उसने वह निष्ठा तथा आस्था पुन प्राप्त कर ली जो उसके अपने व्यक्तित्वमे नष्ट हो गई थी। और इस प्रकार उसके चरित्रमे पूर्वी तथा पश्चिमी सस्कृतिके तत्त्वोका उचित अनुपातमे सम्मिश्रण सभव हो सका। इस सानुपात सम्मिश्रणके कारण ही उसका व्यक्तित्व उपन्यासके मध्य-भागसे एकदम निखर उठा है। वस्तुत 'विप्रदास'की वदनाको जिस मोहक तथा प्रभावशाली रूपमे कथाकारने हमारे सम्मुख उपस्थित किया है, उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि शरत् बाबू नारीके रूपमे इसी समन्वयको वाछनीय समझते

थे। वदनाका चित्रण उपन्यासकारने यद्यपि वहुत तटस्थ होकर किया है, फिर भी इस चरित्रके प्रति उसके मनका आतरिक मोह छिप नही पाता।

रवीन्द्रनाथके अनुसार स्त्रियोकी दो जातियाँ होती है—एक तो माता, और दूसरी प्रिया। वदनाका व्यक्तित्व दूसरे वर्गके अतर्गत आता है। उसके व्यक्तित्वका एक अश कठोर होते हुए भी, उसकी संपूर्ण सुकुमारताको नष्ट नही कर पाता। उसका स्वभाव वहुत सरल तथा नि सकोच है प्रथम वार अपनी वहिनके घर आनेपर उसकी स्वच्छदता द्विजदासको चकित कर देती है। किशोरावस्था पार कर चुकनेपर भी वह अपने वावू-जीसे कहानी सुनती है, और इस तथ्यको सवके सम्मुख स्वीकार करनेमे उसे कोई लज्जा नही है। दुर्लभ सौंदर्यकी स्वामिनी होनेपर भी उसे इस वातका गर्व नही है। दूसरे लोग इससे अवश्य ही प्रभावित होते है। सतीका मत है कि 'वदनाकी ससारमे कोई अवहेलना नही कर सकता।'

वदनाके स्वभावकी कठोरता भी अपनी प्रकृतिमे वहुत सात्त्विक है। प्रथम भेटके समय विप्रदासके वहु प्रशसित परिचयको सुनकर वह उन्हे ज़मीनपर झुककर प्रणाम नही करती। उसकी माँसे अपमानित अनुभव करनेपर वह विना कुछ खाये-पिये ही तत्काल अपने पिताके साथ चल देती है। उसका यह हठ निश्चय ही उसके पिताके दुलारका परिणाम है। वे स्वय भी कहते है, "एकवार हठ पकडनेपर फिर यह उससे विरत नही की जा सकती।" विप्रदासके कलकत्तेवाले घरसे भी ठीक इसी प्रकारसे वह चल देती है, और अकेले पडे हुए द्विजदासकी तवीयत खराव है, इस वातकी भी चिता नही करती। ठीक इसके विपरीत एक वार अपनी मौसीके वहुत डराने-धमकानेके वावजूद वह रुग्ण विप्रदासको छोडकर, उनके घर जानेको तैयार नही होती। वदनाके इन व्यवहारोको देखकर लगता है कि कभी-कभी उसके कुछ अपने 'मूड' होते है, परन्तु इससे उसकी स्थायी विचारशीलताको कोई हानि नही पहुँचती। कभी-कभी जाग्रत होनेवाला उसका हठ उसका अपने पितापर अधिकार व्यक्त करता है।

वंदनाका यह चाचल्य तथा कठोरता, दोनो ही बहुत कुछ उसकी स्वाभिमानी प्रकृतिके कारण है। विप्रदास-जैसे व्यक्तित्वकी महत्ताको भी पूर्णत वह उपन्यासके अतिम अशोमे ही स्वीकार कर पाती है। दयामयीसे प्रारभमे रुष्ट हो जानेका प्रधान कारण उसके अभिमानको ठेस लगना ही है। बादमे विप्रदासके सम्मुख वह इस आत्मप्रतिष्ठाकी बात कहती भी है। इस आत्म-अभिमानके साथ उसके व्यक्तित्वमे एक आत्म अधिकारकी भावना भी मिश्रित है। विप्रदासका मैनेजर इस बातका भली भाँति अनुभव करता है, "विप्रदासकी आज्ञाकी अवहेलना करना कठिन है, यहाँ तक कि असभव भी कह सकते है, किन्तु इस अपरिचित लडकीकी सुनिश्चित, असदिग्ध आज्ञा न मानना भी कम कठिन नही है। प्राय उतना ही असभव है।" सौन्दर्य तथा विचार-शक्तिने मिलकर वदनाके व्यक्तित्वको एक अजब-सी दृढता दे रक्खी है, विप्रदासका सारा तेज भी उसकी इस दृढताको कही-कही नही दबा पाता।

अपनी शिक्षा-दीक्षाके अतिरिक्त वदनाका बौद्धिक स्तर काफी ऊँचा है। इसीलिए वाद-विवाद करनेकी शक्ति भी उसमे कम नही है। अपनी विचार-शक्तिके कारण ही वह दयामयीसे तिरस्कृत अनुभव करनेपर भी क्षमा माँगती है। अपने चिंतनको विप्रदासके सम्मुख व्यक्त करती हुई वह कहती है, "शायद मेरा यही स्वभाव है, हो सकता है कि मेरी अवस्थाके अनुकूल यही स्वधर्म है, हृदय शून्य नही रहना चाहता, छटपटाकर चारो तरफ घूमता रहता है। शायद सभी औरतोका स्वभाव ही ऐसा होता है; प्रेमपात्र कौन है, सारे जीवनमे भी खोजकर नही पाती अथवा यह खोजकर पा लेनेकी वस्तु ही नही है मुखर्जी—यह मृगमरीचिका है।" धर्म-अधर्म तथा सस्कारकी प्रकृतिके बारेमे भी उसने सोचा-विचारा है। जीवनके प्राय सभी पहलुओ-को लेकर उसने अपना निश्चित दृष्टिकोण बनानेका यत्न किया है।

पर इस सबके बावजूद वदनाका चरित्र घोर बुद्धिवादी नही है। 'चरित्र-हीन' की किरणमयी अथवा 'शेष प्रश्न' की कमलके समान अधिक तर्क करने-मे उसकी रुचि नही। जीवनको एक सुसस्कृत रूपमे स्वीकार किया जाये, यही उसकी प्रधान मान्यता है। इसीलिए हास्य-विनोद-प्रिय होते हुए भी

वह हल्के मजाको अथवा आक्षेपोको सुनना पसद नही करती। वैसे विप्रदास-के प्रति उसे हास्यात्मक उक्ति कहनेमे विशेप रस मिलता है। साधारणत. उसकी वातचीतमे एक सहज मिठास रहती है, जो अनायास ही सवको मुग्व कर लेती है। इसके अतिरिक्त सौजन्य उसके चरित्रका एक अनिवार्य अग वन गया है।

सतत स्नेहकी भावनाने वदनाके व्यक्तित्वको अत्यत मधुर तथा कोमल वना दिया हे। हठी स्वभाव होनेपर भी वह कभी क्रुद्ध नही होती। किसीके प्रति विरुद्धताका भाव उसके मनमे नही है। विप्रदाससे अप्रसन्न होकर मौसी-के यहाँ चली जानेपर भी, जव वह उनकी वीमारीका समाचार पाती है तो मौसीके यहाॅ के विवाह-समारोहको छोडकर वह सीधी उनके पास जा पहुँचती है। विप्रदासकी तो उसे इतनी अधिक चिता रहती है कि उनके सारे छोटे-वडे काम वह स्वय करती हैं। इस सेवाके लिए वह उन सारे आचरणोको करती है, जिन्हे वह कुछ दिन पहिले मिथ्या ढोग समझती थी। वस्तुत. जीवनमे सरलता तथा स्नेहकी भावनाको उसने अत्यत सहज रूपमे अपना रक्खा है। त्रुटि खोजते रहना उसे अच्छा नही लगता।

इस पूर्णत मनोवैज्ञानिक उपन्यासमे अन्य चरित्रोके प्रति वदनाकी प्रतिक्रियाएँ अत्यत महत्त्वपूर्ण हैं। अततोगत्वा द्विजदासकी पत्नी होनेपर भी, वंदना अपनी वहिनके पति विप्रदासको सवसे अधिक प्यार करने लगी है, यद्यपि प्रारभमे वह सजगरूपसे उसके प्रभावका तिरस्कार करती है। आगे चलकर उसे अपने पूर्व-व्यवहारपर लज्जाका अनुभव होता है। धीरे-धीरे विप्रदासके प्रति उसका आकर्पण वहुत कुछ श्रद्धाके रूपमे परिणत हो जाता है। फिर तो वह उसके प्रत्येक आचरणकी प्रशसक तथा यथा-सभव अनुयायी हो जाती है। यह उसके स्नेहाधिकारका ही परिणाम है कि अत्यत कट्टर विप्रदास उसके हाथका बनाया हुआ भोजन स्वीकार कर लेता है। वदना भी विप्रदाससे कोई वात छिपाती नही और उसके साथ रहनेमे उसे अत्यधिक सुख तथा शातिका अनुभव होता है। वस्तुत. वदनाके चरित्र-परिवर्त्तनमे विप्रदासका वडा हाथ है। जो वदना पहले आग्ल-सभ्यता-

की अव-भक्त थी, विप्रदासके सपर्कमे आकर अपनी जातीय सस्कृतिकी अनु-गामिनी वन जाती है। ऐसा लगता है मानो विप्रदासके समीप आकर उसका अधूरा चरित्र पूर्ण तथा सर्वाङ्गीण हो गया हो। अशोक विप्रदाससे कहता है "वदना मन-ही-मन आपकी पूजा करती है, इतनी भक्ति वह ससारमे किसी पर भी नही करती।" वदनाकी विप्रदासमे सचमुच अडिग निष्ठा है। वह उनको वचन देती है, "इस जीवनमे यदि और कभी दर्शन न पाऊँ, तो भी कहूँगी कि वे भ्रात नही है, उनके लिए शोक करना व्यर्थ है।" कभी समाप्त न होने वाली तीर्थ-यात्राके लिए जाते समय, वह उनसे कहती है, "कलकत्तेमे पूजाके कमरेमे आपकी जिस मूर्तिको मैंने छिपा रखा था, आज फिर वही मूर्ति मेरी दृष्टिमे पड गई है, वडे भैया! और मुझे शोक नही है, आपका पता ठिकाना भले ही न मिले। मन-ही मन जिस दिन पुकारूँगी, आपको आना ही पडेगा। आप जितना भी नही-नही करे, किसी दिन भी यह बात झूठी न होगी।" 'पथेर-दावी' मे जिस प्रकारका संवध सव्यसाची तथा भारतीमे है, वहुत कुछ उसी प्रकारका संवध विप्रदास तथा वदनामे भी है।

द्विजदासके प्रति वदनाका प्रेम अत्यत सहज तथा नैसर्गिक है। प्रारभसे लेकर अंत तक वह प्राय एकरस रहता है। इसको यह अपने व्यक्तित्वके एक अपरिहार्य अगके रूपमे स्वीकार करती है। द्विजदासकी सरलता वदना-को अत्यत ही प्रिय लगती है। उसकी इस निरीहताने ही वंदनाको जीत लिया है। अनेकानेक जटिलताओंके बावजूद सुधीर तथा अशोकको छोडकर वदना अतमे द्विजदासको ही पति-रूपमे स्वीकार करती है। इन दोनोंके पारस्परिक सवधमे न तो कोई जटिलता ही आई और न कोई विषमता ही। परंतु फिर भी इन दोनोकी एक दूसरेके प्रति प्रणय-भावना अत तक प्राय. मूक ही रही।

वंदना और दयामयीके पारस्परिक सवधमे कई प्रकारकी स्थितियाँ रही है। प्रारभमे वंदना दयामयी-द्वारा अपने आपको अपमानित अनुभव करती है। और इसके लिए वह कोई समझोता करनेको तैयार नही होती। पर धीरे-धीरे स्वयं ही वह उनकी गहरी स्नेहशीलतासे प्रभावित होती है। परन्तु यह सवध इस स्थितिमे वहुत दिनोतक चल भी नही पाता कि एकाएक

दयामयीको ज्ञात होता है कि वदनाका विवाह एक विजातीय युवकसे निश्चित किया जा चुका है। इसको जानकर उनकी विमुखताका कोई अत नही रहता। परंतु जब वदना स्वत सुधीरसे अपना सबध तोड लेती है तो वह फिर दयामयीकी विश्वास-भाजन हो जाती है। इसमे कोई सन्देह नही कि वदनाके अत्यत स्वच्छ आचरणोसे प्रभावित होकर ही कट्टर दयामयी इस 'म्लेच्छ लडकी'को अपना सकी। यह सचमुच वदनाके चरित्रकी एक बडी विशेपता है कि वह इस घोर सनातनी घरमे इतना आदर तथा स्नेह पा गई है। दयामयी उसको खोकर बहुत क्षुब्ध हो उठती है परतु जब फिर उसे पाती है तो उनके आनंदकी सीमा नही रहती।

वदना तथा सतीके सबधमे कभी किसी भी प्रकारकी विरुद्धता नही आती। सगी बहिन न होनेपर भी दोनोमे स्नेह अत्यत प्रगाढ है। सतीको अपनी बहिनके सौन्दर्य तथा गुणोपर गर्व है। वदना भी अपनी स्नेहमयी 'मँझली बहिन' का बहुत आदर करती है। यद्यपि यह सच है कि सती तथा वदना दोनो एक साथ कभी बहुत दिनो तक नही रही है, पर शरच्चद्रके पात्रोमें स्नेहकी गहराई समयके अनुपातसे निर्धारित नही होती। वदना सदैव सतीकी इच्छाओको ध्यानमे रखकर काम करती है। दोनोके बीचमे जो भावात्मक सामजस्य है, वह सचमुच स्पृहणीय है।

जैसा पहले भी सकेत किया जा चुका है, वदनाके चरित्रमे दृढता होते हुए भी उसके व्यक्तिगत व्यवहारमे काफी चाचल्य है। उसकी इस प्रवृत्तिको अग्रेजीमे 'फ्रीकिश' शब्द द्वारा भली भाति व्यक्त किया जा सकता है। क्षण भरके लिए कब उसका व्यवहार किसके प्रति कैसा हो जायगा, इसे कोई भी नही समझ सकता। आकर्पण तथा विकर्पण उसके मनमे बडी तीव्रतासे प्रवेश करते है, परतु किसीके भी प्रति सतत विकर्पण उसका स्थायी भाव नही है। उसके इस प्रकारके चचल व्यवहारका प्रधान कारण उसके व्यक्तित्वकी सरलता तथा स्नेहप्रियता है।

शरच्चद्रके नारी चरित्रोमे वदनाका स्थान अत्यत महत्त्वपूर्ण है। नारी-जाति सबधी उनकी विचार-धारामे वह उनकी अतिम मान्यताओ

तथा निष्कर्षोको प्रकट करती है। परिवार तथा तत्सबधी अन्य समस्याओको लेकर कलाकारके मनमे चलने वाला सघर्ष 'नव-विधान' मे अत्यत प्रमुख रूपसे व्यक्त हुआ है। वहाँ भी अँग्रेजी आचार-विचारोकी तुलनामे प्राचीन भारतीय परपराओको ही विजयी होता हुआ दिखाया गया है। 'विप्रदास' मे शरच्चद्रने इस प्रश्नको फिरसे उठाया है, और इस बार भी उनका निर्णय भारतीय सस्कृतिके ही पक्षमे रहा है। 'विप्रदास' की वदना प्रारभमे आग्ल सभ्यतासे पूर्णत प्रभावित होनेपर भी अपने बहनोईके सपर्कमे आकर स्वजातीय परपरागत मान्यताओको स्वीकार कर लेती है, जिन्हे वह कभी अत्यत घृणाकी दृष्टिसे देखती थी। रचना-क्रमके अनुसार 'विप्रदास' के पहले 'शेष प्रश्न'का स्थान है। 'शेष-प्रश्न'मे सस्कृतिके उपादानोके पूर्वी तथा पाश्चात्य रूपोके बीचमे चलनेवाला उपन्यासकारके मनका सघर्ष अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है। वहाँपर आशु बाबूके रूपमे स्वय उपस्थित होते हुए भी शरच्चद्र अपना मत ठीक-ठीक निर्धारित नही कर पाते। किन्तु 'विप्रदास' तक आते-आते उनका मन सुस्थिर हो जाता है, और विप्रदास तथा वदना के रूपमे वे सस्कृति तथा नारीके भारतीय रूपको ही स्वीकार करते है। और इस प्रकार सुधार तथा सस्कारमे गहन सघर्ष होनेके उपरात, शरच्चद्रके जन्मगत सस्कार ही अततोगत्वा विजयी होते है।

वदनाका चरित्र, बहुत आदर्शवादी धरातलपर हो, ऐसी बात नही है। वह अत्यत यथार्थ है, और यह यथार्थता ही उसे इतना मोहक बना देती है। मानव-जीवनकी सभी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ उसके व्यक्तित्वमे घुली-मिली है। दया, करुणा, उदारता, घृणा, क्रोध, सहानुभूति तथा 'प्रेजुडिस'—सभी उसके मनमे वर्त्तमान है। परन्तु उसके चरित्रकी आधारशिला मानव-जीवनकी उच्चतम प्रवृत्तियोसे ही निर्मित है। यही कारण है कि उसका व्यक्तित्व, आदर्शवादी न होते हुए भी, अत्यत मोहक तथा प्रभविष्णु है। परन्तु इतनी समीक्षाके उपरान्त भी आलोचकको यह स्वीकार करना पडता है कि वदनाका चरित्र इतना सुकुमार है कि उसके तत्त्वोका पर्याप्त रूपसे विश्लेषण बहुत कठिन है। गुलाबके फूलमें काटे भी होते हैं, और छोटे-

छोटे कीडे भी। परन्तु इन दोनोसे उसके सौंदर्य और उसकी मोहकतामे कोई अतर नही आता। वहुत कुछ ऐसी ही स्थिति 'विप्रदास' की वदना की भी है।

'विप्रदास' मे दूसरा प्रमुख नारी-चरित्र दयामयीका है। प्राचीन भारतीय सस्कृति तथा निष्ठा उनके व्यक्तित्वके प्रधान अग हैं। यह गहन निष्ठा व्यापक स्नेहशीलतासे संयुक्त होनेके कारण और भी प्रभविष्णु हो गई है। सनातन धर्ममे प्रचलित सभी आचार-व्यवहारोका वे कट्टरताके साथ पालन करती है। छूत-छातका विचार उन्हे वहुत अधिक रहता है। परन्तु उनकी इस आचरणप्रियताके पीछे कोई अधभक्ति नही है। वदनाके व्यवहार से संतुष्ट हो जानेपर वे इस 'म्लेच्छ लडकी' को रसोइघरमे जाने तक की आज्ञा दे देती है। वस्तुतः धार्मिक आचार-विचारोसे वद्ध होते हुए भी, उनके विचार वहुत सुलझे हुए है। अपने व्यवहारसे किसीके मनको ठेस न पहुँचानेका उन्हे वहुत ध्यान रहता है।

विप्रदासके प्रति उनकी ममताकी सीमा नही। सौतेला पुत्र होते हुए भी उसको वे अपने सगे पुत्रसे अधिक चाहती है। विप्रदासके प्रति उनका विश्वास अटूट है। केवल एक स्थानपर इन दोनोके सवंधमे व्याघात उत्पन्न होता है; परन्तु उपन्यासके समाप्त होते-होते माँ-वेटेकी स्थिति पूर्ववत् हो जाती है। द्विजदास प्रारभमे ही वदनासे कहता है, "सौतेली माँ है तो जरूर, किन्तु भैयाकी नही, मेरी है।" विप्रदासके निकट भी माँकी मर्यादा सवसे वडी चीज है। सचमुच एक-दूसरेके प्रति दोनोकी ही श्रद्धा अनुपम है। 'दयामयीके दो पुत्र है—वे ज्येष्ठके प्रति जैसी अगाध आशा और भरोसा रखती है, कनिष्ठ पुत्रके प्रति वैसे ही सदेह और भयकी भावना उनके मनमे वनी रहती है।'

द्विजदाससे दयामयी वहुत प्रसन्न नही रहती। उसके साथ तो वे स्वर्ग भी जानेको राजी नही। परन्तु फिर इससे उनके पुत्र-प्रेममे कोई अतर नही पडता, मन ही मन वे द्विजदासकी सुरक्षाका ध्यान रखती है। वदनाको द्विजदासकी पत्नी वनानेका भाव उनके मनमे इसीलिए आता है।

वदनाके प्रति दयामयीका भाव प्रारभमे कदाचित् कुछ अच्छा न होनेपर भी, उसके आचार-विचारको देखकर वे अत्यत प्रभावित होती है। इसके बाद तो इस म्लेच्छ लडकीके प्रति उनके स्नेह तथा विश्वासकी सीमा नही रहती। यहाँ तक कि जब उन्हे यह ज्ञात होता है कि उसकी तो सगाई पहले ही हो चुकी है, अत उसे वे द्विजदासकी पत्नी नही बना सकती, तो वे अपने आपको अत्यत क्षुब्ध तथा पराजित अनुभव करती है। इस पराजयकी भावनासे अभिभूत होकर वे झूठ-मूठ ही वदनाके सबधमे कुछ कडी बाते कह देती है। परन्तु फिर शीघ्र ही वे वदनाको अपने पास रखनेके लिए व्याकुल हो उठती है। उसके प्रति उनका ममत्व तथा विश्वास अक्षुण्ण रहता है। अपने भडारकी चाबी, जिसे वे सतीके अतिरिक्त और किसीको भी नही देती, अनायास ही वदनाको दे देती हैं। परन्तु यह सचमुच नियतिका व्यग है कि वदना को इतना अधिक चाहने पर भी, सासके रूपमे वह उसके निकट अधिक नही रह पाई।

दयामयीने स्वय भी अपनी मर्यादाको बहुत ऊँचा रक्खा है। इसीलिए उनका प्रताप भी वैसा ही है। परिवारसे सबद्ध कोई भी व्यक्ति उनकी उपेक्षा नही कर सकता। उनकी अनुपस्थितिमे भी उनकी इच्छाओका बराबर ध्यान रक्खा जाता है। इतनी बडी गृहस्थी उनके सकेतोपर चलती है। विप्रदास जैसा महिमामय व्यक्ति सदैव उनके आदेशोको सुननेके लिए तत्पर रहता है। परन्तु यहाँ यह स्मरणीय हे कि दयामयीकी मर्यादाकी आधार-शिला विप्रदासकी अटूट मातृ-भक्ति है। जिस दिनसे विप्रदास कल्याणी और शशधरके पीछे घर छोडकर चला जाता है, उसी दिनसे मानो दयामयी का तेजस्वी रूप विकृत हो उठता है। उनका पुत्री-प्रेम उनके अन्यायका कारण बना है। किन्तु उनके अन्यायने सबसे अधिक उन्हीके व्यक्तित्वको तोड दिया है। उनका 'सोने-सा रग काला हो गया है, माथेके छोटे-छोटे बाल रूखे हो गये है, धूलसे मटमैले है, आँखे धँस गई है, ललाटपर रेखाएँ पड गई है—दु ख और शोककी ऐसी व्यथाका चित्र वदनाने कभी नही देखा था।' ऐसा बिखरा हुआ व्यक्तित्व वैराग्यमे ही शाति पाता है। उपन्यासके अतमे विप्रदासके साथ ही दयामयी भी कभी समाप्त न होनेवाली तीर्थ-यात्राके लिए निकल पडती है।

विप्रदासकी पत्नी सतीका चरित्र जितना ही संक्षेपमे अकित किया गया है, उतना ही महिमामय भी है। अपने पति, देवर, बहिन, चाचा तथा सासके प्रति असीम श्रद्धा तथा स्नेह उसके व्यक्तित्वका मूल सूत्र है। देवरके प्रति उसकी ममता असीम है। मृत्युके समय वे द्विजदासके अतिरिक्त और किसी के लिए कुछ संदेश नही देती। यह शरत्‌की नारियोकी एक विशेषता है कि उनका स्नेह अप्रत्याशित स्थलोपर अभिव्यक्त होता है। दयामयीका सगा पुत्र द्विजदास है, परन्तु उनके स्नेह और विश्वासका भागी है सौतेला पुत्र विप्रदास। इसी प्रकार सती यद्यपि पत्नी है विप्रदासकी ,फिर भी उसका स्नेहाधिकार रहता है द्विजदासपर। घर-भरके विरुद्ध होने पर भी द्विजदास की देशभक्तिके कार्योमे सती उसकी सहायता करती रहती है। द्विजदास भी भाभीकी किसी आज्ञाका उल्लघन नही कर सकता।

सतीके इन स्नेह-सबधोने उसके व्यक्तित्वमे एक सौजन्यपूर्ण शक्ति भर दी है। उसके चरित्रकी दृढता तथा अकलुपताने ही उसे इतनी महिमा दी है। सहिष्णुता, विनय तथा शातिप्रियता उसके चरित्रके अन्य प्रमुख गुण हैं। किसी कठिनाईमे पड़कर उत्तेजित होना अथवा किसी विरुद्ध परिस्थिति मे क्रोध करना, उसके स्वभावके विपरीत है।

और इन सबके ऊपर उसकी अटल पति-भक्ति है। पहले तो वह विप्रदाससे कल्याणी आदिसे क्षमा माँगनेके लिए अनुरोध करती है; परतु प्रार्थना विफल होनेपर वह उन्हींके साथ घर छोडकर चली भी जाती है। पतिके हर कार्यके लिए वह स्वयंको भी उत्तरदायी समझती है। किसी परिस्थितिमे वह उनका साथ नही छोड सकती। यही नही, विप्रदासकी मौलिक सत्प्रवृत्तियोके ऊपर उसकी आस्था कभी रच-मात्र कम नहीं होती। उनसे कभी कोई अन्याय होगा, ऐसा वह सोच ही नहीं सकती।

वदना तथा द्विजदासके लिए उसके मनका अत्यत कोमल कोना सुरक्षित है। इन दोनो निरीह प्राणियोको वह अपने आँचलकी छायामे रखना चाहती है। यह सचमुच ही नियतिका कठोर व्यग है कि सती वदना तथा द्विजदासका विवाह न तो स्वयं देख सकी और न अतिम समयमे उसकी

कल्पना ही कर सकी। इन दोनोका विवाह हो जाय, यह उसके मनकी एकात साध थी। परन्तु उसके जीवन-कालमे यह साव अपूर्ण ही रह गई।

'विप्रदास' के कथानकमे अन्नदाका स्थान दासीका न होकर, परिवार के एक निकट सदस्यका है। उसकी विनय, कृतज्ञताकी भावना, स्नेहशीलता तथा कर्त्तव्यपरायणता उसके व्यक्तित्वको वहुत ऊँचा उठा देते है। कुशल उपन्यासकारोके कथानकोमे इस प्रकारके पार्श्व-चरित्रोकी योजना इसलिए की जाती है कि वे उपन्यासके अन्य पात्रो तथा पाठकोके मनमे मानवता तथा मानवीय सत्प्रवृत्तियोके प्रति आस्थाको अक्षुण्ण वनाये रख सके। अन्नदा का चरित्र अपने इस कार्यको अत्यत सफलतापूर्वक सपन्न करता है। उसका भद्र तथा सहिष्णु स्वभाव सवको प्रभावित करता है। उसकी गहन स्वामि-भक्ति मानवीय विश्वासको बल देती है। उसका अटूट स्नेह मानवीय सववोको मधुर तथा स्थायी वनानेकी प्रेरणा देता है। उसके व्यक्तित्वके अध्ययनसे लगता है मानो जीवनसे उसने सव कुछ पा लिया हो। कही, किसीके भी प्रति उसकी कोई शिकायत नही। उसकी व्यवहार-कुशलता तथा मधुर-सलापने उसे सवका प्रिय वना दिया है। मुखर्जी-परिवारकी तो वह अपरिहार्य सदस्य है। दयामयी, विप्रदास, द्विजदास, सती तथा वदना-ये सभी उसे वहुत चाहते है। और इसीसे जीवन तथा नियतिके प्रति उसकी कृतज्ञताका अत नही रहता।

मैत्रेयीका चरित्र हमारे सम्मुख एक सुशिक्षित तथा सभ्य नवयुवतीके रूपमे आता है। परन्तु उसके व्यक्तित्वका धरातल वहुत ऊँचा नही है। स्वार्थ तथा ईर्ष्या जैसी भावनाएँ उसके मनमे सहज ही मे प्रवेश पा जाती है। उसकी वुद्धि भी वहुत कुछ सतही है। उसके व्यक्तित्वमे वह गहराई नही, जो अनायास ही सवको प्रभावित कर लेती है। इस दृष्टिमे उनका चरित्र वहुत-कुछ औसत दर्जेका है। अपनेको तो वह अपना समझ सकती है, परन्तु दूसरेको अपना समझ सकने वाली व्यापक सहानुभूति उसमे नही है। उसके चरित्रमे वह स्नेहकी गहराई नही है, जो शरच्चद्रके नारी-पात्रोको इतना महिमामय वना देती है। वंदनाकी तुलनामें तो उसका व्यक्तित्व नितांत साधा-

रण-सा लगने लगता है। वस्तुत किसी भी प्रकारकी विशेषताका न होना ही उसके व्यक्तित्वकी सबसे बडी कमी है। उसका व्यक्तित्व स्वय अपने आपमे दोपपूर्ण न होने पर भी, मानव-जीवनकी उच्च भूमियोपर प्रतिष्ठित नही है। इसीलिए वदनाका स्मरण आते ही, मैत्रेयीका रूप अनायास ही कुछ-कुछ खल-नायिका-का-सा हो जाता है, यद्यपि स्वय उसका चरित्र इतना बुरा नही है।

'विप्रदास' के कथानकमे वदनाकी मौसीका चरित्र एक पड्यत्रप्रिय तथा कुटिल नारीके रूपमे अकित हुआ है। वे उस वर्गका प्रतिनिधित्व करती है, जो पर्याप्त अवकाश होनेके कारण दूसरोके कार्यमे हस्तक्षेप करके अपना छोटे-से-छोटा स्वार्थ साधना चाहती है। वदना जैसी सहानुभूतिमय लडकी भी उनकी इस प्रवृत्तिके कारण उन्हे घृणाकी दृष्टिसे देखने लगती है। वे अकारण ही दूसरे-से ईर्ष्या रखती है। उनकी मूल प्रवृत्ति अत्यंत सकुचित है। जीवनकी क्षुद्रताएँ उन्हे विशेष प्रिय है। अधिक बातूनी तथा कुटिल बुद्धिके कारण उन्हे अपने इस प्रकारके छोटे-बडे पड्यत्रोको रचनेमे विशेष कठिनाई नही होती। मिथ्या अभिमान तथा अनावश्यक कुतूहलकी भी उनमें कमी नही है। निष्ठा-हीन नव्य पश्चिमी सस्कृतिकी अनुगामिनी होनेके कारण, उनके जीवनमे अपने स्वार्थका स्थान सर्वोच्च है। दूसरेको समझ सकने तथा उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर सकनेकी शक्ति उनमे एकदम नही है। इस नव्य दलकी सस्कृतिका चित्रण शरत् बाबूने अत्यत व्यजनापूर्ण-ढगसे 'विप्रदास' मे किया है। एक ओर प्राचीन भारतीय सस्कृतिमे आस्था रखनेवाला विप्रदासका परिवार है, दूसरी ओर वंदनाकी मौसीका वर्ग है, जो अँग्रेजी सभ्यताके एकदम सतही रूपको अपनाकर पूजा-पाठ आदि को 'सुपरोस्टिशन' कहता है। अततोगत्वा विजय निष्ठाकी ही होती है, अपनी परपराओसे च्युत वदनाकी मौसी अपने पडयन्त्रमे सफल नही हो पाती।

दयामयीकी पुत्री कल्याणीका उपन्यासके कथानकमे विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान नही है। अपनी माँका कमजोर स्नेह उसे प्राप्त है, और इसीके बलपर वह सबको दबाती है। 'विप्रदास'के कथानकमे वह बडा मोड लाती है, इसमे

कोई सदेह नही, पर इसका मुख्य कारण उसका पति है, वह स्वय नही। वैसे उसका चरित्र बहुत ही साधारण है, दयामयीकी पुत्री तथा द्विजदास की बहिन लगने योग्य वह कुछ नही कर पाती।

वदनाकी मौसीकी लडकी प्रकृतिका तो एक आध-स्थलपर उल्लेख भर हुआ है। हाँ, हेमनलिनीके चरित्रके सबधमे अवश्य कुछ सकेत हमे मिल जाते है। वह भी वदनाकी मौसीके ही वर्गकी है। अग्रेजी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके उसने जीवनका बहुत सतही दृष्टिकोण ही अपनाया है। उसका चरित्र भी सभवत औसत दर्जेसे कुछ भी ऊपर नही है। बलरामपुरके वेटिंग-रूममे मिलनेवाली बैरिस्टर-पत्नीका भी हमे कुछ परिचय नही मिल पाता। उपन्यासकार केवल इतना ही कह कर रह जाता है कि पति के एकदम 'साहब' होते हुए, "सभवत तब तक भी वे मेम साहब न बन सकी थी।"

वस्तुत तो 'विप्रदास' तत्कालीन बगाली नारी-समाजके तीन वर्गोका एक मर्मस्पर्शी आख्यान है। पहला वर्ग तो वह है जो पूर्णत 'मेम साहब' बन चुका है, जैसे वदनाकी मौसी तथा उनके दलके अन्य लोग, दूसरा वर्ग वह है जो इस प्रकारसे 'मेम साहब' बननेके प्रयत्नमे है जैसे हेमनलिनी, और तीसरे वर्गकी प्रतिनिधि है वदना। यह वर्ग वह है जो 'मेम साहब' बनकर भी आतरिक शाति नही पाता, और अततोगत्वा फिर वापस आकर अपनी भारतीय परपराओको ही स्वीकार करता है। इन तीनो वर्गोका बडे सम्यक् दृष्टिकोणसे शरच्चद्रने परीक्षण किया है। और अतमे वंदना तथा द्विजदासका विवाह कराके मानो उन्होने पाश्चात्य तथा भारतीय सस्कृतिके उत्कृष्टतम-अशोके सगमकी महत्ता प्रतिपादित की है। इस सास्कृतिक सम्मिश्रणमे प्रधानता उन्होने अपने यहाँकी विचार-धाराको ही दी है। अतिम निर्णय-स्वरूप उपन्यासकारने स्वय भारतीय नारीके उस महिमामय स्वरूपको ऊँचा ठहराया है, जो 'सास, देवर, नौकर-चाकर, दासी-मजदूरिन, आश्रित-परिजन, ठाकुरबाडी, अतिथिशाला तथा गुरु-पुरोहित' सबको साथ लेकर चलता है। 'विप्रदास' के माध्यमसे जीवनको उसकी समग्रतामे स्वीकार करनेकी यह दृष्टि शरच्चद्रने बडे विश्वासके साथ हमे दी है।

शरत्‌के नारी पात्र : सामान्य प्रवृत्तियाँ

शरत् बाबू हमारे देशके अन्यतम विचारक एवं कलाकार हैं। वस्तुत वे कलाकारोमे महान् विचारक एव विचारकोंमे महान् कलाकार थे। उन्हें सच्चे अर्थोंमे जीवन-द्रष्टा कहा जा सकता है। उन्होने जीवनके मानसिक पक्षका ही अधिक अकन किया हैं, इसीलिए उनकी 'अपील' इतनी व्यापक है। मानव-मनोविज्ञानके तो शरत् आचार्य हैं ही, परन्तु यदि उन्हे प्रमुख रूपसे नारी-जीवनकी अनुभूतियोका विशेषज्ञ कहा जाय तो कदाचित् अधिक असगत न होगा। सृष्टिकी रहस्य-स्वरूपा नारीके जीवनकी जैसी सूक्ष्म परख शरत्‌को थी, वैसी हमारे देशके किसी साहित्यकारमे ही नहीं, वरन् किसी विदेशी कलाकारमे भी मुश्किल ही से मिलेगी। नारी-जीवन अपनी सभी अच्छाइयो और बुराइयोंके साथ जिस मार्मिक ढगसे शरत्‌की कृतियोमे अभिव्यक्त हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

एक आक्षेप:—

कुछ विद्वानोका यह आक्षेप है कि शरत्‌ने अपनी कृतियोमे उन्ही पुरुष-पात्रोको चित्रित किया है, जो नारी-हृदयकी महत्ताका शिकार हो चुके हैं, और यह अनुचित है। परतु यह धारणा उचित नही है, क्योकि भले ही आजके सामाजिक जीवनमे पुरुषकी महत्ता नारीसे अधिक बढी-चढी हो, फिर भी स्वय पुरुषके ही निर्माणमे नारीका बहुत बडा हाथ है, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता। जीवनके प्रारभिक वर्षोंमे व्यक्ति अपनी जननीकी क्रोडमे बनता-बिगडता है, फिर तरुणाईमें कदम रखते ही नारीके प्रिया-स्वरूपसे उसे प्रेरणा मिलने लगती है। इस प्रकार सामाजिक वातावरणसे प्रभावित होते हुए भी पुरुषके व्यक्तित्वकी गठनमे नारीका बडा उत्तरदायित्व है। बस इसी अनुपातसे शरत्‌ने अपनी रचनाओमे नारी-पात्रोको प्रधानता

ओर ." हम कह सकते हे कि शरत्की अधिकाश नारियोका प्रेम प्राय ऐसा ही है ।

शरत्-द्वारा अक्षय एव युग-युगातरसे चले आनेवाले प्रेमको दी गई मान्यता भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही है। उनके पुरुष-पात्रो एव नारी-पात्रोके बीचका पारस्परिक आकर्षण अनिर्वचनीय है। न जाने कौन-सी शक्ति उन लोगोको एक-दूसरेकी ओर खीचती है। कवि-कुल-गुरु कालिदासने "अभिज्ञान शाकुतलम्"मे कहा है—

"रम्याणि वीक्ष्य मधुराश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥"

अर्थात्—रम्य दृश्योको देखकर या मधुर शब्दोको सुनकर यदि कोई सुखी व्यक्ति भी उन्मना हो उठता है, तो इसका कारण यही समझना चाहिए कि उसे अपने पूर्व जन्मोके स्नेह-सबधोकी-जो अचेतन मनमे स्थिर भावोके रूपमे स्थित है—अनायास ही सुधि आ रही है।

पूर्व जन्मके इन्ही स्नेह-सबधोके आधारपर शरत्की अधिकाश प्रेम-कथाओकी सृष्टि हुई है, और शरत्के नारी-पात्रोका तो निर्माण ही शायद स्नेह एव ममताके परमाणुओसे सभव हो सका है।

पति-भक्त नारीः—

शरत्के नारी-समाजकी दूसरी प्रमुख विशेषता है उसकी अटल पति-भक्ति। वस्तुत उपन्यासकारके सभी प्रतिनिधि नारी-पात्रोके सस्कार नितात भारतीय हे। यद्यपि एकनिष्ठ प्रेमके सबधमे लेखक स्वय ही बहुत अधिक निश्चित नही हो सका, फिर भी उसके नारी-पात्रोके प्रेमकी पवित्रता-मे किसी प्रकारका सदेह नही किया जा सकता। यहाँ हमे "चरित्रहीन" की किरणमयी एव "शेष प्रश्न"की कमलको अपवाद स्वरूप मानना होगा। इस तथ्यके समर्थनमे स्वय शरत् बाबूकी स्वीकारोक्ति नीचे उद्धृत की जाती

है—"तुम्हारी यह बात मैं मानता हूँ। अन्नदा दीदीके प्रति वास्तवमे मेरी भी आतरिक श्रद्धा है। मेरे जन्मगत सस्कार आखिर भारतीय ही है।" ——(इलाचन्द्र जोशी · "साहित्य सर्जना"——पृष्ठ १४३) शरत्‌के नारी-पात्रोकी सामान्य पट-भूमिकी विवेचना करते समय हमे यहाँ इस बातका भी स्पष्ट उल्लेख कर देना होगा कि उपन्यासकारके पुरुष-पात्रोमे जितनी अधिक चरित्रकी विविधता द्रष्टव्य है, उतनी अधिक उनके नारी-पात्रोमे नही, क्योकि उनमे-से अधिकाशके व्यक्तित्व प्राय मिलती-जुलती भाव-धाराओसे अनुप्राणित है।

शरत्‌के नारी चरित्रोके अकनके सबधमे प्राय कहा जाता है कि उपन्यासकारने अपने पात्रोको सदैव ही विपत्तिके अथाह सागरमे निमज्जित होते दिखाया है, जो कुछ अस्वाभाविक है। ऐसे आलोचकोके अनुसार विपदापर विपदा पाठकको सहानुभूति निरपेक्ष बना देती है। इस सबधमे केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार जीवनके बाह्य क्षेत्रके पीडनका चित्राधार होनेके कारण प्रेमचन्दका "गोदान" हिन्दीकी सिरमौर कृति बन गया है, उसी प्रकार मानसिक व्यथाओका यथार्थ अकन करनेके कारण शरत् सहृदय साहित्यिकोके इतने निकटवर्ती हो गये है कि पाठक उनकी रचनाओमे अपने आपको ही बोलता हुआ पाते है। वस्तुत. शरत्‌के जीवनदर्शनमे दुर्बलताका नाम नारी नही है, वरन् उनके अनुसार तो जो विपत्तियोके सागरकी ऊँचीसे ऊँची लहरोसे होड ले सके, वही सच्चे अर्थोमे सहिष्णुताकी प्रतीक नारी कही जा सकती है।

पतित नारियोको उच्च स्थान——

इस स्थानपर शरत्‌के कृतित्व पर लगाये जानेवाले एक प्रसिद्ध आरोपपर भी कुछ विचार कर लेना अप्रासगिक न होगा। प्राय कहा जाता है कि अपनी रचनाओमे शरत्‌ने पतित नारियोको बहुत ऊँचा स्थान दिया है। "चरित्रहीन"की किरणमयी इसका ज्वलत उदाहरण है। परतु वास्तविक बात यह है कि उक्त आक्षेप दूरसे ही सगत प्रतीत होता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट जान पडेगा कि शरत्‌ने अपने जीवन-दर्शनमे नारीके

असत्-स्वरूपको कही भी प्रश्रय नही दिया हे। उसके प्रति सहानुभूति भले ही प्रकट की हो। "चरित्रहीन"मे किरणके प्रति सहानुभूति तो जाग्रत होती है, किन्तु उसके अनैतिक कार्योंके प्रति नही। उसकी व्यभिचार-बुद्धिके पीछे एक निश्चित सामाजिक कारण है, जिसे दूर कर देनेपर शायद एक सुधारककी दृष्टिमे उसका चरित्र इतना नीचे न गिरता। परतु आगे चलकर "शेप प्रश्न"मे तो एकनिष्ठ प्रेमको नितात निराधार सिद्ध किया गया है। इसका समाधान सामाजिक न होकर पूर्णत: मनोवैज्ञानिक है। आशुबाबू कहते है—"स्रोतके खिचावसे कौन कब पास आ जाता है और कौन कब दूर चला जाता है, इसका हिसाब कोई भी नही जानता।"

अस्तु, शरत्‌ने अपनी रचनाओमे पापके प्रति कही भी सहानुभूति प्रकट नही की है। "चरित्रहीन"मे प्रेमकी पवित्रताके ही कारण उपन्यासकारने सावित्रीको किरणमयीसे ऊँचा उठाया हे। किरण यदि हमारी सहानुभूति जाग्रत करती है तो सावित्री हमारी श्रद्धा। किरण एव सुरबालाकी तुलनाके समय भी सुरबाला ही हमे महिमामयी दिखाई देती है। सुरबालाके सुदृढ विश्वासके सम्मुख किरणको स्वय झुकना पडता है, यह सत्‌की असत्‌पर विजय है। नारीका पतित स्वरूप शरत्‌की समवेदनाका विषय हो सकता है, आदरका नही।

शरत्‌का नारी-समाज:—

नारीके सबधमे शरत्‌की कुछ विशिष्ट धारणाओका सक्षिप्त परिचय देनेके बाद अब हम उपन्यासकारके नारी-समाजका एक वर्गीकरण प्रस्तुत कर रहे है। यह वर्गीकरण नितांत वैज्ञानिक एव पूर्ण है, ऐसा तो नही कहा जा सकता, फिर भी इससे यह जाननेमे अवश्य सहायता मिल सकेगी कि शरत्‌ने नारीको मूलत किन-किन रूपोमे देखा। वर्गीकरण इस प्रकार है—

१. **स्नेहमयी माताएँ**—जिनमे-से कुछ अधेडावस्थातक वैधव्य प्राप्त कर चुकी है।

२. **कठोर प्रकृति एवं कटुवाणीकी गृहिणियाँ।**

३. **सीधी-सरल प्रेमिकाएँ**, अविवाहित, विवाहित एव विधवा, तीनो प्रकारकी।

४. **गहनतम रमणियाँ**—एकनिष्ठ प्रेमकी विरोधिनी।

५ **कर्कशा वृद्धाएँ**।

अब हम बहुत सक्षेपमे एक-एक वर्गकी अलग-अलग विवेचना करेगे। पहले वर्गके नारी-पात्र अपनी प्रकृतिमे अत्यंत कोमल-सजल है। उनका शरीर साधारण हाड-मासका बना हुआ है, परतु उनका व्यक्तित्व स्नेह एव ममतासे निर्मित है। इस वर्गकी जननीका वात्सल्य केवल अपनी सतान तक ही सीमित न रहकर, किसी भी बालक-बालिकाके लिए उमड सकता है। परोपकार बुद्धिका भी उसमे पर्याप्त विकास हुआ है। "मेजदिदि"की हेमागिनी, "परिणीता"की भुवनेश्वरी, "रामेर सुमति"की नारायणी एव "विप्रदास"की दयामयी—जैसी रमणियाँ इसी वर्गसे सबधित है। विधवा माताओका स्नेह और भी सार्वजनिक एव व्यापक हो जाता है। उनका हृदय उनके व्यक्तित्वकी अपेक्षा कही अधिक महिमामय है।

दूसरे वर्गके अतर्गत आती है कठोर प्रकृति एव कटु वाणीकी रमणियाँ। इनमे-से अधिकाशकी चारित्रिक सवेदना मूलत स्वार्थपरक होती है। उनमे रागात्मक भावनाओकी स्थिति तो अवश्य होती है, परतु उनके इस रागका विस्तार बहुत ही सीमित रहता है। इसीलिए उनके जीवनमे कटुता और कठोरता घर कर जाती है। लोभ और क्रोध, ये दोनो ही मनोविकार उनके ऊपर आधिपत्य जमाये रहते है। इस वर्गकी सबसे विशिष्ट प्रतिनिधि "मेजदिदि"की कादबिनी है।

तीसरे वर्गकी सीधी सरल प्रेमिकाएँ शरत्‌की कथाओमे प्रमुख रूपसे अकित होती रही है। भारतीय नारी-सुलभ गुणोकी समष्टि होनेके कारण इनका अकन प्राय. आदर्शवादके धरातलपर हुआ है। इनमे-से विवाहित रमणियाँ प्राय पति-भक्त तथा शील और स्नेहकी प्रतिमा है, जैसे "बिराजबहू"की विराज। इनके अदर प्रकृतिकी दृढ़ता निरपवाद रूपसे मिलती है। सरलता एव सौहार्द्र इनकी चारित्रिक विशेषताएँ है। कुछ प्रेमिकाएँ ऐसी

भी हैं जो अल्प अवस्थामे ही वैधव्यका दु ख भोग रही हैं। इनका व्यक्तित्व ऊपरसे निर्विकार, उदासीन रहता है, परन्तु उनके हृदयकी रागात्मिका-वृत्ति मुक्त होनेके लिए छटपटाती रहती है। समाजका भय उन्हे पग-पगपर सताता है, इसीलिए उनका चरित्र कुछ असहाय-सा जान पडता है। इस वर्गका उदाहरण हमे "वड दिदि"की माधवीमें मिलता है। निर्मल एव स्फटिक-सदृश प्रम इस वर्गकी सभी रमणियोकी प्रमुख विशेपता है। उपर्युक्त वर्गकी ठीक दूसरी ओर ऐसी नारियोका समाज है जिनका व्यक्तित्व नितात गहन है। यह नारीवर्ग भी मूलत. प्रेमिकाओका ही है, परन्तु ये प्रेमिकाएँ सीधी एव सरल न होकर अपनी प्रकृतिमे अत्यत जटिल हैं। प्राचीनके प्रति विरोध इनके चरित्रकी मूल सवेदना है। इनका चरित्र दृढ होते हुए भी अस्थिर, एव अस्थिर होते हुए भी दृढ है। किस समय ये क्या कर डालेगी, इसका कुछ भी पता पाठकको नही चल पाता। उनकी धमनियोमे नया रक्त है, और ऐसा जान पडता है कि स्वय उपन्यासकार भी उनके आवेगसे अभिभूत हो उठा है। इनकी नैतिक मान्यताएँ प्राचीन परम्परासे भिन्न, विद्रोहिणी प्रकृतिकी है। ऐसे नारी-पात्रोमे किरणमयी एव कमल सर्वप्रमुख हैं। "गृहदाह"की अचलाको भी इसी वर्गके अन्तर्गत रखा जा सकता है। पाँचवाँ तथा अतिम वर्ग है उन वृद्धा कर्कश स्त्रियोका जो सक्रिय जीवनसे अवकाश ग्रहण करके कलह-सग्राम एव वाग्-युद्धके लिए सदैव तत्पर दिखाई देती हैं। इनकी वुद्धि रचनात्मक न होकर विनाशात्मक है। इनके मानसिक सस्थानमे रागात्मक वृत्तियोका प्राय अभाव और ईर्ष्या-द्वेषका साम्राज्य है। अकारण क्रोध एव कलह उनके व्यवितत्वकी विशेषता है। समाजका यह वर्ग पारिवारिक तथा सामाजिक सुख-शाति-के लिए कितना घातक है, इसे शरत् बाबू भली भाँति समझते थे। प्रकृतिमे कठोर एव कटु होनेके साथ-साथ ये वृद्धाएँ अपनी वाणीमे भी कटु हैं। उनके वचनोका विप सहन करनेके लिए उपन्यासकारने शिवशकर सदृश जीवनका गरल पान करनेवाले, सहिष्णुता एव धैर्यके प्रतीक पात्रोका निर्माण किया है। अशिक्षाके वातावरणमे पले होनेके कारण ऐसी स्त्रियोका

चरित्र और भी तीखा हो गया है। इस वर्गके प्रतिनिधि पात्रोमे "रामेर सुमति"की दिगबरी, 'अरक्षणीया'की स्वर्णमजरी एव 'पडित मोशाइ'की वुढिया वैष्णवीकी गणना कर सकते हैं।

शरत्के नारी-पात्रोके उपर्युक्त वर्गीकरणके सबधमे एक बात कह देना आवश्यक है, और वह यह कि उपन्यासकारके ये नारीपात्र अपने-अपने वर्गो-का प्रतिनिधित्व करते हुए भी स्वय अपने व्यक्तित्वमे अपूर्व हैं। वस्तुत शरत्ने समान चरित्रोका नही, वरन् समानातर चरित्रोका अकन किया है। एक ही भाव-भूमिपर प्रतिष्ठित होते हुए भी दो पात्रोका चारित्रिक वैशिष्ट्य सदैव द्रष्टव्य है। "रामेर सुमति"की नारायणी, "विदुर छेले"की विंदो एव "मेजदिदि"की हेमागिनी, इन तीनोके ही व्यक्तित्व एक मूल सवेदनासे अनु-प्राणित होनेपर भी अपने स्वरूपमे अलग-अलग हैं। शरत्के चरित्र-निर्माण-का यह कौशल वस्तुत स्पृहणीय है।

विकासके तीन युग —

शरत्के नारी-पात्रोमे समानता न होते हुए भी उनके अदर एक निश्चित विकासकी धारा स्पष्ट दिखाई देती है। उपन्यासकारने अपरिपक्वावस्थामे नारीको किस रूपमे देखा, फिर परिणत वयमे उसकी धारणाएँ किस प्रकार वदली, और अतमे उन्होने अपने जीवनकी गोधूलि-वेलामे, जब वे समाजके सारे उतार-चढावसे परिचित हो चुके थे, नारीमे किस शातिका अनुभव किया, इसका क्रमिक विकास उनकी रचनाओमे भली-भाँति देखा जा सकता है। नारीके विकासकी दृष्टिसे शरत्के रचना-कालमे तीन युग माने जा सकते हैं —

प्रथम युग —वड दिदि—परिणीता

द्वितीय युग —चरित्रहीन—शेष प्रश्न

तृतीय युग —विप्रदास

अपनी रचनाओंके प्रथम युगमे शरत्ने नारीको अत्यत सरल, सजल एव स्नेहमय रूपमे देखा, प्राचीकी उषाके समान रगीन एव आकर्षक, परतु

उनके वढते हुए अनुभवने शीघ्र ही बता दिया कि नारीका स्वरूप वस्तुत. उतना कोमल तथा सीधा-सादा नही है, जितना वे समझते थे। इसीलिए उनकी रचनाओके द्वितीय युगमे नारीका व्यक्तित्व वहुत रहस्यमय हो गया, उसके अन्दर कुछ कठोरताका समावेश हुआ। ऐसा जान पडता है कि इस समय उनके मनमे नारीके प्राच्य एव पाश्चात्य रूपोंके वीच विजयके लिए संघर्ष चलता रहा, जिसकी चरम सीमा उनकी अमर कृति 'शेष प्रश्न'मे पहुँच गई। इस कालकी नारी मध्याह्नके समान प्रखर एव बुद्धिवादिनी है, किन्तु इसके उपरान्त तीसरे युगमे शरत् फिर अपनी प्राचीन भारतीय मान्यताओकी ओर बढे और उन्होने नारीको फिर वही प्राचीन श्रद्धा एव महिमा दी, जिसका मोहक अकन वे अपनी रचनाओके प्रथम युगमे कर चुके थे। इस कालमे उन्होने नारीका शान्तिप्रद रूप अकित किया, जैसे प्राचीकी उषा अपने उन्ही रगोके साथ आकर प्रतीचीकी संध्यामे कुछ अधिक गहरी, गभीर एव मौन हो जाय! जीवनकी इस गोधूलि-वेलामे लेखकने "विप्रदास"की दयामयी-जैसे चरित्रकी अवतारणा की, जो अनायास ही हमारे मनमे उस निष्काम भाव एव शान्तिका सचार करता है, जो शारीरिक एव मानसिक विकारोमे भरे-पूरे उपन्यासमे किसी भी कलाकार-द्वारा मुश्किलसे अंकित हो पाता।

शरत्‌के नारी-चित्रणको लेकर उनके कृतित्वपर ही नही, उनके व्यक्तित्व पर भी कुछ गभीर आरोप लगाये गये हैं। पतित स्त्रियो एवं वेश्याओके प्रति उनकी सहानुभूति देखकर लोगोने उनके आचरणको नैतिकतासे विहीन समझा। अपनी चर्चाको समाप्त करते हुए हम स्वय इस सबधमे कुछ न कहकर, स्वय लेखककी अपने सबधमे एक उक्ति उद्धृत करेगे। अपने एक मित्रकी उक्त शकाका उत्तर देते हुए उन्होने कहा था—"नारी जाति सबधे आमार चरित्र कौन कालेउ उच्छृखल छिल ना, एखनउ नय।"

अर्थात्, नारी जातिके सबधमे हमारा चरित्र कभी उच्छृखल न था, और न अब है।

परिशिष्ट—२

शरत्के अपेक्षाकृत गौण नारी-पात्र

शरच्चद्रने अपने उपन्यासो तथा अपेक्षाकृत वडी कहानियोमे नारी-चरित्रका जो सागोपाग वर्णन किया है, उसका विश्लेषण हम प्रस्तुत पुस्तकके अध्यायोमे उपस्थित कर चुके हैं। इस परिशिष्टके अतर्गत हम कथाकारके उन नारी-चरित्रोका विवेचन करेगे जो उनकी अपेक्षाकृत गौण कथाकृतियोमे मिलते हैं। इन नारी-चरित्रोकी अभिव्यक्ति जीवनकी समग्रतामे न होकर उसके किसी अग-विशेषमे हुई है। नारीके रूपकी वह विशदता जो शरत्के प्रमुख कथा-साहित्यमे अत्यत सहज रूपसे मिलती है, उनकी इन लघु कहानियोमे स्वभावत ही नही है। इन सक्षिप्त कथा-कृतियोका यह उद्देश्य भी नही है। इनके माध्यमसे तो कलाकारने नारी-जीवनकी कुछ झॉकियोको हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है।

• आलोच्य कथा-कृतियोमे-से 'शुभदा'को छोडकर, शेष रचनाओको आकार तथा वर्णन-विशदता—दोनो ही दृष्टिकोणोसे कहानी माना जायेगा। दो-एक कथा-कृतियोको लघु-उपन्यास भी कहा जा सकता है। पुस्तकके प्रधान खड तथा इस परिशिष्टको मिलाकर शरत्के सपूर्ण नारी-समाजकी व्याख्या हो जाती है। अवश्य ही शरच्चद्रकी उन रचनाओको हमने अपनी समीक्षामे सम्मिलित नही किया है, जिन्हे वे स्वय पूरी नही कर सके थे।

इस परिशिष्टसे सबद्ध कथाकृतियोको भी पूर्वयोजनानुसार समयानुक्र-मणिकाके आधारपर ही क्रमवद्ध किया गया है। इन रचनाओके संवधमे सस्करण आदिकी सूचनाएँ नही दी गई हैं, क्योकि विस्तृत विवेचन न होनेके

कारण इसकी आवश्यकता नही समझी गई। वैसे 'शुभदा'को छोडकर, जो इडियन प्रेस, प्रयागसे प्रकाशित हुई है, इस परिशिष्टसे सबद्ध शरत्‌की अन्य रचनाओके सस्करण हिंदी ग्रथ रत्नाकर, बबई-द्वारा प्रकाशित प्रयुक्त किये गये है। इन रचनाओके प्रथम प्रकाशन आदिकी सूचना पुस्तकके अतमे दी हुई शरच्चद्रके कथा-साहित्यकी समयानुक्रमणिकासे मिल सकती है।

१. मंदिर

इस कहानीमे एक धनिक जमीदारकी कन्या अपर्णा तथा उसके कुल-पुरोहितके लडके शक्तिनाथकी हृदय-स्पर्शी प्रणय-कथा अंकित हुई है। शरत् बाबूकी इस प्रथम रचनासे ही स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने स्त्री-पुरुषके सतत् आकर्षणको चित्रित करनेमे उच्छृखलताको कही भी नही आने दिया है। 'मदिर' मे अपर्णाका शक्तिनाथके प्रति प्रेम कहानीके अतमे ही स्पष्ट रूपसे प्रकट होता है, जब वह मृत शक्तिनाथकी दी हुई स्नेह-भेट-को देवताके चरणोमे रखकर रोती हुई कहती है, 'भगवान्, मै जिसे नही ले सकी, उसे तुम ले लो। अपने हाथोसे मैने कभी पूजा नही की, आज कर रही हूँ—तुम स्वीकार करो, तृप्त होओ, मेरे और कोई कामना नही है।'

विवाह हो जानेपर अपर्णा पतिके घर जाती है, पर वहाँ भी उसे शाति नही। पति-पत्नीके बीचमे एक अज्ञात अवरोध रहता है, जो दोनोको समीप नही आने देता। अपर्णा अपनी सारी सरलता तथा सच्चरित्रताके बावजूद अपने पतिको स्वीकार नही कर पाती। और उनकी मृत्युके उपरात वह अपने प्रथम-प्रिय शक्तिनाथका भी तिरस्कार कर देती है। अप्रकट प्रणयका अभिमान तीन जीवनोको नष्ट कर देता है। इस सबसे अपर्णाके हृदयकी दुर्बलता तथा अव्यावहारिकता सिद्ध होती है। जीवनके व्यापक स्वरूपको स्वीकार कर पानेकी शक्ति उसमे नही है, और इसके लिए असीम दुखका भार भी उसे उठाना पडता है।

२. काशीनाथ

इस अपेक्षाकृत लबी कहानीकी नायिका है कमला। बड़े जमीदारकी एकमात्र पुत्री होनेके कारण वह बडे लाड-प्यारसे पाली गई है। उसका

विवाह एक ऐसे व्यक्तिसे हुआ है, जिसके मनमे ससारके प्रति आसक्तिसे अधिक अनासक्ति है। फलत पति-पत्नी दोनोके चाहते हुए भी उनका वैवाहिक जीवन सुखमय नही हो पाता। कमला सभी सभव प्रयत्नोके बावजूद काशीनाथको अपनी ओर आर्कषित करनेमे असमर्थ रहती है। यह पराजय उसके मनमे विद्रोह तथा प्रतिशोधकी भावनाको जन्म देती है। उसका चरित्र इतना आदर्शात्मक नही है कि पतिसे प्रकट प्रणय न पाने पर भी वह मन ही मन उसकी पूजा करती रहे। एक बार विरुद्ध होनेपर वह सब प्रकारसे काशीनाथके मनको दु ख पहुँचानेका यत्न करती है। यहाँ तक कि शारीरिक यातनाका भी अतमे षड्यत्र कर डालती है। परतु यहीसे पति-पत्नीके मनमे सुप्त प्रणय एकबारगी जाग उठता है। और यह दुर्घटना ही दोनोको एक-दूसरेके समीप ले आती है।

कहानीमे नायककी मामीका उल्लेख हुआ है एक साधारण स्त्रीके रूपमे, और विदुवासिनीका अकन हुआ है काशीनाथकी स्नेहमयी ममेरी बहिनके रूपमे। कमला तथा काशीनाथको एक-दूसरेके समीप लानेमे विदुवासिनीका बडा हाथ है।

३. बोझ

'बोझ' मे दो प्रमुख नारी-पात्र है—सरला और नलिनी। सरलाका विवाह बहुत छोटी अवस्थामे सत्येन्द्रसे हो गया है। वह अपने पतिको हृदय-से चाहती है, और उसकी सभी छोटी-मोटी सुविधाओका ध्यान रखती हैं। पतिके लिए उसका निश्छल प्रेम असीम है। परतु इस सरल स्नेहका अत बहुत शीघ्र हो जाता है। रोगाक्रात होकर सरलाकी मृत्यु हो जाती है। और तब सत्येन्द्रका दूसरा विवाह होता है। नई बहूका नाम है नलिनी। पर वह सरलाकी यादसे पीडित रहता है। नलिनीको अपने पतिका भरपूर प्रेम नही मिल पाता। परतु समय बीतनेपर अपने कठोर धैर्यके फलस्वरूप वह सत्येन्द्रके मनको जीत लेती है। पतिके मनको पहिचाननेकी शक्ति उसमे है। सहानुभूति तथा बुद्धिमत्ताकी भी उसके व्यक्तित्वमे कमी नही।

इस प्रकार कुल मिलाकर उसका चरित्र काफी सशक्त है। परंतु इतने पर भी अपने अभिमानपर वह पूर्णत. विजय प्राप्त नही कर पाती, और यही उसकी असीम वेदना तथा अततोगत्वा उसकी मृत्युका कारण बनता है। सत्येन्द्रका तीसरा विवाह होनेपर वह नव वधूको अपनी अँगूठी उपहार-स्वरूप भिजवाती है। यह उसकी व्यापक सहानुभूति तथा सहिष्णुताका प्रमाण है।

'बोझ' मे कई अन्य नारी-पात्रोका उल्लेख हुआ है। मातो नलिनीके मायकेकी नौकरानी है। जैसी वह स्नेहमय है, वैसी ही स्पष्ट-वक्ता भी। सत्येन्द्रकी माँ स्नेहमयी गृहिणी है; नलिनीके प्रति उनकी विशेष ममता है। गिरिबाला, राजबाला, नृत्यकाली तथा योगमाया गाँवकी लडकियाँ है। दूसरोकी चर्चा करनेमे उन्हे सुख मिलता है। रासमणि नाईकी लडकी है। अकारण चारित्रिक दोष देखने तथा उसे प्रचारित करनेमे उसका मन अधिक लगता है। विधु सत्येन्द्रकी तीसरी पत्नी है, परतु कहानीमे केवल उसका नामोल्लेख भर मिलता है।

४. पथ-निर्देश

इस अपेक्षाकृत लबी कहानीमे दो प्रधान नारी-पात्र है—सुलोचना और उसकी पुत्री हेम। सुलोचना विधवा है, तथा अपनी स्थिति-जन्य कठिनाइयोको सहन करनेके लिए उसमे पर्याप्त धैर्य है। विरुद्ध परिस्थि-तियोमे घबरा जानेवाला स्वभाव उसका नही है। उसके चरित्रमे मानवीय सहानुभूतिकी भी कमी नही है। अपने पडोसीके लडके गुणेन्द्रकी माँ की मृत्यु हो जाने पर सुलोचनाने ही उसकी देख-भाल की है। अपने धार्मिक आचरणोका सतर्कताके साथ पालन करते हुए भी वह दूसरोके अन्यथा व्यवहारके प्रति असहिष्णु नही होती। परतु यह धार्मिक कट्टरता केवल एक बार उसे धोखा देती है, और वह तब, जब कि अपनी पुत्री हेम तथा गुणेन्द्रका मूक स्नेह देखकर भी वह उन्हे विवाहके सूत्रमे बँधने नही देती। बादमे उसे इसका पश्चात्ताप भी होता है। मृत्यु-पर्यत वह इस व्यथासे

मुक्त नही हो पाती। अपनी एक-मात्र पुत्रीको विधवा बनानेके लिए वह स्वय उत्तरदायी है, इस बातको वह एक क्षणके लिए भी अपने मनसे नही निकाल पाती।

हेम इस कहानीकी नायिका है। स्वभावसे ही वह अभिमानिनी तथा दृढ है। माँके प्रति उसकी भक्ति असीम है, यद्यपि अपने विवाहके उपरात वह सुलोचनाके लिए कुछ चिडचिडी-सी रहने लगती है। गुणेन्द्रसे प्रेम करते हुए भी वह उससे विवाह नही करती, क्योकि वह ब्रह्मसमाजी है, और इस प्रकारके विवाहमे उसकी माँकी सम्मति नही मिल पाती। समाजके मिथ्या बधनो तथा गहरी मातृ-भक्तिकी भावनाने उसके सपूर्ण जीवनको दु खमय बना दिया है। विधवा हो जानेपर, माँ की अप्रकट इच्छा रहते हुए भी, वह फिर गुणेन्द्रको स्वीकार नही कर पाती। उसकी इस विवशताके दो कारण है—एक तो उसका प्रच्छन्न आत्माभिमान तथा दूसरे सामाजिक रीति-नीतिके प्रति उसकी आस्था। वह अपने वैधव्यके दु खको धार्मिक आचरणोमे भुला देना चाहती है, परतु इसमे भी उसे शाति नही मिलती। प्रणयकी गहरी व्यथाने उसके जीवनको अर्थ-हीन बना दिया है। अध्ययन-मननमे उसकी विशेष रुचि रही है, परतु इसमे भी अब उसका मन नही लगता। मनोवेगो तथा परपराओके सघर्षमे उसका चरित्र उलझ गया है। उसका व्यक्तित्व नितात अशक्त नही है, पर उसके अदर वह निरपेक्ष दृढता भी नही है, जो मिथ्या बधनोको सहज ही मे तोड देती है। सस्कारोने उसे इतना जकड लिया है कि बहुत यत्न करनेपर भी वह उनसे मुक्त नही हो पाती।

'पथ-निर्देश' की मानदाका चरित्र उन दासियोके वर्गके अतर्गत आता है, जो अपने स्वामीके घरमे एक पारिवारिक स्वजनका स्थान पा लेती है। वह अपने दायित्वको समझनेवाली, ईमानदार तथा बुद्धिमती है। गुणेन्द्र-की किसी मौसीके लडके आदिका अत्याचार सहन करके भी वह अपने रुग्ण स्वामीको नही छोडती। हेमनलिनीके प्रति उसके मनमे विशेष ममता है।

गुणेन्द्रकी मौसी उन नितात स्वार्थी परिजनोमे-से है जो केवल धन के आधार-पर अपन सबधोको निर्भर करते है। वे स्वाभाविक स्नेह तथा सहानुभूतिसे हीन है, तथा उनके व्यवहारमे केवल कृत्रिमता है।

५. प्रकाश और छाया [आलो ओ छाया]

'पथ-निर्देश' तथा 'प्रकाश और छाया'की मूल कथामे कोई विशेप अतर नही है। अपूर्ण प्रेमकी ही कहानी दोनोमें है। 'प्रकाश और छाया'-मे दो प्रमुख नारी-पात्र है—सुरमा तथा प्रतुल। सुरमाका व्यक्तित्व काफी गभीर तथा ऊँचे स्तरका है। विधवा वैष्णवी होनेके कारण वह यज्ञदत्तसे प्रेम करती हुई भी उससे विवाह नही करती, और तव, जव कि स्वय यज्ञदत्त उसे अपनी पत्नी वनानेके लिए वहुत इच्छुक है। परतु इतनेपर भी इन दोनोका प्रेम शब्दोमे अभिव्यक्ति नही पाता। सुरमामे आत्म-त्यागकी भावना इतनी प्रवल है कि वह यज्ञदत्तका विवाह जिद करके प्रतुलके साथ करवा देती है, और इसके वाद भी यह उसकी हार्दिक इच्छा रहती है कि इन दोनोका वैवाहिक जीवन सदैव सुखमय रहे। अदरके उमडते हुए भावोको वह सदैव नियत्रित रखती है। सयम तथा निष्ठा उसके व्यक्तित्व-मे एकदम सहज हो गई है। यज्ञदत्त अपनी सगाई एक वार करके फिर उसे तोडनेके लिए भी तत्पर हो उठता है, पर सुरमा उसे ऐसा नही करने देती। वह कहती है, "नही, सो नही हो सकता, दुखिया लड़कीको सुखी करना है, यह भी तो जरा सोचो; खासकर, वचन देकर मुकरोगे ?" सुरमाके अदर एक ऐसी कृतज्ञताकी भावना है, जो उसे विकल नही होने देती। अपने अपूर्ण प्रेमके कारण उसका व्यक्तित्व असतुलित नही हो पाता।

प्रतुल यज्ञदत्तकी पत्नी है। उसका चरित्र इतना सीधा तथा सरल है कि यही उसकी एकमात्र विशेषता है। जीवनके अधिकांश व्यवहारोसे अनभिज्ञ यह अबोध लडकी सबके प्रति अपनी आस्था रखती है। अभियोग-की भापा उसे आती ही नही। वह वहुत कम वोलती है और सदैव काम-काजमे लगी रहती है। 'बैठा रहना उसने सीखा ही नही।' वह वस्तुत-

इतनी अधिक निर्दोष तथा सरल है कि इस कहानीकी ट्रैजडीका अधिकाश दायित्व उसीके ऊपर आता है। यदि इतनी निरीह न होकर वह स्वय भी अपने व्यक्तित्वको प्रकाशमे लानेकी चेष्टा करती तो यज्ञदत्तका, सुरमा-का तथा स्वय उसका जीवन वहुत सुखमय हो सकता था।

'प्रकाश और छाया' मे यज्ञदत्तकी वुआका वहुत साधारण उल्लेख हुआ है। उनका जितना चरित्र इस कहानीमे अकित हुआ है, उससे उनके व्यक्तित्वकी किसी विशेषता पर प्रकाश नही पडता। वे केवल एक सीधी, सरल तथा स्नेहमयी स्त्रीके रूपमे दिखाई देती है।

६. अनुपमाका प्रेम [अनुपमार प्रेम]

अनेक प्रकारकी प्रेम-कथाओको पढ-पढकर एक नवयुवतीका मन किस प्रकार असतुलित हो जाता है, इसका अत्यत यथार्थ चित्रण इस कहानी-मे हुआ है। अनुपमाके व्यक्तित्वमे भावनाओ तथा बौद्धिकताका उचित सामजस्य नही हो सका है। जीवनके व्यावहारिक पक्षको वह विलकुल नही समझ पाती है। प्रेमकी वेदना ही मानो उसका सर्वस्व है। 'वह समझती है कि मनुष्यके हृदयमे जितना प्रेम, जितनी माधुरी, जितनी शोभा, जितना सौंदर्य, जितनी तृषा है, सवको वीन-वीनकर इकट्ठा करके मैने अपने मस्तिष्कके भीतर सहेजकर रख लिया है, मनुष्य-चरित्र और मनुष्य-स्वभाव मेरे लिए नख-दर्पण हो गया है।' इतने मिथ्या अभिमानके साथ अनुपमा जव जीवनकी गहराइयोमे उतरती है तो उसे पता चलता है कि उसने कितनी बडी भूल की है। परतु व्यक्तित्वमे दृढता न होनेके कारण वह अपने आपको सुधार भी नही पाती। जीवनकी अनेक विषमताओका सामना करनेका साहस न होनेके कारण केवल एक आत्महत्याका ही मार्ग उसके सम्मुख खुला रहता है। 'प्रेमकी जोगिन' वननेकी तीव्रतर भावनाने उसके जीवनको एकदम विशृखल वना दिया है। सव ओरसे निरुपाय होकर वह प्राणात करनेकी चेष्टा करती है, परन्तु ऐसा हो नही पाता। उसका एक वाल्य सहचर, जिसके प्रणय-निवेदनको वह कई वार ठुकरा चुकी थी, तालावमे कूदकर उसे वाहर निकाल लाता है।

कहानीमे अनुपमाकी भाभीका चित्रण एक अत्यत साधारण कोटिकी स्त्रीके रूपमे हुआ है। जबतक अनुपमाके माता-पिता जीवित है, तबतक वह उसके साथ बडा अच्छा व्यवहार करती है, परतु उनकी मृत्युके बाद वह अपनी विधवा ननदको घरकी दासियोसे भी नीचा समझने लगती है। अपने पति तथा बच्चोको छोडकर वह किसीको भी अपना नही समझती। सामान्य स्नेह तथा करुणासे एकदम विहीन होनेके साथ-साथ उसके व्यक्तित्वमे असहिष्णुता अधिक है। केवल स्वार्थ-सिद्धिमें लगे रहना ही उसके जीवनका परम उद्देश्य है।

अनुपमाकी माँ, सुरेशकी माँ तथा ललितकी माँ, इन तीनो गृहिणियों-का कहानीमे यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। अपनी सतानके प्रति असीम स्नेह इनके चरित्रका मूल सूत्र है।

७. दर्पचूर्ण

'दर्पचूर्ण'मे इदुमती तथा विमला इन दो सखियोका चरित्र अत्यत स्वाभाविकताके साथ अकित हुआ है। दोनोका व्यक्तित्व एक दूसरेका विरोधी-सा है। इस कहानीमे पति-पत्नीकेसबधकी भारतीय तथा पाश्चात्य धारणाओका तुलनात्मक अध्ययन हुआ है। इदुमती पाश्चात्य सभ्यता तथा सस्कृतिकी अनुगामिनी है, विमला भारतीय परपराओको मानकर चलनेवाली है।

विदेशी सस्कृतिके सतही रूपको ही अपनाकर सतुष्ट हो जानेवाली नारियोमे-से इदुमती एक है। जातीय विशेषताओका वह तिरस्कार कर चुकी है, और अपनी प्राचीन परपराओसे पूर्णत मुक्त न हो पानेके कारण वह अंग्रेजी रीति-नीतिमे एकदम घुल-मिल भी नही सकी है। इन दो विचार-धाराओके बीचमे उलझ जानेके कारण उसका जीवन निष्ठाहीन हो गया है। उसके व्यक्तित्वमे किसी गहरी आस्थाका अभाव है, और इसीलिए अपने जीवनमे वह सतोष अथवा शातिका अनुभव नही कर पाती।

इदुमतीका स्वभाव चिडचिडा है। ज़रा-जरा-सी बातपर वह झुझला उठती है। पति-भक्तिके भारतीय आदर्शसे उसे चिढ है, वह नारीके समान अधिकारोका समर्थन करती है। अपने मिथ्या अभिमानके कारण ही उसका गार्हस्थ जीवन सुखमय नही हो पाता। पतिकी अनेकानेक चेष्टाओके बावजूद वह उनसे असतुष्ट ही रहती है। अपने नारीत्वके आदर्श-को वह गलत स्थानोमे खोजती है। फलत. उसके जीवनमे सरसता, स्नेह तथा सामजस्य नही है।

विमलाका चरित्र इसके काफी विपरीत है। वह इदुके पति नरेन्द्रकी ममेरी बहिन है। अपने भैया तथा भाभीके प्रति उसका अत्यत गहरा स्नेह है, तथा पतिके लिए उसकी श्रद्धा अपरिसीम है। पति-प्रेमने उसके व्यक्तित्वको बहुत मधुर तथा सरस बना दिया है। उसके मनमे किसीके प्रति विरुद्धता नही, इसीलिए उसके जीवनमे एक सतुलन है। ससारसे असतुष्ट न होकर, मानव-जीवनके प्रति कृतज्ञता उसके हर कार्यमे परि-लक्षित होती है। स्वभावसे मिष्टभाषिणी विमला कभी आवेशमय नही होती। ऐसा जान पडता है मानो जीवनके रहस्यको समझ पानेकी कुजी उसे मिल गई है। इदुकी तुलनामे तो उसका चरित्र और भी निखरा दिखाई देता है।

'दर्पचूर्ण'मे अबिका बाबूकी पत्नीको पार्श्व-चरित्रके रूपमे अकित किया गया है। अपने रुग्ण पतिके प्रति उसकी अगाध भक्ति सचमुच सराहनीय है। अवस्था कम होने पर भी जीवनकी अनेकानेक कठिनाइयोसे वह डरती नही। सघर्षोमे पडनेका आनद कितना अधिक है, इसे वह भली भाँति जानती है। इसीलिए जीवनके प्रति अकृतज्ञता की भावना उसके व्यक्तित्व-मे भी नही दिखाई देती।

८. अंधकारमे आलोक [आँधार आलो]

'अधकारमे आलोक' एक नर्त्तकीकी असफल प्रणय-कथा है। इस कहानीमे दो प्रमुख नारी-पात्र है—बिजली बाई और राधा रानी। बिजली

वाई कलकत्तेकी प्रसिद्ध वारागना है, युवक सत्येन्द्रको उसने सारे अत करण-मे चाहा है। राधा रानी सत्येन्द्रकी पत्नी है। इन दो नारियोंके पारस्परिक मनोभावोको इस कहानीमे अत्यत सूक्ष्मताके साथ अकित किया गया है।

विजली वाईका व्यवसाय तो है नाचना-गाना, पर उच्चतम साहित्यिक कृतियोसे उसे विशेष अनुराग है। इसीलिए वारागना होते हुए भी उसकी रुचि काफी परिष्कृत है। सत्येन्द्रके प्रति उसका अज्ञात प्रेम है। इस अज्ञात प्रेमकी खोजके कारण ही प्रेमके वशीभूत सत्येन्द्रको घरपर वुलाकर वह उसका अनादर करती है, परतु इसके वाद जव दृढभक्त सत्येन्द्र कभी उसके पास नही जाता तो उसके रूपका गर्व चूर-चूर हो जाता है। उसका असफल प्रणय आत्मोत्सर्गमे परिणत होता है, और शेष जीवनके दिन वह अपने व्यवसायको छोडकर सत्येन्द्रकी स्मृतिमें ही विता देती है।

राधारानी एक कोमलमना गृहस्थ नारी है। छोटी अवस्थामे ही वह अशेषगुणवती तथा अनुपम सौंदर्यकी स्वामिनी है। परतु इसके कारण गर्वका प्रादुर्भाव उसके मनमे नही हो सका है। सहानुभूति तथा उदारता जैसी वृत्तियाँ ही उसके व्यक्तित्वमे अधिक सहज जान पडती है। अपने पतिकी पूर्व-प्रेयसी विजली वाईका वह तिरस्कार नही करती, वरन् वडी वहिनके समान आदर देती है। सत्येन्द्र अपने घर वुलाकर उसका अपमान करना चाहता है, परतु राधारानी उसे ऐसा करनेसे रोक देती है। इस प्रकार वह द्वेषके स्थानपर मानो सभीको स्नेह ही देना चाहती है।

'अधकारमे आलोक'मे सत्येन्द्रकी विधवा माँका प्रारभमे वहुत थोडा उल्लेख हुआ है। उनमे सहनशीलता तथा वुद्धिमत्ताकी कमी नही दिखाई देती। पतिकी मृत्युके उपरात वे अपनी एकमात्र सतान तथा अपनी वहुत वडी जमीदारीकी देखभाल स्वय करती है। और ऐसा लगता है कि उनके काममे कही कोई त्रुटि नही होती।

९. वैकुंठका दान-पत्र [वैकुंठेर विल]

'वैकुठका दान-पत्र' अपेक्षाकृत लबी कहानी है। स्त्री पात्रोके दृष्टिकोण-से इसमे भवानीका चरित्र विशेष उल्लेख योग्य है। विनोद उसका सगा

पुत्र है, तथा गोकुल सौतेला, यद्यपि साधारणत उसके व्यवहारसे इसके विपरीत ही सिद्ध होता है। स्नेहकी व्यापकताने उसके चरित्रको प्रभविष्णु बना दिया है। भवानीके चरित्रके अध्ययनके समय 'विप्रदास'की दयामयीका अनायास ही स्मरण हो आता है। इन दोनो चरित्रोमे बहुत समानता है।

भवानीके व्यक्तित्वकी प्रमुख विशेषता है उसकी बुद्धिमत्ता तथा दूरदृष्टि। उसे धोखा दे सकना आसान काम नही है। परतु उसकी बुद्धिमे कुटिलता बिलकुल नही है। किसीके प्रति विरुद्धताकी बात उसके मनमे आती ही नही। सब कुछ चुपचाप सुनते तथा सहन करते जाना ही मानो उसके जीवनका मूल-मत्र है। बडी-से-बडी विपत्तिके समय भी उसका धैर्य अडिग रहता है। मितभाषिता, सहिष्णुता तथा स्नेहमयताने उसके व्यक्तित्वको महिमान्वित बना दिया है। शरत्‌के उन नारीपात्रोमे भवानीका प्रमुख स्थान है जो स्नेहकी सकीर्णताके सिद्धातको असिद्ध करते है।

मनोरमा गोकुलकी पत्नी है। स्वार्थ-बुद्धिका विकास उसमे कुछ अधिक हुआ है। अपने परायेका भेद-भाव करना वह भलीभाँति जानती है। अविकसित बुद्धिके कारण वह अपना सही कर्त्तव्य निश्चित नही कर पाती। जीवनके छोटे-बडे स्वार्थ ही उसके विविध व्यवहारोके नियामक है। इस दृष्टिकोणसे उसका चरित्र औसत दर्जेका कहा जा सकता है।

घरकी दासी मुनुआकी माँ का कहानीमे जहाँ-तहाँ उल्लेख हुआ है। वह मजूमदार परिवारका आवश्यक अग बन गई है। वैसे तो सामान्यत ही उसका स्वभाव स्नेहमय है, परतु विनोदको बचपनमे पालने-पोसनेके कारण उसके प्रति उसकी ममता अधिक है।

गोकुलकी बडी लडकी हेमागिनी अपनी दादीके पास ही रहती है। इस सपर्कके कारण उसमे सरलता अधिक है, षड्यत्रप्रियता उसके स्वभावमे नही है। अन्यान्य बालकोकी भाँति इधरकी बात उधर करना वह नही जानती।

१०. निष्कृति

'निष्कृति'की गणना शरत् बाबूकी उत्कृष्ट कहानियोमे की जाती है। कलकत्तेके एक मध्यमवर्गीय परिवारकी तीन बहुओका इसमे बडा सुदर चित्रण हुआ है। सिद्धेश्वरी बडी बहू है, नयनतारा मँझली बहू तथा शैलजा सबसे छोटी बहू है। सिद्धेश्वरी तथा नयनताराके पति गिरीश तथा हरीश सहोदर भाई हैं, शैलजाका पति रमेश इन दोनोका चचेरा भाई है।

इस कहानीकी मुख्य सवेदना शैलजाका ही चरित्र है। इसके द्वारा कथाकारने एक बार फिर सिद्ध किया है कि रक्त-सबध स्नेहकी सीमाका निर्धारण नही करते। शैलजाके व्यक्तित्वमे अनुशासनकी भावना प्रधान है। उसका स्नेह सबके लिए समान है, परतु वह उसका अपव्यय भी नही करती। सदैव घरके काम-काजमे लगे रहनेके कारण वह अनावश्यक रूपसे बातचीत करना पसद नही करती। तीखे-से-तीखे व्यगोको वह चुपचाप सुन लेती है, परतु जब वह बोलती है तो अत्यत स्पष्ट तथा सीधे-सादे ढगसे। छल-कपटकी बात उसे एकदम अप्रिय है। सहिष्णुताके साथ-साथ उसमे स्वाभिमान भी है। कुल मिलाकर उसके चरित्रमे एक ऐसा सतुलन तथा सयम है, जिससे कोई अप्रभावित नही रह सकता।

सिद्धेश्वरीको उनके असतुलित स्नेहने कमजोर बना दिया है। अपने-आपमे भली होनेपर भी उनका व्यक्तित्व बहुत सशक्त नही है। बुद्धिका यथेष्ट विकास न होनेके कारण वह अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यका निर्धारण उचित रूपसे नही कर पाती। उनके चरित्रमे दृढता नही है। दूसरेके बहकावेमे वे आसानीसे आ जाती हैं। परतु फिर भी उनकी मौलिक सत्प्रवृत्तियाँ सदैव अक्षुण्ण रहती हैं। जान-बूझकर असत्के साथ वह समझौता नही कर सकती। यही उनके चरित्रकी बड़ी विशेषता है।

नयनताराके व्यवहार साधारण स्वार्थो-द्वारा परिचालित होते हैं। जीवनकी क्षुद्रताएँ उसके व्यक्तित्वमे आसानीसे प्रवेश पा गई हैं। कूट बुद्धिके आधिक्यके कारण वह सदैव अपने स्वार्थ-सिद्धिके जाल रचा करती

है। उसकी वाणी कटु तथा हृदय मलिन है। सबके ऊपर वह अपना ही प्रभुत्व चाहती है। इस सकीर्णताने उसके व्यक्तित्वको कुरूप बना दिया है।

नीला सिद्धेश्वरीकी पुत्री है, परंतु वह रहती अधिक शैलजाके पास ही है। उसकी 'छोटी चाची' ने उसके व्यक्तित्वको बहुत-कुछ ढाला है। इसीलिए उसे नयनताराका दुर्व्यवहार तथा षडयत्रप्रियता जरा भी अच्छी नही लगती। शैलजाके ही गुण उसमे विकसित होते हुए दिखाई देते हैं। उसके सारे व्यवहारोमे उसीकी शिक्षा प्रतिध्वनित जान पडती है।

११. स्वामी

'स्वामी' अठारह-उन्नीस वर्षीय युवती सौदामिनीकी आत्मकहानी है। प्रथम यौवनकी वचना तथा लज्जाने उसके सारे व्यक्तित्वको जर्जर कर दिया है। प्रणयके उद्दाम वेगके सम्मुख वह अपनेको अशक्त पाती है। पश्चात्तापकी भावना उसमे अवश्य है, परतु बाह्य हठने उसे पूर्णत दबा रक्खा है। अपने मामाकी शिक्षा-दीक्षाके फलस्वरूप वह प्रारभमे ईश्वरमे विश्वास नही करती। इस अनास्थाने उसकी बादकी लज्जाको और भी भयावह बना दिया है। अपरिपक्वावस्थाके अपरिपक्व प्रणयने उसके विवाहित जीवनमे चरम वेदना भर दी है। उसका व्यक्तित्व इतना सशक्त भी नही है कि वह सब कुछ अपने पतिके समक्ष स्वीकार करके अपनी सारी लज्जासे एकबारगी मुक्ति पा ले। नरेन्द्रके प्रति सौदामिनी किसी समय आकर्षित थी। यह प्रथम आकर्षण उसके तथा उसके पतिके बीचकी खाई बन गया है, जिसे उसकी सारी उदारताके बावजूद वह लाँघ नही पाती। उसके चरित्रमे प्रारभसे लेकर अततक एक ऐसी अवशता दिखाई देती है, जिसे हम साधारण तुलनाकी दृष्टिसे हार्डीकी टैसके साथ सबद्ध कर सकते हैं। उसके जीवन-क्रममे घटनाओकी अनिवार्यता है। अपनी सारी 'ट्रैजडी'के लिए स्वय उत्तरदायी होते हुए भी, सौदामिनी स्वय अपनी नियतिका वरण कर सकती थी, ऐसा नही जान पडता। इसीलिए उसका चरित्र इतना सजल तथा सहानुभूतिका उद्रेक करनेवाला बन गया है।

सौदामिनीकी माँके चरित्रमे विशेष उल्लेखनीय कुछ भी नही है। बगालकी नारीको अपनी पुत्रीके विवाहके लिए कितना चिंतित रहना पडता है, वे इसीका उदाहरण प्रस्तुत करती जान पडती है।

सौदामिनीकी सौतेली सास साधारण स्वार्थोकी स्त्री है। सामान्य गृह-कलहमे वहुत दक्ष होनेके साथ, अप्रिय आलोचनाएँ करना ही मानो उनके जीवनका एक-मात्र ध्येय है। इस कार्यमे उन्हे यथावसर अपनी छोटी वहूसे भी सहायता मिल जाती है। मुक्ता सौदामिनीके घरकी दासी है। कुटिल वुद्धिकी होते हुए भी उसमे भलाईका कुछ अश शेष है। उसके व्यक्तित्वकी सद् प्रवृत्तियाँ एकदम ही नष्ट नही हो गई है। सौदा-मिनीको वह अपने मनमे वहुत चाहती है, इसमे कोई सदेह नही।

१२. एकादशी वैरागी

'एकादशी वैरागी'मे एकादशीकी छोटी सौतेली वहिन गौरी ही एक-मात्र नारी-पात्र है। अत्यत सक्षेपमे अकित होनेपर भी उसका चरित्र काफी प्रभावोत्पादक वन गया है। वुद्धिमत्ता तथा न्यायप्रियता उसके चरित्र-की प्रमुख विशेषताएँ है। अपनी सपूर्ण प्रवृत्तियोमे वह मानो परम वैष्णव है। वेदनाने उसके व्यक्तित्वको अत्यत सहिष्णु, कोमल तथा सहानुभूति-मय वना दिया है। सव ओरसे तिरस्कृत होनेपर भी उसके मनमे कटुताका प्रवेश नही हो सका है। अपने स्वच्छ आचरण तथा निश्छल व्यवहारसे वह मानो अपने प्रथम यौवनकी लज्जाको मिटा देना चाहती है। विधवा ब्राह्मणीके एकादशीके यहाँ जमा पाँच सौ रुपयोको, जिसका कोई प्रमाण-पत्र अथवा साक्षी शेष नही है, वह तत्क्षण दिलवा देती है। इसमे कोई सदेह नही कि लोभी, परतु ईमानदार एकादशीके अपरिसीम स्नेह तथा विश्वासने गौरीके व्यक्तित्वको और भी स्निग्ध तथा कोमल बना दिया है।

१३. मुकद्दमेका नतीजा [मामलार फल]

जहाँ शरच्चद्रने नारीके प्रिया रूपको उसकी अनेक जटिलताओमे चित्रित किया है, वही उन्होने नारीके जननी रूपको भी उसकी सारी सरसता-

के साथ हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। नारीका वात्सल्य 'सुमति', 'मँझली दीदी' तथा 'बिंदोका लल्ला' शीर्षक कहानियोमे अत्यत मनोवैज्ञानिक ढग-से अभिव्यक्त हुआ है। कुछ-कुछ इसी वर्गकी कहानी है 'मुकद्दमेका नतीजा'। चरित्र-चित्रण तथा रस-परिपाककी दृष्टिसे यह पहली तीन कहानियो-जैसी सफल चाहे भले ही न हो,परतु अनेक प्रकारकी विरुद्धताओके बीच भी नारी-का वात्सल्य किस प्रकार अक्षुण्ण रहता है, यह तथ्य इससे भलीभाँति प्रकट होता है।

'मुकद्दमेका नतीजा'मे केवल दो नारीपात्र है---गगामणि तथा उसकी देवरानी। इन दो मे भी गगामणिका ही चरित्र इस कहानीमे प्रधान है, उसकी देवरानी तो मात्र एक पार्श्वचरित्रके रूपमे आती है। गगामणिका व्यक्तित्व नारायणी, हेमागिनी अथवा विंदोकी भाँति बहुत सरस तथा सुसस्कृत नही है। वह समाजके अपेक्षाकृत निम्न वर्गका प्रतिनिधित्व करती है। उसकी वाणी कटु है, तथा स्वभावसे भी वह कलहप्रिय है। जरा-जरा-सी बातपर अपने देवर तथा देवरानीसे लडना उसका मानो नित्यकर्म है। परतु इतने कर्कश व्यक्तित्वमे भी वात्सल्यका स्रोत प्रवाहित होता है, इस तथ्यसे शरत् बाबू भलीभाँति परिचित थे। चरित्रके इस उज्ज्वल पक्षको उभारना ही मानो उनके कलाकारका चरम उद्देश्य रहा है।

साधारणत गगामणिका चरित्र औसत दर्जेका या उससे भी कुछ नीचा ही है। बुराई करना, झूठ बोलना तथा कलहको प्रश्रय देना उसके व्यक्तित्व-के काफी प्रमुख अग है। क्षमा तथा दयाकी प्रवृत्तियोके भी वह निकट नही है। इन सबके बावजूद उसके हृदय-तलमे वात्सल्यका भाव विकसित हो सका है। अपनी देवरानीके सौतेले पुत्र गयारामके प्रति उसके मनमे अपार ममता है, यद्यपि इस ममताकी अभिव्यक्ति भी उसके अपने व्यक्तित्व-के समान ही बहुत कुछ कर्कश तथा खुरदुरी है। गयारामकी खोजमे वह अपने पतिके क्रोधकी चिंता किये बिना ही चली जाती है। और जब उसके पति तथा भाई उसका पता लगाते-लगाते गगारामकी झोपडीतक पहुँचते है तो अत्यत आश्चर्यचकित होकर वे देखते है कि गगामणि पखा कर रही

है और गयाराम खा रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि शरत्की नारियोका स्नेह प्राय. अप्रत्याशित स्थलोपर अभिव्यक्त होता है। उनकी ममतामे भी सकीर्णता नही, व्यापकता है।

गगामणिकी देवरानीका कहानीमे जहाँ-तहाँ उल्लेख भर है। स्वभावसे वह स्वल्पभाषिणी है। दूसरोंकी बातोमे उसे दिलचस्पी अधिक नही है। वैसे गयारामसे वह बहुत प्रसन्न नही है। अपने पति तथा बच्चेकी ही उसे चिता रहती है। उसका व्यक्तित्व स्वकेन्द्रित अधिक जान पड़ता है।

१४. विलासी

यह कहानी बहुत कुछ सस्मरणात्मक है। शीर्षक-चरित्रको लेकर ही इसकी रचना हुई है। प्रकृति तथा वातावरणके दृष्टिकोणसे विलासीका चरित्र 'श्रीकात' प्रथम पर्वकी अन्नदा जीजीमे कुछ-कुछ मिलता है। उसका वर्णन करता हुआ उपन्यासकार लिखता है, "यह उसी बूढे सँपेरेकी लडकी थी,—विलासी। उसकी उमर अठारहकी थी या अट्ठाइस की,—कूत नही सका। परतु, चेहरेकी तरफ देखते ही मालूम हो गया कि उमर चाहे जितनी भी हो, मेहनतके मारे और रातो जगते-जगते उसके शरीरमे अब कुछ रहा नही है। ठीक जैसे फूलदानीमे पानी दे-देकर जिलाये रखा हुआ बासी फूल हो। हाथसे जरा-सा छूते ही, जरा-सा हिलाते ही झर पडेगा।" श्रीकातने भी प्रथम दर्शनके समय अन्नदा जीजीका वर्णन बहुत-कुछ ऐसा ही किया है।

अपने पति तथा प्रेमीके प्रति अटूट भक्ति विलासीके चरित्रकी प्रमुख विशेषता है। अनेकानेक यातनाओके बीच भी वह मृत्युजयकी रोग शैय्याको नही छोडती। सुनसान बागमे अकेले रुग्ण पतिके साथ बराबर रहनेका साहस उसमे है। मृत्युजयको देहावसानके उपरात वह भी विष खाकर आत्महत्या कर लेती है। यह सतीत्वका आदर्श उसने किसी पोथीसे पढकर नही पाया, वरन् यह उसके मनकी सहज वृत्ति है। और इस तेजसे उसका सारा व्यक्तित्व अभिभूत है। उसके चरित्रमे एक ऐसी दीप्ति है, जो अनायास ही पाठकको प्रभावित कर लेती है।

१५. तसवीर [छवि]

'तसवीर'मे मा-शोये नामक एक बर्मी नवयुवतीकी प्रणय-कथा है। बा-थिन नामक चित्रकारसे वह प्रेम करती है, परतु उसका प्रणयास्पद अपने चित्रोमे ही व्यस्त रहनेके कारण सभवत उसकी आशाके अनुरूप उसका ध्यान नही रख पाता। बा-थिन स्वभावसे कुछ अन्यमनस्क प्रकृतिका व्यक्ति है। मा-शोयेमे इतना धैर्य नही है कि वह इस अन्यमनस्कताको बराबर सहन करती जाये। एक राजवशकी पुत्री होनेके कारण सभवत उसमे कुछ हठ अधिक है। प्रणयास्पदके प्रति आत्म-समर्पणकी भावनाके स्थानपर, उस-पर अधिकार रखनेकी भावना उसके मनमे अधिक प्रबल है। इस अधीरता-जन्य वेदनासे धीरे-धीरे उसका हृदय परिष्कृत हो जाता है, और तब उसका प्रेम पूर्ण हो पाता है।

मा-शोयेके व्यक्तित्वमे शील, नम्रता तथा अन्य सद्व्यवहारोकी कमी नही है। वह मिष्टभाषिणी भी है। परतु उसमे सहिष्णुताकी मात्रा बहुत कम है। यही कमी उसके चरित्रको बहुत ऊँचा नही उठने देती।

१६. महेश

करुण-रस-प्रधान इस कहानीकी सरसता बहुत कुछ अपनी है, परतु इसमे स्त्री-पात्र लगभग नही है, गफूरकी दस वर्षीया पुत्री अमीनाका चरित्राकन अवश्य हुआ है, अत्यत सक्षिप्त किंतु मार्मिक शैलीमे। पिताकी निर्धनता तथा सहिष्णुताने अमीनाको धैर्यकी प्रतिमूर्त्ति बना दिया है। इस छोटी-सी अवस्थामे ही उसने बहुत-से सामाजिक व्यवहार सीख लिये हैं। जैसी वह स्नेहमय है, वैसी ही कर्त्तव्य-परायण भी। अपने पिताके बैल महेशके प्रति उसकी ममता कम नही है, परतु गफूरकी तरह वह एकदम अव्यावहारिक भी नही है। वह यथासाध्य कम बोलती है, किंतु उसकी बातचीतमे बुद्धिमत्ता झलकती है। इतनी कम अवस्थामे बिना किसी साधनके वह किसी प्रकार अपने पिताकी सक्षिप्त-सी गृहस्थी चलाती है। बचपनमे ही मानो वह वार्द्धक्यका अनुभव करने लगी है। उसकी इस अवशताको शरच्चद्रने जिस ढगसे अकित किया है, वह सचमुच बहुत करुणोत्पादक है।

१७. अभागिनीका स्वर्ग [अभागीर स्वर्ग]

'महेश'की भाँति 'अभागिनीका स्वर्ग'भी दैन्य तथा विपन्नताकी कहानी है। पतिसे परित्यक्त अभागिनी अपनी एकमात्र सतान कगालीके साथ किसी तरहसे अपने दिन काटती है। जितना ही उसे अपने पुत्रसे स्नेह है, उतनी ही उसे अपने पतिके लिए चिता है। उसके जीवनकी एकमात्र साध यह रह गई है कि मृत्युके उपरात उसका दाह-सस्कार विधिपूर्वक हो और उसका पति उसकी चितामे आग लगाये, परतु यह नियतिका क्रूर व्यंग्य है कि अभागिनीके पति रसिकके आ जानेपर भी उसका शव जलाया नही जाता, गाड दिया जाता है।

कहानीमे अभागिनीके चरित्रपर विशेष बल नही दिया गया है। जहाँ तहाँ उसके व्यवहार तथा वार्तालापसे प्रकट होता है कि वह एक भली और कोमल हृदय स्त्री है। इतने दु ख-दैन्यमे दिन बितानेपर भी उसे किसीके प्रति शिकायत नही। अपनी नियतिको वह मौन रहकर स्वीकार करती है। अपेक्षाकृत असस्कृत समाजसे सबद्ध होते हुए भी, उसका जीवन-क्रम असस्कृत नही जान पडता।

१८. हरिलक्ष्मी

'हरिलक्ष्मी'मे नारी-हृदयके मौलिक तत्त्व—कोमलता तथा सहानुभूति-का उद्घाटन अत्यत मार्मिक ढगसे हुआ है। कहानीमे दो प्रमुख नारी पात्र हैं—हरिलक्ष्मी तथा मँझली बहू। बुआजीको पार्श्व-चरित्र कहा जा सकता है। हरिलक्ष्मी एक समृद्ध तथा वयस्क जमीदारकी दूसरी पत्नी है। प्रकृतिकी वह बहुत सरल तथा कोमल है। गर्वकी भावना कभी उसके मनमे प्रवेश नही कर पाती। उसका हृदय किसीके भी दु ख-दैन्यको देखकर अपने आपको अपराधी समझने लगता है। अधिक वार्तालाप-प्रिय न होनेके कारण उसकी सहानुभूतिका समुद्र अदर ही अदर लहराता रहता है। साथ ही साथ उसके व्यक्तित्वमे कुछ ऐसी अवशता तथा निरीहता है कि वह इच्छा रहते हुए भी दूसरोके प्रति किये जानेवाले अन्यायका प्रतिकार नही कर पाती। गहरी

सहानुभूति तथा कर्मगत अक्षमताने मिलकर उसके व्यक्तित्वको सवेदनशील होते हुए भी नितात निरुपाय वना दिया है। इसीलिए सब प्रकारसे सपन्न होनेपर भी हरिलक्ष्मी सदैव पीडित दिखाई देती है। दूसरोकी वेदनाने उसे जर्जर कर दिया है। उसका व्यक्तित्व भावनाओका पूंजीभूत समूह होकर रह गया है, जिसमे इच्छा ही इच्छा है, शक्ति नही।

मँझली बहू हरिलक्ष्मीके रिश्तेमे लगनेवाले देवरकी पत्नी है। कमला-का जीवन केवल अभावोकी एक करुण गाथा है, परतु इन अभावोके कारण उसके आत्म-सम्मानमे कही भी कमी नही आ सकी है। यहाँतक कि वह हरिलक्ष्मीकी सहायताको भी दृढतापूर्वक अस्वीकार कर देती है। उसके व्यक्तित्वकी शालीनता तथा सहिष्णुताने उसे महिमान्वित कर दिया है। आवश्यकतासे अधिक वह कभी बात नही करती। सारे कष्टोको चुपचाप सहन करते जाना उसका स्वभाव वन गया है। वह सदैव किसी-न-किसी काम-काजमे लगी रहती है। जीवनके अविराम सघर्षमे थकना वह जानती ही नही। अकेले ही सारी विषमताओके बीच चलते रहना उसकी नियति है। इसके बाद भी वह कुछ चाहती है, ऐसा नही जान पडता।

बुआजीका कहानीमे वहुत अधिक उल्लेख नही हुआ है। वार्तालाप तथा आचरणमे कृत्रिमताके साथ, उनके व्यक्तित्वमे कर्कशता भी है। उनकी वाचालता प्राय परनिंदाका ही रूप लेती है। उनका दृष्टिकोण सकीर्ण तथा वाणी तिक्त है। कमलाके प्रति उनकी अप्रसन्नताकी कोई सीमा नही। उसे नीचा दिखानेका अवसर वे सदैव ही खोजती रहती हैं।

१९. अनुराधा

अपने कथा-साहित्यमे शरत् वावूने स्थान-स्थानपर निश्छल स्नेहकी शक्ति तथा महिमाको अकित किया है। 'अनुराधा' इसी वर्गकी कहानियो-मे से एक है। पुरुषकी कटुता तथा विरुद्धताको नारीका स्नेह किस प्रकार बदल सकता है, यही इस कहानीकी सवेदना है।

वाईस-तेईस वर्षकी अविवाहित अनुराधा सव प्रकारके अभावोके बीच किसी प्रकार जीवन व्यतीत कर रही है। अचानक एक दिन गाँवके जमीदार

विजय बाबूकी आज्ञा होती है कि वह उनका घर खाली करके अन्यत्र चली जाय । विजय स्वय इस कार्यके लिए अनुराधाके पास जाता है । साथमे उसका लडका कुमार है । कहानी यहीसे प्रारभ होती है, परतु उसका अत होता है वहाँ, जहाँ विजय अपने मातृ-विहीन एकमात्र पुत्रको अनुराधा-के सरक्षणमे छोडकर वापस कलकत्ते आ जाता है, इस विचारके साथ कि कभी अवसर मिलनेपर वह अनुराधाको अपनी पत्नी बना सकेगा ।

अनुराधाका चरित्र यद्यपि प्रियावर्गके ही अतर्गत आता है, परतु उसके आचरणमे स्पष्ट पता चलता है कि उसके व्यक्तित्वमे मातृत्वके तत्वों-का पूर्ण विकास हुआ है । विजयका पुत्र कुमार तो उसे अपनी माँके स्थाना-पन्न मान लेता है । ऐसा जान पडता है कि अनुराधाके अदम्य यौवनकी समस्त अपूर्ण वासनाएँ वात्सल्यके अप्रतिहत स्रोतमे एकदम विलीन हो गई है । अनुराधाका व्यवहार अत्यत नम्र, शालीन तथा परिष्कृत है । उसका बातचीत करनेका ढग प्रभावोत्पादक है । घोर विपन्नता भी उसके चरित्रको कही कटु नही बना सकी है । उसका भद्र आचरण सबके ऊपर है, जो विरुद्ध जनोंके हृदयको भी जीत लेता है । अत्यत स्नेहमय होनेपर भी कोई उसके प्रति निकटताका अनुभव नही कर पाता । यह नम्र पार्थक्य उसकी व्यवहार-कुशलता द्वारा ही सभव है । उसके सपूर्ण व्यक्तित्वमे जो स्निग्धता है, वह नारीके प्रिया तथा जननी रूपोके सम्मिलनमे ही प्राय मिल पाती है । और आश्चर्यकी बात यह है कि वास्तविक अर्थमे न अनुराधा प्रिया ही है, और न जननी ही । स्नेहके अविरल प्रवाहने जहाँ उसके चरित्रको बहुत सरस तथा मधुर बनाया है, वही आचरणकी कठोरताने उसके मासके विद्रोहको एकदम दबा दिया है । कुल मिलाकर उसका चरित्र बहुत सतुलित तथा मर्यादित है, और सभवत. शरत्‌के आदर्श नारीत्वके बहुत समीप है ।

अनुराधाके ठीक विपरीत इस कहानीमे विजयकी भाभी प्रभाका चरि-त्राकन हुआ है । उसके व्यक्तित्वमे कृत्रिमता तथा छिछलापन है । अग्रेजी सस्कृतिके अधानुकरणने उसके दृष्टिकोणको बहुत सतही बना दिया है । बिना किसी आस्था तथा निष्ठाके उसका व्यक्तित्व एकदम खोखला हो

गया है। वह जिस वर्गकी नारी है, उसका मूल मत्र स्वार्थ है। उच्च शिक्षा प्राप्त करनेपर भी उसके उद्देश्य ऊँचे नही हो पाते। शरत् वावू इस प्रकारके पात्रोको प्राय अपने उपन्यासो तथा कहानियोमे लाये है, और इस वर्गकी नारियोका उन्होने बडे सजीव ढगसे चित्रण किया है। प्रभा इसी श्रेणीका एक अत्यन्त सक्षिप्त चरित्र है।

२०. शुभदा

पूरे आकारका उपन्यास होनेपर भी 'शुभदा'को इस परिशिष्टमे सम्मिलित करनेका एक प्रधान कारण यह है कि इसे शरत् वावूकी रचनाओकी समयानुक्रमणिकामे ठीक-ठीक नही रखा जा सकता। उनकी मृत्युके उपरात प्रकाशित होनेपर भी, यह उनकी प्रारभिक कालकी रचना है। इसके लेखन-समयका निर्धारण ठीक-ठीक नही हो सका है। शरत्-साहित्यके गभीर अन्वेपक तथा समीक्षक श्रीव्रजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्यायके अनुसार तो यह 'चद्रनाथ' तथा 'देवदास' से भी पहलेकी कृति है ('शरत्-परिचय' पृष्ठ १०, पाद-टिप्पणी)। इसीलिए चरित्राकनके दृष्टिकोणसे यह वहुत अपरिपक्व जान पडती है।

'शुभदा' मे नारी-चरित्रोकी सख्या कम नही है। पुरुष-पात्रोकी अपेक्षा नारी-पात्र ही घटना-क्रममे अधिक प्रधान है, परतु इनमे से एक भी चरित्र ऐसा नही है जो पूर्णत विकसित हुआ हो। चरित्र-चित्रणके दृष्टिकोणसे वे सवके सव अप्रौढ है।

उपन्यासके कथानकमे शुभदा तथा उसकी दोनो पुत्रियो, ललना तथा छलनाका महत्त्वपूर्ण स्थान है। शेष कात्यायनी, रासमणि, विंदो, विंदोकी माता, कृष्णप्रिया तथा जयावती या तो पार्श्व-चरित्र है या स्थानीय चरित्र। शरत् वावूका यह सभवत अकेला उपन्यास है, जिसमे कोई भी नारी-चरित्र जीवत नही वन सका है। इसका प्रधान कारण यह जान पडता है कि इसके किसी भी नारी पात्रकी कोई अपनी विशेष सवेदना नही है।

शुभदाको एक प्रकारसे इस कहानीकी नायिका माना जा सकता है। कठोर विपमताओंकेवीच भी अपने आपको स्थिर वनाये रखना उसका स्वभाव

बन गया है। धैर्य, आत्म-त्याग तथा आत्म-सम्मान उसके व्यक्तित्वके प्रधान गुण हैं। विपत्तियोंने उसके साहसमें वृद्धि की है, कमी नहीं। संघर्ष ही मानो उसकी नियति बन गया है।

ललना तथा छलना, दोनोंने अपनी मातासे अधिकांश चारित्रिक गुण प्राप्त किये हैं। दोनोंके चरित्रमे दृढता तथा साहसिकताका पूर्ण उन्मेष हुआ है। अपने परिवारके प्रति उनका मोह अपरिसीम है। दैन्य तथा विपन्नताने उनमे आत्मनिर्भरताका संचरण किया है। अपने जीवन-क्रम-को निर्धारित करनेमे वे स्वय समर्थ हो सकी हैं।

कात्यायनी एक ग्रामीण वेश्या है। किसी भी प्रकारके मूल्योंसे रहित उसका जीवन मायाचारमे ही बीतता है। किंतु शुभदाके पति हारानके प्रति उसकी सच्ची सहानुभूति है। घरके प्रति उसकी नितात विमुखता कात्यायनीको जरा भी अच्छी नही लगती।

वृद्धा रासमणिका चरित्र उपन्यासमे कुछ अच्छा बन सका है। वाणीकी कटु होनेपर भी उसका हृदय बहुत निश्छल है। बिंदो, बिंदोकी माता तथा कृष्णप्रिया अपनेसे अधिक दूसरोकी बातमे रुचि रखनेवाली स्त्रियाँ हैं। परनिंदामे उनका विशेष मन लगता है। जयावती वेश्या होनेपर भी स्वभाव की अच्छी है। उसके व्यक्तित्वमे सहानुभूति तथा उदारता है। उसकी माँका व्यक्तित्व ठीक इसके विपरीत है। वह कलह-प्रिय तथा कर्कशा है। किंतु अकारण ही वह भी किसीको कष्ट नही पहुँचाती। वह आसानीसे रुष्ट और उतनी ही आसानीसे प्रसन्न होनेवाली स्त्री है। उसके मनमे किसी प्रकारका स्थायी विद्वेष नही है।

परिशिष्ट--३

शरत्के नारी-पात्रोंकी सामाजिक पृष्ठभूमि

जिस युगमे शरच्चद्र अपने उपन्यासो तथा कहानियोका सृजन कर रहे थे वह युग बगालके सामाजिक इतिहासमे अपना एक विशेप महत्त्व रखता हे। कुछ तो राष्ट्रीय चेतनाकी जागृतिके फलस्वरूप और कुछ पाश्चात्त्य सस्कृतिके सक्रमणके फलस्वरूप, सुधार-आन्दोलनकी लहर इस प्रदेशके निवासियोंके ऊपर अपना काफी गहरा रग चढा चुकी थी। ब्राह्मो समाजकी स्थापना हुए इतना समय हो गया था कि उसके नियमो तथा अनुशासनोके अदर भी रूढिका प्रवेश हो चला था। ब्राह्मो समाजके अतिरिक्त कई अन्य छोटे-मोटे सुधारवादी आन्दोलन भी अपनी जड जमानेके प्रयत्नमे थे, किंतु इसमे कोई सदेह नही कि तत्कालीन बगाली समाजकी मान्यताओ तथा आचरणोपर सबसे अधिक प्रभाव ब्राह्मो समाजका ही था। समाजका एक बडा वर्ग यद्यपि अभी अपने प्राचीन हिंदू धर्मंमे ही बँधा हुआ था, फिर भी ब्राह्मो समाजके अनुयायियोमे प्रभावशील तथा महत्त्वपूर्ण सदस्योकी सख्या कम नही थी। जो भी हो, उस समय कलकत्तेमे ब्राह्मो समाजके आदोलनके फलस्वरूप जातीय विभेदोके विरोधमे आवाज़ उठाई जा रही थी, सती-प्रथाको बद करनेका प्रयत्न किया जा रहा था तथा स्त्री-शिक्षाको प्रोत्साहन दिया जा रहा था। बगालके गॉवोको सुधारकी यह लहर अबतक भी बहुत प्रभावित न कर सकी थी।

ब्राह्मो समाजकी अधिकाश धाराएँ तत्कालीन नारी समाजसे सबद्ध थी। स्वय उसके सस्थापक राजा राममोहन राय स्त्री-सुधारके प्रबल समर्थक थे। बहु विवाह, बाल-विवाह तथा अनमेल विवाहका उन्होने

विरोध किया था; विधवा-विवाह तथा स्त्री-शिक्षाके वे हामी थे, तथा पर्दा-प्रथा और सती-प्रथाको भी समूल उखाड फेकनेका उन्होंने यत्न किया था। वहुत-सी कुरीतियोंका मूल कारण कुलीनताकी भावना थी। राजा राममोहन रायने इन विभेदक तत्त्वोकी भी वहुत निदा की थी। इस प्रकार उनके प्रयत्नोके फलस्वरूप लोग तत्कालीन वगालकी नारीकी दुरवस्थाको तो कम-से-कम पहचान ही सके थे। उसे दूर करनेकी वहुत-सी चेष्टाएँ सफल भी हुई, इसमें कोई सदेह नही।

शरत्‌चद्रने जिस समय लिखना प्रारभ किया था, उस समयतक सुधार-वादी आदोलनके कुछ-कुछ शुभ प्रभाव तो परिलच्छित होते थे, परतु उसकी तीव्रता वहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी। गाँवोमे सुधारका सदेश पहले भी नही पहुँचा था, इसलिए वहाँकी दशा तो वहुत ही गिरी हुई थी। कलकत्तेमे भी सुधारकी प्रत्येक लहरके साथ अनिवार्य रूपसे आनेवाला कठमुल्लापन प्रवेश पा चुका था। इस प्रकार कुल मिला-जुलाकर एक महान् सुधारकको जन्म देनेकी तैयारियाँ फिरसे पूर्ण हो गई थी। परतु इस वारका सुधारक अपने पूर्वागतोकी परपरामे न था। सुधारके लिए उसने अधिक मनोवैज्ञानिक साधनोको अपनाया। अपने उपन्यासो तथा कहानियोमें उसने वगालका इतना यथार्थ चित्र उपस्थित किया कि उसे पढकर लोग स्वय ही सुधारके लिए आकुल हो उठे।

अशिक्षित होना एक वडा अभिशाप है जो सदाके लिए दृष्टिको अवरुद्ध कर देता है। बगालके तत्कालीन नारी समाजके साथ भी ठीक यही बात हुई। अपनी पुस्तक 'वुमेन ऑफ वगाल'मे श्रीमती मार्गरेट एम० उरखार्ट लिखती है, "यद्यपि लडकियोकी शिक्षामे लोगोकी अभिरुचि है, परंतु अभी-तक इसे कार्य रूपमे परिणत करनेका यत्न नही किया गया, यहाँतक कि शिक्षाका जो प्रवध उपलब्ध भी है उसका भी उपयोग नही किया जाता।" जैसा कि लेखिकाने आगे स्वय वताया है, यह शिक्षाका अभाव बहुधा बाल-विवाहके कारण है। वहुत कम अवस्थामे ही लोग लडकियोका विवाह करनेके लिए यत्नशील रहते थे, और इसके परिणाम-स्वरूप उनकी शिक्षा

प्राय नहीके बराबर होती थी। इस शिक्षाके अभावके कारण अधविश्वासो तथा रूढियोका प्रवेश बहुत आसानीसे समझा जा सकता है।

सामाजिक सतुलन बिगड जानेके कारण कन्याके विवाहमे काफी अधिक दहेज दिया और लिया जाने लगा था। यह इसीका फल था कि उस समयके बगालमे पुत्रीका जन्म प्राय एक शोचनीय घटना हो गई थी। इसीके साथ-साथ कुलीनताकी प्रथा भी जुडी हुई थी। क्योकि लडकीका विवाह एक बहुत ही सीमित वर्गमे किया जा सकता था, इसलिए उपयुक्त वरका मिलना प्राय असभव हो गया था। इन दोनो प्रथाओका सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि बाल-विवाह तथा बहु-विवाह अधिकाधिक सख्यामे होने लगे। बहु-विवाहके अतर्गत प्राय अनमेल विवाह भी होते थे। पचास-पचपनके बुड्ढेका विवाह तेरह-चौदह वर्षकी लडकीसे हो जाना एक साधारण बात थी।

बहुत छोटी अवस्थामे विवाह कर देनेका एक धार्मिक कारण भी था। श्रीमती उरखार्टके अनुसार, "लडकीकी अपने पिताके घर रहनेकी अवधि यथासभव सक्षिप्त की जाती थी माता-पिताका यह पुनीत कर्त्तव्य माना जाता है कि वे लडकीको अपने सरक्षणसे उसी अवस्थामे दान कर दे जब कि उसका कौमार्य नितात असदिग्ध है। प्रचलित परपराओके अनुसार आठ वर्षकी आयु बहुत पवित्र मानी जाती है, क्योकि साधारण विश्वासोके अनुसार इसी अवस्थामे शिवकी पत्नी गौरीका विवाह हुआ था।" इसी भावनाके कारण बाल-विवाह सामान्य धर्मका एक अग माना जाता था। एक निश्चित अवस्थातक विवाह न कर देनेके दड-स्वरूप लडकीके पिताको जातिसे बहिष्कृत कर दिया जाता था। अत वश-मर्यादा तथा कुलीनताकी रक्षाके लिए अधिकाश पिता लड़कीके सुख-दुखकी जरा भी चिता किये बिना उसका विवाह बहुत कम अवस्थामे ही कर दिया करते थे। इसके फलस्वरूप जब कभी अनमेल विवाह होते थे तो प्राय १८–२० वर्षकी आयु-तक पहुँचते-पहुँचते अधिकाश सधवाएँ विधवा हो जाती थी। प्रथम यौवनमे ही विधवा हो जाना बहुतोकी नियति बन गया था, और क्योकि

विधवा-विवाह एकदम निषिद्ध था, इसलिए विधवाओकी एक बडी सख्या समाजके लिए एक विकट समस्या बन गई थी। विधवाओकी दुर्दशाका वर्णन उस युगके सामाजिक इतिहासमे स्थान-स्थानपर मिलता है।

यदि ध्यानमे देखा जाये तो उपर्युक्त सभी समस्याएँ एक-दूसरेके साथ अनिवार्य रूपमे सबद्ध जान पडती हैं। उस युगका पूरा सामाजिक ढाँचा ही ऐसा था कि उसमे नारी-जातिकी समस्याओका उचित ढगसे पर्यवेक्षण नही हो पाता था। अपने धर्म तथा विश्वासोको समाज काफी अशोमे विकृत कर चुका था और बाहरकी सभ्यता तथा सस्कृतिको वह अग्राह्य समझता था। ऐसी स्थितिमे अधिक दुर्भाग्यका भागी स्त्री जातिको ही बनना पडा। जबरन सती करानेकी प्रथा जिस युगमे प्रचलित थी, उस युगमे नैतिक मान्यताओका कितना अधिक विघटन हो चुका था, यह स्पष्ट ही है।

शरत्च्चद्र तथा उनके कुछ पूर्वके समयमे पारिवारिक जीवनमे भी बहुत अव्यवस्था आ गई थी। सम्मिलित परिवारकी प्रथा अकाट्य थी। पिता-पितामहके जीवन-कालमे ही लडकेका अलग रहने लगना एक अकल्प्य बात थी। इसका परिणाम यह हुआ कि पारिवारिक जीवनमे सुख-सुविधाके स्थानपर कलह, असतोप तथा वैरने अपना स्थान बना लिया। स्त्रियोकी सहिष्णुताका अनुचित लाभ उठाया गया, परतु जब उसकी भी सीमाका अतिक्रमण हो गया तो फिर ऐसी व्यवस्थामे नित नई दुरभिसधियोंके अतिरिक्त और फिर चारा ही क्या रहा? गृह-कलह प्राय ही स्थायी वैमनस्य तथा वैरका रूप धारण कर लेता था। और इस प्रकार सम्मिलित परिवार तबतक अलग नही होता था, जबतक कि उसके सदस्योका पारस्परिक कलह तथा असतोप अपनी चरम सीमातक न पहुँच जाये।

धर्ममे जड़ निष्ठा सभवत पुरुषोसे अधिक स्त्रियोका गुण होता है। तत्कालीन बगालमे धर्मका यह मिथ्या आचरण इतना अधिक बढ गया था कि उसकी मूल आत्मा लगभग नष्ट हो चुकी थी। परपरासे चले आनेवाले आचारोका बिना उनका रहस्य समझे हुए पालन करना धार्मिक जीवनका एकमात्र चिह्न था। इन मिथ्या आचारोमे अशिक्षाके कारण स्त्रियोकी

ही आस्था अधिक थी। समय व्यतीत करनेका कोई अन्य साधन न होनेके कारण वे या तो कलह और परनिदामे रत रहती थी, या फिर इस धार्मिक कर्मकाडको करते रहनेमे ही उनका समय जाता था। स्पष्ट है कि इन दोनो ही प्रकारके कार्योमे वृद्धाओको अवसर अपेक्षाकृत अधिक रहता था।

धर्मके रूपमे इस प्रकारकी विकृतियाँ आनेपर अधविश्वासोका अधिकाधिक सख्यामे प्रचलित होना एक स्वाभाविक परिणाम है। इन रूढियो तथा अधविश्वासोसे समाजका बौद्धिक स्तर एकदम जर्जर हो उठता है। धर्मकी प्रथम मान्यता सहिष्णुताका विघटन भी इसीके फलस्वरूप होता है। ऐसे समयमे नैतिक मूल्य तथा मर्यादाएँ भी धीमे-धीमे लुप्त होने लगती है, और एक प्रकारसे समाजमे गत्यवरोधकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। शरच्चद्रके समयमे यह गत्यवरोध बहुत कुछ अपना रूप स्पष्ट कर चुका था, और उनका कलाकार मन इससे अत्यत विक्षुब्ध हो उठा था। इसीलिए शरत्मे सर्वत्र एक रूमानी भावना दिखाई पडनेके बावजूद, उनमे 'सोशल कटेट'का कही अभाव नही दिखाई देता।

शरच्चद्रके समयके समाजका जो एक सक्षिप्त चित्र ऊपर प्रस्तुत किया गया है, उससे यह जान पड सकता है कि तत्कालीन समाज पतनके निम्नतम स्तरोतक पहुँच चुका था। परतु बात ठीक ऐसी ही नही है। उचित सदर्भमे अध्ययन करनेसे स्पष्ट हो जायगा कि १९ वी शताब्दीके उत्तर भारतमे कुछ अतरोके साथ लगभग सर्वत्र ही ऐसी स्थिति थी। बगालमे कुछ विशेष कारणोमे स्त्री जातिकी दुर्दशा अवश्य ही कुछ अधिक थी। इसके अतिरिक्त आग्ल सस्कृतिके साथ सर्वप्रथम सपर्क पानेके कारण, वहाँ सस्कृति-सघर्ष भी कुछ अधिक तीव्र हो उठा था। शेष उत्तर भारतमे इस सस्कृति-सघर्षके आनेतक वहाँके निवासी इससे भलीभाँति परिचित हो चुके थे। बगालकी नारियोकी दुरवस्थाको देखकर तत्कालीन बहुत-से कलाकारोने उसके विरुद्ध आवाज उठाई, परतु शरच्चद्रका विद्रोह सबसे अधिक सशक्त, तर्कपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक था। अपने समाजकी कुरीतियोका जहाँ उन्होने चित्रण

किया, वही वे उसकी अमिट आस्था तथा मर्यादाका भी अकन करते रहे। इस सबधमे उनका दृष्टिकोण कभी निराशावादी नही रहा।

स्त्री-समाजकी वकालत शरच्चद्रने नितांत बौद्धिक स्तरपर की है। उनका निबध 'नारीका मूल्य' उनके गहन अध्ययन, चितन तथा सवेदन-शीलताका सूचक है। भलेको बुरेसे अलग करना वे भलीभाँति जानते थे। प्राचीन तथा नवीनमे जहाँ भी जो कुछ अच्छा तथा शुभ है, वह उनके लिए ग्राह्य है। इसी सिद्धातका प्रतिपादन उन्होंने अपने साहित्यमें किया है—निबधोमे एक ढगसे तथा उपन्यासो और कहानियोमे दूसरे ढगसे। उनकी कलाका चरम उद्देश्य पतितको सहानुभूति देना तथा उसे ऊपर उठाना रहा हे। उनके समाजमे जितना ही अधिक मूल्योका विघटन हुआ था, उसी अनुपातसे उनकी कलामे निखार आया है। बगालके नारी-समाजके लिए शरच्चद्रने जो भी कुछ किया, उसका सही-सही मूल्याकन आनेवाले युगके सामाजिक इतिहासकार ही कर सकेगे। जिस कार्यको बडे-से-बड़े सुधारक भी एक साथ मिलकर नही कर पाये, उस कार्यको शरत्‌की कलाने मानो अनायास ही सपन्न कर दिया। इस दृष्टिकोणसे, बगालके नारी-समाजको मुक्ति (Emancipation) दिलानेका श्रेय बहुत कुछ शरच्चंद्रको दिया जा सकता हे।

शरच्चंद्रकी रचनाओंकी समयानुक्रमणिका

[इस तालिकामे दिये गये वर्ष बँगला समयके अनुसार है। साधारणत बगाब्दमे ५९३ जोडनेसे ईसवी सन्‌की सख्या प्राप्त होती है। शरच्चद्रकी अधिकाश रचनाओका प्रथम प्रकाशन तत्कालीन बगाली पत्र-पत्रिकाओमे हुआ था। अत उनका वास्तविक रचनाकाल उनके प्रथम प्रकाशन-कालके कुछ ही पूर्व माना जा सकता है।]

वर्ष	रचना	पत्रिका तथा मास
१३०९	मदिर	
१३१४	वडदिदि [बडी वहिन]	'भारती' वैशाख-आषाढ
१३१९	रामेर सुमति [सुमति]	'यमुना' फाल्गुन-चैत्र
	काशीनाथ	'साहित्य' फाल्गुन-चैत्र
	वोझ	'यमुना' कार्त्तिक-पौष
	वाल्यस्मृति	'साहित्य' माघ
१३२०	चद्रनाथ	'यमुना' वैशाख-आश्विन
	बिंदुर छेले [बिन्दोका लल्ला]	'यमुना' श्रावण
	विराजवहू	'भारतवर्ष' पौष-माघ
	पथ-निर्देश	'यमुना' वैशाख
	परिणीता	'यमुना' फाल्गुन
	आलो औ छाया	'यमुना' आषाढ-भाद्र
	अनुपमार प्रेम	'साहित्य' चैत्र
	चरित्रहीन [आशिक]	'यमुना' कार्त्तिक-चैत्र (एव १३२१ मे)

वर्ष	रचना	पत्रिका तथा मास
१३२१	पंडित मौशाइ [पंडित जी]	'भारतवर्ष' : वैशाख-श्रावण
	निष्कृति [आंशिक]	'यमुना' वैशाख
	मेजदिदि [मझली बहन]	'भारतवर्ष' कार्त्तिक
	दर्पचूर्ण	'भारतवर्ष' : माघ
	आँधार आलो	'भारतवर्ष' भाद्र
	हरिचरण	'साहित्य' : आषाढ
१३२२	पल्ली समाज [ग्रामीण समाज]	'भारतवर्ष' : आश्विन, अग्रहायण-पौष
	श्रीकांत—प्रथम पर्व	'भारतवर्ष' माघ-चैत्र (एव वैशाख-माघ १३२३
१३२३	वैकुंठेर विल	'भारतवर्ष' · ज्येष्ठ-श्रावण
	अरक्षणीया	'भारतवर्ष' . आश्विन
	देवदास	'भारतवर्ष' : चैत्र (एव वैशाख-आषाढ १३२३
१३२३	निष्कृति [समाप्त]	'भारतवर्ष' : भाद्र, कार्त्तिक, पौष
	गृहदाह	'भारतवर्ष' : माघ-चैत्र (एव वैशाख-आश्विन आग्रहायण-फाल्गुन १३२४, पौष-चैत्र १३२४; आषाढ-आग्रहायण, पौष-माघ) ।

१३२४	स्वामी	'नारायण' श्रावण-भाद्र
	एकादशी वैरागी	'भारतवर्ष' . कार्त्तिक
	दत्ता	'भारतवर्ष पौष-चैत्र (एव वैशाख-भाद्र १३२५)
	श्रीकांत-द्वितीय पर्व	'भारतवर्ष' आषाढ-भाद्र, आग्रहायण-चैत्र (एव वैशाख-आषाढ, भाद्र-आश्विन १३२५)
१३२५	मामलार फल	'पार्वती' आश्विन
	विलासी	'भारती' वैशाख
१३२६	छवि	'आगमनी' पूजा वार्षिकी
१३२७	बामुनेर मेये [ब्राह्मणकी बेटी]	आश्विन
	देना पावना [लेन-देन]	'भारतवर्ष' आषाढ-आश्विन, पौष, चैत्र (एव ज्येष्ठ, श्रावण, कार्त्तिक, चैत्र १३२८, वैशाख-श्रावण, आश्विन-कार्तिक, माघ-चैत्र १३२९, वैशाख, आषाढ-श्रावण १३३०)
	श्रीकांत-तृतीय पर्व [आशिक]	'भारतवर्ष' पौष-फाल्गुन (एव वैशाख, आषाढ, भाद्र-आश्विन, पौष १३२८)

१३२९	महेश	'वगवाणी' : आश्विन
	अभागीर स्वर्ग	'वगवाणी' · माघ
	पथेर दावी [पथ के दावेदार]	'वगवाणी' : फाल्गुन-चैत्र (एव वैशाख-आषाढ भाद्र, आग्रहायण-फाल्गुन १३३० ज्येष्ठ, आश्विन-कार्त्तिक, पौष-माघ १३३१, , वैशाख ज्येष्ठ-भाद्र, कार्त्तिक, फाल्गुन १३३२; वैशाख १३३३)
१३३०	नारीर मूल्य [पुस्तकाकार]	(चैत्र, वैशाख-आषाढ, भाद्र-आश्विन १३२० की 'यमुना' में श्रीमती अनिलादेवीके नामसे प्रकाशित)
	नवविधान	'भारतवर्ष' माघ-फाल्गुन (एव वैशाख, आषाढ, आश्विन-कार्त्तिक १३३१)
१३३२	हरिलक्ष्मी	'वसुमती' . शारदीया
	परेश	'शरतेर फूले' भाद्र
१३३४	षोडशी [पुस्तकाकार]	श्रावण
	शेष प्रश्न (पत्रिका मे प्रकाशित अश पुस्तकाकार उपन्यास से कुछ भिन्न हे ।)	'भारतवर्ष' श्रावण-कार्त्तिक, माघ-चैत्र (एव ज्येष्ठ-श्रावण, कार्त्तिक, पौष, फाल्गुन १३३५, वैशाख, श्रावण, कार्त्तिक, पौष, फाल्गुन, चैत्र, १३३६; चैत्र १३३७; वैशाख १३३८)
	सती	'वगवाणी' . आषाढ

	रमा [पुस्तकाकार]	श्रावण (१८ अप्रैल १९२९ ई०)
१३३५	तरुणेर विद्रोह	'विचित्रा' फाल्गुन-चैत्र (एव वैशाख-माघ १३३९)
	श्रीकात-चतुर्थ पर्व	भाद्र
१३३८	स्वदेश और साहित्य	
१३३९	विप्रदास	'विचित्रा' फाल्गुन-चैत्र (एव वैशाख-आपाढ, आश्विन, फाल्गुन १३४०, वैशाख, श्रावण-भाद्र, कार्त्तिक-माघ १३४१ इसके पूर्व १० परिच्छेद तक १३३६-३८ की 'वेणु' मे प्रकाशित, 'भारतवर्ष' चैत्र
	अनुराधा	श्रावण
१३४०	विराजवहू [नाटक-पुस्तकाकार]	पौप
१३४२	विजया [नाटक-पुस्तकाकार]	
१३४५	शुभदा	ज्येष्ठ (शरत् वावूकी मृत्युके उपरात प्रकाशित, यद्यपि इस उपन्यासका अधिकाश लेखकके रचनाकालके प्रारभिक भागमे लिखा गया था।)

[उपर्युक्त सामग्री श्री व्रजेन्द्रनाथ वद्योपाध्याय लिखित 'शरत्-साहित्य-परिचय' पौप, माघ, फाल्गुन १३५२ की 'शनिवारेर चिठि' से ली गई है। बादमे इस सामग्रीका समावेश वद्योपाध्यायजी की 'शरत्-परिचय' शीर्षक पुस्तकमे भी किया गया है। 'शरत्-साहित्य-सग्रह' के अवतक प्रकाशित भागोके परिशिष्टमे दी हुई प्रथम प्रकाशनकी भी तिथियाँ लगभग यही है।]

प्रस्तुत ग्रन्थमें प्रयुक्त शरच्चंद्रके हिन्दी संस्करणोंका परिचय

	नाम	अनुवादक	सन्	प्रकाशक
१	वडी वहिन (शरत्-साहित्य १०)	—रामचद्र वर्मा	१९५० ई०.	हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, ववई
२.	सुमति (शरत्-साहित्य १)	—धन्यकुमार जैन	१९४९ ई०:	हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, ववई
३	चद्रनाथ (शरत्-साहित्य ३)	—रामचद्र वर्मा	१९४३ ई०.	हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, ववई
४	विंदो का लल्ला (शरत्-साहित्य ८)	—धन्यकुमार जैन	१९४७ ई०.	हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, ववई
५	विराज वहू	—ठाकुरदत्त मिश्र	१९४५ ई०.	किताव महल, इलाहावाद
६	परिणीता (शरत्-साहित्य १२)	—धन्यकुमार जैन	१९४६ ई०.	हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, ववई
७.	चरित्रहीन	—कात्तिकेय चरण मुखोपाध्याय	१९५० ई०.	हिंदी पुस्तक एजेसी, कलकत्ता
८	पडितजी (शरत्-साहित्य ११)	—रामचद्र वर्मा	१९४६ ई०.	हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, ववई
९	मँझली वहिन (शरत्-साहित्य ११)	—रामचद्र वर्मा	१९४६ ई०	हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, ववई
१०	ग्रामीण समाज (शरत्-साहित्य १९)	—रामचद्र वर्मा	१९४७ ई०	हिंदी-गथ-रत्नाकर, ववई
११	अरक्षणीया (सरस्वती सिरीज ६५)	—रूपनारायण पाडेय		इडियन प्रेस, इलाहावाद

	शीर्षक	अनुवादक	वर्ष	प्रकाशक
१२.	श्रीकांत प्रथम पर्व (शरत्-साहित्य ४)	—हेमचंद्र मोदी	१९४७ ई०	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
	श्रीकांत द्वितीय पर्व (शरत्-साहित्य ६)	—हेमचंद्र मोदी	१९४६ ई०.	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
	श्रीकांत तृतीय पर्व (शरत्-साहित्य ७)	—धन्यकुमार जैन	१९५० ई०.	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
	श्रीकांत चतुर्थ पर्व (शरत्-साहित्य २२)	—कमल जोशी	१९४९ ई०.	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
१३	देवदास (शरत्-साहित्य १०)	—रामचंद्र वर्मा	१९५० ई०	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
१४	दत्ता (शरत्-साहित्य १८)	—सुंदरलाल त्रिपाठी	१९४७ ई०	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
१५	गृहदाह (शरत्-साहित्य १६-१७)	—धन्यकुमार जैन	१९४८ ई०	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
१६	ब्राह्मण की बेटी (शरत्-साहित्य ५)	—धन्यकुमार जैन	१९४० ई०	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
१७	लेन-देन	—हरिदास शास्त्री तथा गोपालचंद्र वेदांत शास्त्री	१९४० ई०	इंडियन प्रेस, इलाहाबाद
१८	पथ के दावेदार (अविकार) (शरत्साहित्य १३–१४)	—धन्यकुमार जैन	१९४६ ई०	हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, बंबई
१९	नवविधान (सरस्वती सिरीज)			इंडियन प्रेस, इलाहाबाद
२०	शेष प्रश्न	—कमलाप्रसादराय शर्मा, बी० ए०	१९४९ ई०	साहित्य-सेवक-कार्यालय, बनारस
२१	विप्रदास	—कमलाप्रसादराय शर्मा, बी० ए०	१९४७ ई०	साहित्य-सेवक-कार्यालय, बनारस

——·००——

सहायक पुस्तकें

अंग्रेजी—

१. उरुखार्ट, मार्गरेट एम॰ वुमेन ऑफ बेगाल १९२७ ई॰ : एसोशिएसन प्रेस, कलकत्ता
२ मदान, इद्रनाथ शरत्चद्र चटर्जी—हिज माइड एड आर्ट १९४४ ई॰ मिनर्वा पब्लिशर्स, लाहौर
३ मित्रा, शिशिरकुमार कल्चरल फेलोशिप ऑफ बेगाल १९४६ ई॰ : कल्चर पब्लिशर्स, कलकत्ता
४ सेनगुप्त, एस॰ सी॰ शरत्चद्र —मैन एड आर्टिस्ट १९४५ ई॰ सरस्वती लाइब्रेरी, कलकत्ता
५ हुमायूँ कबीर शरत्चद्र चटर्जी पद्मा पब्लिकेशन, बबई

बंगाली—

१. कन्हाईलाल घोष . शरत्चद्र १३५७ (बँगला वर्ष) . कन्हाई लाल घोष, ८१, शिमला स्ट्रीट, कलकत्ता
२ ब्रजेन्द्रनाथ बद्योपाध्याय शरत् परिचय १३५७ (बँगला वर्ष) रजन पब्लिशिग हाउस, कलकत्ता
३ शैलेश विशी . विप्लवी शरत्चद्रेर जीवन प्रश्न ज्योति प्रकाशालय, कलकत्ता
४ श्रीकुमार बद्योपाध्याय · बँगला उपन्यास १३५४ (बँगला वर्ष) विश्वभारती ग्रथालय, कलकत्ता
५ श्रीकुमार बद्योपाध्याय वग साहित्य उपन्यासेर धारा १९४८ ई॰ · मॉडर्न बुक एजेंसी, कलकत्ता
६ सुबोधचद्र सेनगुप्त शरत्चद्र १३५६ (बँगला वर्ष) ए॰ मुखर्जी एड कंपनी लिमिटेड, कलकत्ता
७. सुरेन्द्रनाथ गगोपाध्याय शरत् परिचय ओरिएटल बुक कंपनी, कलकत्ता

हिन्दी—

१. गुप्त, मन्मथनाथ, शरच्चद्र किताब महल, इलाहाबाद
२ जोशी, इलाचद्र शरच्चद्र—व्यक्ति और कलाकार १९५४ ई॰ : अशोक प्रेस, पटना
३ मदान, इद्रनाथ · शरत्चद्र—चिंतन व कला हिंदी भवन, इलाहाबाद
४ शरत्चद्र चट्टोपाध्याय . नारी का मूल्य १९४६ ई॰ . हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, बबई
५ शरत्चद्र चट्टोपाध्याय —शरत् निबधावली १९५४ ई॰ हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, बबई
६ शरत्चद्र चट्टोपाध्याय —शरत् पत्रावली १९५२ ई॰ हिंदी-ग्रथ-रत्नाकर, बबई

अनुक्रमणिका

प्रत्येक नारी पात्रके नामके आगे उस कहानी अथवा उपन्यासका नाम दिया गया है, जिसमें उस पात्रविशेषका अंकन हुआ है अनुक्रमणिकामें दिये हुए अंक पृष्ठ-सख्याके सूचक हैं।

संस्मरण-रेखाचित्र

हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखा-चित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
जैन-जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

ऐतिहासिक

खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशंकर व्यास एम. ए	४)
कालिदासका भारत [१]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
कालिदासका भारत [२]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
हिन्दी जैन-साहित्य का सं० इतिहास	श्री कामताप्रसाद जैन	२॥=)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
करलक्खण [सामुद्रिक शास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	॥)

विविध

द्विवेदी-पत्रावली	श्री बैजनाथसिंह विनोद	२॥)
जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
रजतरश्मि [एकांकी नाटक]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२॥)
ध्वनि और संगीत	प्रो० ललितकिशोरसिंह	४)
हिन्दू-विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्दजी	१)
ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
रेडियो-नाट्य-शिल्प	श्री सिद्धनाथकुमार, एम. ए.	२॥)
शरत् के नारीपात्र [आलोचनात्मक]	प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४॥)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

है और गयाराम खा रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि शरत्की नारियो-का स्नेह प्राय अप्रत्याशित स्थलोपर अभिव्यक्त होता है। उनकी ममतामे भी सकीर्णता नही, व्यापकता है।

गगामणिकी देवरानीका कहानीमे जहाँ-तहाँ उल्लेख भर है। स्वभाव-से वह स्वल्पभाषिणी है। दूसरोकी बातोमे उसे दिलचस्पी अधिक नही है। वैसे गयारामसे वह बहुत प्रसन्न नही है। अपने पति तथा बच्चेकी ही उसे चिंता रहती है। उसका व्यक्तित्व स्वकेन्द्रित अधिक जान पडता है।

१४. बिलासी

यह कहानी बहुत कुछ ससमरणात्मक है। शीर्षक-चरित्रको लेकर ही इसकी रचना हुई है। प्रकृति तथा वातावरणके दृष्टिकोणसे बिलासीका चरित्र 'श्रीकात' प्रथम पर्वकी अन्नदा जीजीमे कुछ-कुछ मिलता है। उसका वर्णन करता हुआ उपन्यासकार लिखता है, "यह उसी बूढे सँपेरेकी लडकी थी,—बिलासी। उसकी उमर अठारहकी थी या अट्ठाइस की,—कूत नही सका। परतु, चेहरेकी तरफ देखते ही मालूम हो गया कि उमर चाहे जितनी भी हो, मेहनतके मारे और रातो जगते-जगते उसके शरीरमे अब कुछ रहा नही है। ठीक जैसे फूलदानीमे पानी दे-देकर जिलाये रखा हुआ बासी फूल हो। हाथसे जरा-सा छूते ही, ज़रा-सा हिलाते ही झर पडेगा।" श्रीकातने भी प्रथम दर्शनके समय अन्नदा जीजीका वर्णन बहुत-कुछ ऐसा ही किया है।

अपने पति तथा प्रेमीके प्रति अटूट भक्ति बिलासीके चरित्रकी प्रमुख विशेषता है। अनेकानेक यातनाओके बीच भी वह मृत्युजयकी रोग शैय्याको नही छोडती। सुनसान बागमे अकेले रुग्ण पतिके साथ बराबर रहनेका साहस उसमे है। मृत्युजयको देहावसानके उपरात वह भी विष खाकर आत्महत्या कर लेती है। यह सतीत्वका आदर्श उसने किसी पोथीसे पढकर नही पाया, वरन् यह उसके मनकी सहज वृत्ति है। और इस तेजसे उसका सारा व्यक्तित्व अभिभूत है। उसके चरित्रमे एक ऐसी दीप्ति है, जो अनायास ही पाठकको प्रभावित कर लेती है।

१५. तसवीर [छवि]

'तसवीर'मे मा-शोये नामक एक वर्मी नवयुवतीकी प्रणय-कथा है। बा-थिन नामक चित्रकारसे वह प्रेम करती है, परतु उसका प्रणयास्पद अपने चित्रोमे ही व्यस्त रहनेके कारण सभवत उसकी आशाके अनुरूप उसका ध्यान नही रख पाता। बा-थिन स्वभावसे कुछ अन्यमनस्क प्रकृतिका व्यक्ति है। मा-शोयेमे इतना धैर्य नही है कि वह इस अन्यमनस्कताको बराबर सहन करती जाये। एक राजवशकी पुत्री होनेके कारण सभवत. उसमे कुछ हठ अधिक है। प्रणयास्पदके प्रति आत्म-समर्पणकी भावनाके स्थानपर, उस-पर अधिकार रखनेकी भावना उसके मनमे अधिक प्रबल है। इस अधीरता-जन्य वेदनासे धीरे-धीरे उसका हृदय परिष्कृत हो जाता है, और तब उसका प्रेम पूर्ण हो पाता है।

मा-शोयेके व्यक्तित्वमे शील, नम्रता तथा अन्य सद्व्यवहारोकी कमी नही है। वह मिष्टभाषिणी भी है। परतु उसमे सहिष्णुताकी मात्रा बहुत कम है। यही कमी उसके चरित्रको बहुत ऊँचा नही उठने देती।

१६. महेश

करुण-रस-प्रधान इस कहानीकी सरसता बहुत कुछ अपनी है, परतु इसमे स्त्री-पात्र लगभग नही हैं, गफूरकी दस वर्षीया पुत्री अमीनाका चरित्राकन अवश्य हुआ है, अत्यत सक्षिप्त किंतु मार्मिक शैलीमे। पिताकी निर्धनता तथा सहिष्णुताने अमीनाको धैर्यकी प्रतिमूर्त्ति बना दिया है। इस छोटी-सी अवस्थामे ही उसने बहुत-से सामाजिक व्यवहार सीख लिये हैं। जैसी वह स्नेहमय है, वैसी ही कर्त्तव्य-परायण भी। अपने पिताके बैल महेशके प्रति उसकी ममता कम नही है, परतु गफूरकी तरह वह एकदम अव्यावहारिक भी नही है। वह यथासाध्य कम बोलती है, किंतु उसकी बातचीतमे बुद्धिमत्ता झलकती है। इतनी कम अवस्थामे बिना किसी साधन-के वह किसी प्रकार अपने पिताकी सक्षिप्त-सी गृहस्थी चलाती है। बचपनमे ही मानो वह वार्द्धक्यका अनुभव करने लगी है। उसकी इस अवशताको शरच्चद्रने जिस ढगसे अकित किया है, वह सचमुच बहुत करुणोत्पादक है।

संस्मरण-रेखाचित्र

हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखा-चित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
जैन-जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

ऐतिहासिक

खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशंकर व्यास एम. ए.	४)
कालिदासका भारत [१]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
कालिदासका भारत [२]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	४)
हिन्दी जैन-साहित्य का सं० इतिहास	श्री कामताप्रसाद जैन	२॥=)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	४)
करलक्खण [सामुद्रिक शास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	॥)

विविध

द्विवेदी-पत्रावली	श्री वैजनाथसिंह विनोद	२॥)
जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
रजतरश्मि [एकांकी नाटक]	डॉ० रामकुमार वर्मा	२॥)
ध्वनि और संगीत	प्रो० ललितकिशोरसिंह	४)
हिन्दू-विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्दजी	१)
ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
रेडियो-नाट्य-शिल्प	श्री सिद्धनाथकुमार, एम. ए.	२॥)
शरत् के नारीपात्र [आलोचनात्मक]	प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी	४॥)